गुर्जरेश्वर कुमारपाल

प्राक्कथन

मध्ययुग मे एक राजा के साथ एक युग हुआ करता था। राजा होता था अपने उस युग का निर्माता और नियामक। राजा के साथ उसके युग का उदय होता और राजा के ही साथ वह अस्त भी हो जाता था। सम्भवत इसी सत्य को ध्यान मे रखकर सस्कृत की एक उक्ति प्रचलित हुई है—'राजा कालस्य कारणम्'।

गुजरात का एक राजा हुआ जयसिह सिद्धराज। गुर्जरदेश के इतिहास मे उसका समय जयसिह-युग अथवा 'सिद्धराजी शासन' के नाम से जाना जाता है। इस युग मे कला-कौशल और साहित्य-सगीत की चतुर्दिक प्रगति हुई। नामी विद्वान इस युग मे अवतीर्ण हुए। स्थापत्य के भी कई अमर नमूने निर्मित किये गए। यह चौलुक्य राजाओ का स्वर्णकाल समझा जाता है। सुप्रसिद्ध गुजराती उपन्यासकार 'धूमकेतु' ने इस समूचे कालखण्ड को तीन उपन्यासो मे लिपिवद्ध किया—'वर्वरक-विजेता', 'सोरठ-विजेता' एव 'अवन्तीनाथ'।

इतना वडा राजा, जो पराक्रम और प्रजारजन मे प्रख्यात वीर विक्रम के समकक्ष था, विना उत्तराधिकारी के ही मर गया। जैसी कि मध्ययुग की परम्परा थी जयसिह के सिहासन के उत्तराधिकारियो मे सघर्ष की सम्भावना खडी हो गई। जव कोई सच्चा उत्तराधिकारी नही होता तो झूठे-सच्चे अनेक दावेदार उपस्थित हो जाते है। इस समय भी ऐसा ही हुआ और जयसिह के सामन्त, राजपुरुष और राज-निर्माता अलग-अलग दलो में वँट गए। मुख्य दल दो ही थे—जयसिह के कथित प्रपन्नपुत्र त्यागभट्ट का और जयसिह के चचेरे भाई कुमारपाल का। वस्तुत ये दल व्यक्तियो के उतने समर्थक नही थे जितने शैव और जैनधर्म के।

'धूमकेतु' ने दो खण्डो में समाप्य अपने 'कुमारपाल' नामक उपन्यास में इन दोनो दलो के पारस्परिक सघर्ष, कुमारपाल के सिहासनासीन होने, देश जीतने, इतिहास में 'कुमारपाल-युग' की प्रस्थापना करने और कुमारपाल के राजर्षि हो जाने की कहानी लाक्षणिक शैली में कही है। यह पहला खण्ड 'गुर्जरेश्वर कुमारपाल' जयसिंह की मृत्यु के तुरत बाद के समय से आरम्भ होकर कुमारपाल के सिहासन पर आने और अपने उपद्रवी माडलिको को वश में करने से लेकर पडोसी देशो को जीतने तक की घटनाओ को अपने में समेटे हुए है।

इसका अगला खण्ड 'राजर्षि कुमारपाल' भी प्रकाशित हो चुका है।

—श्याम् सन्यासी

अनुक्रम

प्रवेश

महान गुर्जरेश्वर अवन्तीनाथ जयसिह सिद्धराज के मृत्यु-समाचार की भयावनी काली छाया अणहिलपुर पाटन पर फैल चुकी थी। भीषण आघात से मूर्छित निर्जन धरती की तरह पाटन की नगरी स्तब्ध और सूनी-सूनी लग रही थी। किसी को कुछ सूझता न था। 'क्या होगा'—इस भावी चिन्ता से व्यथित समस्त नागरिक उस शोक-भरे वातावरण मे व्यग्र और व्याकुल घूम रहे थे। बहुत-से लोग तो अभी अपनी मन स्थिति को इस शोक समाचार के उपयुक्त बना भी नही पाए थे। उनके मन बर्बरक-विजेता अवन्तीनाथ महाराज जयसिहदेव मनुष्य नही, मानवेतर सिद्ध पुरुष थे, मौत उनको छू भी नही सकती थी। उनके लेखे न देवाधिदेव महादेव की मृत्यु हो सकती है और न महाराज जयसिह-देव की हो सकती थी।

महाराज के निधन-समाचारो से प्रजा मे कही खलबली न मच जाए इसलिए राजपुरुषो ने इस सम्बन्ध में विशेष सावधानी बरती थी। सब से पहला काम तो उन्होने यह किया कि पाटन के रोजमर्रा के व्यवहार मे कोई अन्तर नही आने दिया। महाराज के जीवन-काल में जो काम जिस तरह होते थे उन्हे ठीक वैसा ही चलने दिया। खासतौर पर महाराज के समीप रहने वाले बर्बरक-जैसे अन्तरग राजभृत्यो के आचरण मे कोई अन्तर नही हुआ था। वे अपना दैनन्दिन कार्य इस तरह करते जा रहे थे मानो महाराज का निधन हुआ ही न हो!

आठो पहर महाराज की अर्दली मे हाज़िर रहने वाला बर्बरक आज भी

राजद्वार पर दण्ड धारण किये और सिर झुकाये इस तरह मुस्तैद खड़ा था कि महाराज की आज्ञा पाते ही हुक्म बजा लाने के लिए दौड़ पड़ेगा। रोज सवेरे नियमानुसार राजप्रांगण मे हजारो घोड़े और सैकडो हाथी महाराज को सलामी देने के लिए आ खडे होते और राजप्रासाद के मुख्य द्वार की ओर इस तरह देखने लगते मानो इस ओर आ रहे महाराज के पाँवो की आहट सुन रहे हो। थोड़ी देर में अपने ऊँचे श्यामकर्ण घोडे पर सवार सेनापति केशव वहाँ आ जाते और चारो तरफ घूम-फिरकर निरीक्षण करने लगते। फिर सेना की कवायद, नमस्कार, आयुध-प्रदर्शन और विदा आदि कार्यक्रम ठीक इस तरह होने लगते मानो महाराज गवाक्ष मे उपस्थित देख रहे हो।

महाराज जयसिंहदेव इतने अधिक लोकप्रिय थे कि सैकडो नही हजारो नागरिको को अब भी ऐसा लगता था मानो वे जीते-जागते राजप्रासाद की चन्द्र-शाला में घूम रहे हो। अभी कल की तो बात है—कन्धे पर पवित्र गंगाजल की काँवर लेकर महाराज जयसिंहदेव लाखो लोगो के सामने राजमहल के मुख्य द्वार में से बाहर आये थे और नगे पाँव पैदल चलते हुए भगवान सोमनाथ के मन्दिर की ओर गए थे। यह विरल दृश्य अभी तक लोगो की आँखो में घूम रहा था और उन्हें किसी भी तरह विश्वास नही हो पाता था कि महाराज जयसिंहदेव की मृत्यु हो गई। तात्पर्य यह कि महाराज की मृत्यु अवश्य हो गई थी, और इस दुःखद घटना ने पाटन की श्री-शोभा को खंडितकर विषाद-विजड़ित कर दिया था, लेकिन फिर भी नगर के सारे काम-काज पहले की ही तरह अबाध गति से होते चले जा रहे थे।

इस परिस्थिति में सब से अधिक चिन्तित थे पाटन के राजपुरुष। इस समय उनके सम्मुख सब से विकट और महत्वपूर्ण प्रश्न था महाराज के उत्तराधिकारी का। सोमनाथ के समुद्र-तट से नर्मदा नदी के उद्‌गम और राजस्थान के मरुस्थल से सह्याद्रि पर्वत तक फैले हुए महाराज के विशाल साम्राज्य की शासन-व्यवस्था का भार वे किसे सौंपें? और उस साम्राज्य की सुरक्षा और सुप्रबन्ध का काम कौन करे? सबसे जटिल समस्या वास्तव में यही थी कि अब गुजरात का स्वामी किसे बनाया जाए?

चौलुक्यो के सिंहासन पर सदा से पटरानी के गर्भ से जन्मा पाटवी कुँवर ही

वैठता आया था। इस पवित्र परम्परा को तोडने का अधिकार किसी को भी नही था। तेजमूर्ति चौलादेवी के जमाने मे अपने समय के अप्रतिम योद्धा महाराज भीम-देव तक इस परम्परा को भग करने का साहस नही कर सके थे। उस समय राज-कुमार क्षेमराज अवस्था में वडा होते हुए भी स्वेच्छा से अलग हट गया था और पटरानी के पाटवी कुँवर को ही पाटन की गादी मिली थी। लोकमानस मे महाराज जयसिहदेव के सिहासन की वही प्रतिष्ठा थी जो भोज और विक्रम के सिंहासनो को प्राप्त थी। पाटन, पाटनवासी और गुजरात के लिए यह प्रतिष्ठा गौरव ही नही शक्ति और सामर्थ्य की भी प्रतीक थी। इस प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए गुजरात का हर व्यक्ति मरने-मारने को तैयार हो जाता था। उनके रहते किसी की मजाल नही कि वह जयसिहदेव के सिहासन की ओर टेडी आख करके भी देख सके या उस सिहासन की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाने वाला कोई कार्य करे। महाराज मूल-राजदेव के जमाने से यह परम्परा चली आती थी। पटरानी का पाटवी कुँवर ही पाटन के सिहासन पर वैठता था। लेकिन आज वह परम्परा टूटने जा रही थी और वह भी ऐसे समय जव उसे बनाये रखने की सव से अधिक आवश्यकता थी। आज पाटन इतना महान वन गया था कि उसका शासन-सूत्र किसी ऐरे-गैरे को सौपा नही जा सकता था। कोई दुर्वल तो तीन दिन भी पाटन पर राज्य कर नही सकता था। इसलिए उत्तराधिकारी का प्रश्न वहुत ही जटिल हो गया था, और लोग तरह-तरह के कुलावे भिडाने लगे थे—यहाँ तक कि जितने मुँह उतने नाम सुनाई पडने लगे थे।

कुमारतिलक त्यागभट्ट का नाम उनमें सर्वोपरि था। अपनी रणकुशलता और वीरता के कारण वह पाटनवासियो के दिलो में अपना स्थान वना चुका था और महाराज के जीवन-काल में ही राजकुमार का विरुद पा गया था। गज-विद्या-विशारद त्यागभट्ट उदार भी वहुत था और महाराज की भी इच्छा अपने इस प्रपन्न* पुत्र को उत्तराधिकारी नियुक्त करने की थी।

* प्र+पद—जो प्राप्त हुआ या स्थापित किया गया। सस्कृत प्रवन्धो में त्याग-भट्ट के लिए इसी विशेषण का प्रयोग हुआ है और 'मोहपराजय' नाटक में इस सम्वन्ध में और अधिक प्रकाश डाला गया है।

कहा जाता है कि मृत्युशय्या पर पडे महाराज ने यही वात कहने के लिए तो महामात्य महादेव को मालवा से बुलवाया था, जो उन दिनो वहाँ के दण्डनायक थे। अमात्य दण्डदादाक वूढे हो चुके थे और अव उनका पद-भार उनका यह तरुण पुत्र लेने जा रहा था। तरुण महादेव ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर वह पाटन मे किसी तरह का सघर्ष नही होने देंगे।

सेनापति केशव, वर्वरक, मल्हारभट्ट आदि सभी राजपुरुप उनके इस शुभ सकल्प के साथ थे। सघर्ष कोई भी नही चाहता था। लेकिन उदयन मेहता पट्टनियो के स्वभाव से खूव परिचित थे। वे जानते थे कि पाटनवासी कभी किसी गैर का अपने सिंहासन पर आना सह न सकेंगे। पट्टनियो का यह आग्रह कव कौनसा रूप ले लेगा, यह अभी से वताना मुश्किल था। पट्टनियो का यह आग्रह उदयन मेहता के हित में था, इसलिए उन्होने इसे परवान चढाये रखा। वे चुपचाप अपने प्रचार-कार्य मे लगे रहे। तुरगाध्यक्ष कृष्णदेव से उन्होने इस सम्वन्ध में समझौता कर लिया था। कृष्णदेव कुमारपाल का वहनोई था। लेकिन अभी तो सव को चुपचाप अपना काम किये जाना था।

कुमारतिलक त्यागभट्ट इस समय मालवा मे था। महादेव के पाटन लौट आने पर महाराज ने उसे वहाँ का दण्डनायक नियुक्त कर दिया था। यह समाचार वडे जोरो पर था कि त्यागभट्ट मालवा से पाटन के लिए चल पडा है और पहुँचा ही चाहता है। लेकिन उसका एक प्रतिद्वन्द्वी पहले से ही पाटन मे मौजूद था। वह था क्षेमराज। उसके दूसरे विरोधी के रूप में महाराज जयसिंहदेव की पुत्री काचनदेवी का वेटा सोमेश्वर था। काचनदेवी शाकभरी (अजमेर) के राजा अर्णोराज चौहान को व्याही थी। वह अपने नन्हे पुत्र सोमेश्वर के साथ इस समय पाटन में ही थी। सोमेश्वर को पाटन के सिंहासन पर विठाने की वात वह पाटन के राजपुरुओ के समक्ष चला भी चुकी थी। उसने साफ कह दिया था कि सोमेश्वर का शाकभरी से कोई सम्वन्ध नही रहेगा, वह वहाँ के राज-पद का परित्यागकर पाटन में और पाटन का ही वनकर रहेगा। इस तरह जिन लोगो को यह शका थी कि सोमेश्वर को पाटनपति वनाने से वहाँ शाकभरी का प्रभुत्व वढ जाएगा, उसने उन लोगो की इस शका को निर्मूल कर दिया था। सोमेश्वर की अल्पवयस्कता के सम्वन्ध में उसने यह तर्क दिया था कि जिस प्रकार महारानी

मिलनदेवी के समय में मन्त्रिपरिषद ने राजा के वयस्क होने तक शासन किया था वैसा ही उपाय इस समय भी किया जा सकता है । उसकी यह बात पाटन के कई मन्त्रियों, राजपुरुषों और सामन्तों के मन भा गई थी ।

सोमेश्वर महाराज जयसिंहदेव का प्रीतिभाजन था । इस बात को सभी जानते थे । शक्ति और सामर्थ्य में भी वह किसी से कम नही था । उसके इस गुण की जानकारी भी सभी को थी । स्वय महाराज ने उसे अपने पास रखा और अपनी देख-रेख मे उसकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की थी । पाटन के सामन्तो मे कई उसके समर्थक थे । एक किशोर राजा के गादी पर आने से उन्हे अपना अधिकार प्रबल होता दिखाई देता था । लेकिन अभी से किसी एक पक्ष के साथ जुड जाना उन्हे लाभप्रद नही लगता था । इसलिए उन्होने काचनदेवी के प्रस्ताव का न तो खुलकर समर्थन किया था और न विरोध ही । 'पाडेजी न पढाते है न पीटते हैं' वाली मसल के अनुसार वे आचरण कर रहे थे । जैसी बयार बहे तब वैसी पीठ देने का उनका इरादा था ।

त्यागभट्ट के एक प्रतिद्वन्द्वी के रूप में क्षेमराज का उल्लेख ऊपर किया गया है । लेकिन वास्तव मे वह क्षेमराज का वशज कुमारपाल था । क्षेमराज को मरे तो बरसो हो गए थे । कुमारपाल उसकी तीसरी पीढ़ी में था । क्षेमराज का पुत्र देवप्रसाद, देवप्रसाद का पुत्र त्रिभुवनपाल, और त्रिभुवनपाल के तीन बेटे—महीपाल, कीर्तिपाल और कुमारपाल । इन तीनो मे सब से बडा महीपाल अपने-आपको पाटन का सच्चा उत्तराधिकारी मानता था । उसके बाद कीर्तिपाल और कुमारपाल भी गादी के दावेदार थे । मुश्किल यही हो गई कि चौलादेवी और कुमारपाल की माँ काश्मीरादेवी दोनो हेठे वश की थी । यदि ये दोनो इनके परिवार में आई न होती तो इन लोगो के उत्तराधिकार के दावे को कोई अस्वीकार नही कर सकता था ।

महीपाल तो आँखो में तेल डाले पाटन के सन्देशे की प्रतीक्षा कर रहा था । पाटन से दधिस्थली की ओर कोई सांढनी सवार सन्देश लेकर आता ही होगा । बस आना ही चाहिए । उमग-ही-उमग मे उसने अपना राजसी शृगार भी कर लिया था । पाटन का भावी राजा दधिस्थली के गली-चौराहो पर घूमता दिखाई दे यह लेकिन न समझ उस बेचारे ने स्वय को अपने महल में बन्द कर लिया था । लेकिन

किसी ने उसकी बात भी न पूछी। सांढनी सवार की झलक पाने के लिए महल की छत चढते-उतरते उस गरीब के घुटने टूट गए, तलवे घिस गए, पर सन्देश-वाहक आता दिखाई न दिया।

अन्त में वह थककर बैठ रहा। उसने प्रतीक्षा करना छोड दिया। यह कहकर मन को समझा लिया कि यदि मै पाटन का राजा नही बन सकता तो कीर्तिपाल और कुमारपाल भी नही बन सकते। मै नही तो वे भी नहीं और कोई भी नही।

महीपाल के सम्बन्ध में तो महाराज जयसिंहदेव की आज्ञा बिलकुल स्पष्ट थी। और कोई सामन्त, कोई मण्डलेश्वर अथवा राजपुरुष जयदेव महाराज की आज्ञा का उनकी मृत्यु के बाद भी उल्लघन नही कर सकता था। इस सम्बन्ध मे उनका आदेश एक पवित्र धरोहर थी, जो न केवल राजपुरुष, सामन्त अथवा मत्री अपितु जन-सामान्य के लिए भी अनुल्लघनीय थी।

इन दो के अलावा मैदान मे और भी कई राजकुलोत्पन्न व्यक्ति थे जो सिंहासन की आशा लगाए बैठे थे। मजा यह कि उनमें से हर एक अपने-आपको ही सबमे अधिक उपयुक्त समझता था!

लेकिन एक और भी अफवाह बहुत गरम थी। जैन मतावलम्बियों की उसमें पूरी-पूरी श्रद्धा थी, बल्कि कहना चाहिए कि वे ही इस अफवाह को जोर-शोर से फैलाते जा रहे थे। फलित ज्योतिष और ग्रहो की स्थिति के अनुसार तो कुमारपाल का ही पलडा भारी दिखाई देता है—यह बात हर जैनी की जबान पर थी। जैन-गुरु हेमचन्द्राचार्य ने ऐसी ही भविष्यवाणी कर रखी थी। मत्रीश्वर उदयन ने किसी से मुंह खोलकर साफ बात नही कही थी, परन्तु अपने ढग से समय पूरा करते जा रहे थे। 'लोगो को बुलाओ, देखो, बात करो, सब की राय लो' आदि मन्तव्यो के द्वारा इतना समय पाने की युक्ति तो उन्होंने कर ही ली थी कि कुमारपाल वहाँ पहुँच सके। वे स्वय स्तम्भतीर्थ से पाटन आ गए थे और हमेशा स्तम्भतीर्थ लौट जाने की बात करते रहते थे, लेकिन रोज शाम को कोई-न-कोई जरूरी काम निकल आता था और उनका लौटना स्थगित हो जाता था।

इधर तो यह हाल थे। उत्तराधिकार का प्रश्न दिनोदिन जटिल होता जा रहा था और उधर इसके एक प्रमुख दावेदार कुमारपाल का कही पता नही था। न उदयन, न कृष्णदेव और न मल्हारभट्ट—कोई नही जानता था कि इस समय

कुमारपाल कहाँ हैं। सब-के-सब उन्हें ढूंढने में ग्राकाश-पाताल एक किये हुए थे। किसी का कहना था कि वे योगिनीपुर (दिल्ली) मे हैं तो किसी का कहना था कि कोल्हापुर में। उनके समुद्रपार होने की वात भी कही जाती थी। कुछ लोगो का खयाल था कि वे ग्रौर कही नही मालवा में होना चाहिए। ग्रौर कुछ लोगो के कथनानुसार तो वे पाटन में ही सरस्वती नदी के किनारे छिपे वैठे थे।

उदयन इतना समझ गया था कि जव तक कुमारपाल को यह विश्वास नही हो जाएगा कि उन्हें क्यो ढूंढ़ा जा रहा है वे कदापि प्रकट न होंगे। वह इस वात को भी समझ चुका था कि महाराज जयसिंहदेव की मृत्यु को छिपाने की लाख कोशिश की जाए ग्रव वह छिपी नही रह सकती। सव लोगो को मालूम हो गया होगा कि महाराज का स्वर्गवास हो गया है ग्रौर यह समाचार उडता हुग्रा कुमारपाल को भी, वे कही भी क्यो न हो, ग्रवश्य मिल गया होगा। ग्रौर यदि समाचार मिल गया है तो कुमारपालजी पाटन ग्राए बिना रहेंगे नही। इसलिए उदयन ने जितने भी रास्ते वाहर से पाटन में ग्राते थे उन सव पर ग्रपने विश्वस्त ग्रनुचरो को नियुक्त कर दिया था। वाहर से ग्राने-जाने वालो पर कडी दृष्टि रखने के ग्रादेश महामात्य ने दे रखे थे। उदयन डरा कि कही इस कडे चौकी-पहरे मे कुमारपालजी ग्रसमय ही विरोधी पक्ष के हाथ न पड जाएँ इसलिए उसने रास्तो पर ग्रपने ग्रादमियो की व्यवस्था कर दी थी ग्रौर इस वात की सूचना कृष्णदेव को भी दे दी थी।

इधर पाटन के राजमहल में सिंहासन पर महाराज जयसिंहदेव की पादुका रखकर राज-काज चलाया जा रहा था। महामात्य महादेव सवेरे ही राजसिंहासन के ग्रागे पहुँच जाते ग्रौर मानो महाराज स्वय सिंहासन पर वैठे हो इस तरह उनकी पादुकाग्रो को प्रणाम कर वही पास वैठकर शासन-सम्वन्धी कार्यों को करने लगते थे। वाहर राजप्रागण में सेनापति केशव ग्रपने श्यामकर्ण घोडे पर सवार होकर ग्रा जाते ग्रौर सैनिको की कवायद ग्रादि देखने लगते थे। वर्वरक ग्रपने स्थान पर इस तरह खडा हो जाता कि सभाजन तो कोई उसे देख न सके परन्तु महाराज जरूरत पडने पर तुरत देख ले। सव कुछ ठीक उसी तरह होता था जैसा महाराज के जीवित रहने पर हुग्रा करता था। सव वही नित्य नैमित्तिक कार्य होते थे। कविजन ग्राते। विद्वान राजसभा में वैठते। श्रेष्ठी समुदाय ग्राता ग्रौर विदा किया

जाता। दण्डनायक, मण्डलेश्वर और सामन्त अपने-अपने साँढनी सवारो के हाथ अपने प्रदेशो के समाचार पहले की ही तरह भेजा करते। ऊपर-ऊपर से देखने पर तो ऐसा ही लगता था मानो महाराज जयसिंहदेव अभी जिन्दा है।

महामात्य महादेव की आकाक्षा भी यही थी कि सब-कुछ इसी तरह चलता रहे और विना किसी सघर्ष के वे पाटन के शासन-सूत्र योग्य उत्तराधिकारी के हाथो में शान्ति से सौंप दें। पाटन में अवश्य किसी तरह की गडवड और विक्षोभ-कारी हलचल नही थी, लेकिन ऐसे समय आवू, शाकभरी, मालवा, सोरठ आदि क्यो चुप रहने लगे! उन्हे तो जैसे ही पता लगा कि महाराज जयसिंह नही रहे वैसे ही उन्होंने सेना सजाना और रणवाद्य वजाना आरम्भ कर दिया था।

अर्णोराज ने अवश्य इस समय दुहरी नीति से काम लिया। उसका वेटा महाराज जयसिंहदेव का सगा दौहित्र था। उसने सोचा कि हो सकता है, पट्टनी मेरे वेटे को पाटन का राजा वना दें और तव तो अपनी पौ वारह है। इसलिए अभी खुले विरोध में आना उसने ठीक नही समझा। टट्टी की ओट से शिकार खेलने का निश्चय किया। उन दिनो मालवा का एक नामधारी राजा था वल्लाल* अर्णोराज ने उसे उकसाया। घर वैठे अवसर आया है। वहती गगा में तू भी हाथ पखार ले। यदि पाटन ने विरोध किया तो मैं तेरी सहायता करूँगा और पट्टनियो को पीट-पाटकर रख दूंगा। यदि वे चुप रहे और गडवड करने न आए तो तू मजे से राजराजेश्वर अवन्तीनाथ वन जाएगा। यह मौका चूक गया तो पाटन तुझे निगल जाएगा और डकार भी न लेगा। फिर तो जीवन-भर पछतावा ही हाथ रहेगा। वल्लाल उसके चकमे में आ गया और फौरन सेना इकट्ठी करने लगा।

जैसे ही पाटन में ये समाचार पहुँचे खलवली मच गई। महामात्य ने तुरन्त राजसभा की आयोजनाकर दूर-पास के सभी सामन्तो, माडलिको और राज-

* यशोवर्मा के वाद जयवर्मा मालवा का राजा हुआ। उसे परास्त करके यह कोई कर्णाटकी थोड़े समय के लिए मालवा का अधिपति वन वैठा था कुमारपाल का इससे युद्ध हुआ था। कर्णाट के राजा जगदेव मल्ल ने शायद अपने किसी राजपुरुष को, जिसका नाम वल्लाल था, मालवा का अधिपति वना दिया होगा।

पुरुषों को बुला भेजा । कृष्णदेव और उदयन, मल्हारभट्ट और सेनापति केशव आदि तो वही थे । लाट देश से काक आ पहुँचा । अब केवल त्यागभट्ट की प्रतीक्षा की जा रही थी । पता नही, वह पहुँच भी पाएगा या नही । सभी को यही चिन्ता थी कि कही उसके आने से पहले ही मालवा-युद्ध की चिनगारी न सुलग जाए ।

उत्तराधिकार का प्रश्न अभी हल भी नही हो पाया था कि यह एक और विकट समस्या उठ खडी हुई ।

प्रस्तुत उपन्यास ऐसे ही अनिश्चित, शकाकुल वातावरण में आरम्भ होता है । वर्ष था विक्रम सवत् ११९९ और कार्तिक महीने के आठ-दस दिन बीत चुके थे ।

१ : दो घुड़सवार

रात आधी वीत चली थी। चटक चाँदनी छिटकी हुई थी। ऐसे समय पूरब दिशा से पाटन की ओर आने वाले रास्ते पर दो घुडसवार सरपट दौडे चले आ रहे थे। निश्चय ही वे पाटन जा रहे थे। किसी को पता न लग जाए शायद इसी लिए दोनों चुप थे। घोडों को चुपचाप सरपट दौड़ाते हुए वे नगर के उपान्त को ध्यान से देखते जा रहे थे।

पता नहीं इतनी रात वीते चुपचाप पाटन की ओर जा रहे ये घुडसवार कौन थे ? उनकी निगाहें सामने पाटन की ओर लगी थी। घोडों को तेज पर सावधानी से भगाए जा रहे थे। अवश्य इनके पास कोई महत्त्वपूर्ण सन्देश होना चाहिए। या तो ये रात में ही पाटन पहुँच जाना चाहते थे, या फिर चाँद डूबने से पहले रात में ठहरने का कोई मुकाम पा लेना चाहते थे। इसी लिए ये एक-सी तेज़ गति से घोडों को दौडा रहे थे। कभी-कभी ये मुख्य रास्ते पर आ जाते थे, परन्तु अधिकतर झाड-झखाडों की ओट लेकर ही चल रहे थे। दोनों ही विलकुल सतर्क थे। इस वात की पूरी सावधानी वरत रहे थे कि कोई इन्हें देख न ले।

उनमें एक प्रौढ था—शक्तिशाली, कसीले शरीर वाला। जीवन के अनुभवों ने उसे हर क्षण सतर्क और सावधान रहना सिखा दिया था। शायद इसी लिए आधी रात हो जाने पर भी उसकी पलक तक नहीं झपक रही थी। मन और आँख दोनों को जागृत रखे हुए वह हर चीज़ को वारीकी से देखता जा रहा था।

दूसरा घुडसवार युवक था। शरीर उसका भी सशक्त और सुडौल था।

यदि रात न होती और रास्ता चल रहा होता तो देखने वाले उसे देखते ही रह जाते । शरीर की शोभा देखकर भूख-प्यास मिटने का मुहावरा उस पर सोलहो आने सही बैठता था । बडी सामर्थ्य थी उसके शरीर मे और चेहरा प्रभावशाली था । नख से लेकर शिख तक वह एक अद्‌भुत श्री से मडित था ।

अपना वास्तविक रूप छिपाने के लिए दोनो ने इस समय छद्मवेश धारण कर रखा था । और किसी वेश में होते तो उनके ऊँची नस्ल के घोडे अवश्य भडा फोड देते इसलिए दोनो घोडो के सौदागर बने हुए थे । और यह रूप उन पर फव भी खूव रहा था ।

वैसे तो चाँदनी खूव छिटकी हुई थी, परन्तु चाँद अव डूवने ही वाला था । आकाश मे एक-एक कर तारे निकलते जा रहे थे । चारो दिशाएँ विलकुल शान्त और नीरव थी । घोडो की टापो की आवाज के सिवा सव कही सन्नाटा था । सामने नगर के उपान्त मे कभी-जभी कोई अलाव जल उठता तो पता चलता कि वहाँ कुछ गति और जीवन है । वाकी तो अन्धकार और प्रकाश की उस उजली-काली चादर तले सव कुछ सोया हुआ और मृतकवत् लग रहा था ।

छाया-प्रकाश की यह ओट उन दोनो घुडसवारो के लिए वडी लाभदायी सिद्ध हो रही थी । सहसा सामने दूर पर एक अलाव जलकर वुझ गया । आगे-आगे चल रहा युवक घुडसवार अपने घोडे की वाग खीचकर वही खडा हो गया । थोडी देर वह टक लगाये पाटन की ओर देखता रहा और तव वोला

"ये अलाव तो कोविदासजी, नदी किनारे के ही मालूम पडते है । इसका अर्थ यह हुआ कि हम पहुँच गए । रात कही वाहर ही काटेगे या नगर मे चलेगे ?"

"इस समय नगर में ? नही महाराज, नही ! मेरे खयाल में तो वाहर ही कही रुक जाना चाहिए । देखना चाहिए कि इतने में कोई मन्दिर या धर्मशाला है या नही ?" प्रौढ ने कहा ।

"मन्दिर-वन्दिर तो नही, परन्तु वह एक वरगद जरूर है जो वाँहें फैलाए हमे वुला रहा है । लेकिन अगर कोई वहाँ हुआ तो व्यर्थ की परेशानी हो जाएगी ।"

"शायद वह पहुँच गया होगा ।"

"वह कौन ?"

"अरे वही जो हमे रास्ते में मिला था । यदि वह न वताता तो मैं इस समाचार

को कभी सच न मानता। उसने कहा तो मानना ही पडा। बाकी मुझे तो अभी भी विश्वास नही हो रहा कि महाराज जयसिहदेव नही रहे। उनके मरने की बात को मै सच मान ही नही सकता। उसके मुँह से सुनकर तो ऐसा लग रहा है मानो मेरी टाँगें ही टूट गई हो। यदि उससे हमारी भेट न होती तो क्या होता ?"

"होता क्या ? हम सीधे पाटन पहुँचते और वहाँ हमें यह बात मालूम हो जाती। ऐसी बात छिपकर तो रह नही सकती है। हाँ, उसने अपना नाम क्या बताया था ? मुझे तो याद भी नही रहा।"

"हठीला नाम बताया था और कह रहा था कि मै कृष्णदेवजी का आदमी हूँ।"

"हाँ, ठीक है। यही नाम बताया था। भील लगता है। लेकिन क्या वह पहुँच गया होगा और हमसे मिलेगा ?"

"सच पूछिए तो महाराज, मुझे इन तिलो में तेल दिखाई नही देता। महाराज जयसिहदेव की मृत्यु हो जाने के बाद हम वहाँ गए भी तो कौन हमारी बात सुनेगा ? बेमालिक के खेत की-सी हालत हो रही होगी इस समय वहाँ की। उस नक्कार-खाने में हमारी तूती की आवाज़ किसे सुनाई देगी ? किसी अपशकुन मे ही हम यहाँ के लिए चले थे। सारी यात्रा निष्फल होकर रह जाएगी।"

"मुझे भी कुछ-कुछ ऐसा ही लग रहा है।" युवक ने कहा "मन कहता है कि अब वहाँ जाना व्यर्थ है। जब जयसिहदेव जैसे राजराजेश्वर ही नही रहे तो जाकर क्या होगा ? हम हवा मे तलवार भाँजने मे तो रहे !"

"तो क्या विचार है, लौट चलें यही से ?" प्रौढ ने अपने घोडे की बाग खीचते हुए कहा।

"लोगो की बात पर तो हमें विश्वास होता नही। सिर्फ यही सोचकर चले आए थे कि महाराज बीमार हैं तो पाँच-दस दिन पाटन मे रहकर देख लेंगे। लेकिन महाराज का सान्निध्य हमारे भाग्य में लिखा ही नही तो मिलेगा कहाँ से ! 'घर से भागकर जगल में गई तो वहाँ लग गई आग' वाली मसल चरितार्थ हो रही है। अब आप ही बताइए कि क्या करें ? लौट चलें या उस आदमी ने जो-कुछ कहा है उसके सच-झूठ की पडताल कर ली जाए ? वह कह तो गया है कि हम उससे सवेरे सरस्वती के किनारे पर मिलें। बताइए आपकी क्या राय है ?"

"इस सम्वन्ध मे पहली विचारणीय वात यह कि वह कृष्णदेवजी का आदमी था, यही उसने हम से कहा था। फिर कृष्णदेवजी नडूल के हैं। और दूसरी वात यह कि हम उस आदमी को अपना नाम बता चुके हैं।"

"इससे क्या ?"

"उसने वहाँ जाकर हमारे आने की वात बता दी होगी। अब यदि हम नही जाते है तो अच्छा नही लगेगा।" प्रौढ ने शान्त स्वर में अनुभव की गरिमा से मण्डित मन्तव्य प्रकट करते हुए कहा "और कुछ न होगा तो महाराज के अवसान पर अपना हार्दिक दु ख और समवेदना प्रकट करके लौट आएँगे। फिर अभी से यह नही कहा जा सकता कि पाटन की राजनीति और वहाँ का घटना-क्रम कौन-सा रुख अखत्यार करेगा। उत्तराधिकार का प्रश्न अभी अनिर्णीत है। हो सकता है कि हमारा ही दाव लग जाए। न भी लगे तो चिन्ता नही। काका जिस राज्य को पचा वैठा है उसे तो हमे अव अपनी तलवार के ज़ोर से ही प्राप्त करना होगा। न माँगने से मिल सकता है, न कोई दिला सकता है। हम आए थे न्याय माँगने, लेकिन जो न्याय करने वाला था वही नही रहा तो न्याय होगा कहाँ से !"

"मेरी तो मन-की-मन मे रह गई। क्या इरादे थे और क्या हो गया ! वडी उमग और आशा से चला था कि कुछ दिन महाराज जयसिंह सिद्धराज की चाकरी मे रहूँगा। यदि यह आशा पूरी हो जाती तो जीवित अमरावती की इन्द्रसभा मे उपस्थित रहने का आनन्द प्राप्त हो जाता। जगदेवजी को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मेरी भी अभिलाषा थी। लेकिन अव क्या हो सकता है ! महाराज चल बसे और मन-की-मन मे रह गई। किसी तरह विश्वास नही होता कि महाराज नही रहे।"

"विश्वास कैसे हो ? महाराज थे धरती का आधार ! उनका मरना धर्म-स्तम्भ का टूटना है ! कोई उनके गुणो का क्या वखान करे ! लगता था जैसे अवन्ती के राजा वीर विक्रमादित्य ही इस धरती को धन्य करने के लिए फिर से अवतरित हुए हैं। कितना यश और कैसा पराक्रम था महाराज जयसिंहदेव का ! लेकिन काल के आगे किसी का वस नही चलता। उम्र की रेख, कोई कितना ही क्यो न करे, तिल-भर नही बढती। पुण्यार्जन मे तो महाराज ने अपनी ओर से कोई कसर वाकी रहने नहीं दी थी। कन्धो पर गगाजल की काँवर लेकर पाँव पयादे सोमनाथ

गए। रास्ते में सिर्फ 'शिलोञ्छ' से जीवन-निर्वाह कर 'ऋत'* का पालन किया। कहते है कि भगवान सोमनाथ ने प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष दर्शन भी दिए। कुलगुरु भावबृहस्पतिजी ने महामृत्युंजय का जप और कष्ट-विमोचन अनुष्ठान भी किया। लेकिन विधि के लेख को कोई मिटा न सका। स्वयं भगवान त्रैलोक्यपति भी उनकी आयु-मर्यादा को बढाने में समर्थ न हुए। और अब हमे उत्तर कौन देगा? कौन तो राजा होगा और किस का यह राज्य होगा?"

"जो इस पर अधिकार कर ले उसी का, ठीक है न कोविदासजी?"

"यों अधिकार कोई कैसे कर लेगा महाराज? आखिर तो पाटन की अपनी परम्पराएँ है। उन परम्पराओ के वाहक और निर्वाहक महामात्य महादेव पूरी सतर्कता से सिद्धराज महाराज के सिंहासन की चौकसी कर रहे हैं। स्तम्भतीर्थ के उदयन मेहता, सेनापति केशव, मोढेरक के अधिपति और तुरगाध्यक्ष कृष्ण-देवजी आदि सभी शूरमा उनके साथ है। सिंहासन पर किसी का काबिज हो जाना हँसी-खेल तो नही है। ये सब वीर महाराज के नाम पर मर मिटेंगे पर किसी अपात्र को गादी पर बैठने न देंगे।"

"ये सब शूरमा है, वीर है, पर उत्तराधिकारी तो नही हैं न? और हम यही पूछ रहे हैं कि अब महाराज जयसिंहदेव का उत्तराधिकारी कौन . "

कोविदास जवाब देने जा ही रहा था कि किसी की आहट पाकर चुप हो गया। उसे लगा जैसे कोई पाँव दबाता इस ओर बढा चला आता है। उसे मन-ही-मन आश्चर्य होने लगा कि इस समय आने वाला कौन हो सकता है।

"हम बातो में ऐसे मगन हुए महाराज कि हठीले की चेतावनी सफा भूल गए।" उसने धीमे से कहा "इन दिनो पाटन में किसी भी अपरिचित को प्रवेश नही करने दिया जाता। नगर-सीमा का कोई प्रहरी शायद इसी ओर चला आ रहा है। हमें पा गया तो मारे सवालो के नाक में दम कर देगा। उसके आने से पहले ही उस बरगद की छाँह में सरक चलिए। सवेरे सरस्वती के किनारे हठीले को कही-न-कही ढूंढ ही लेंगे। बरगद के नीचे काफी अँधेरा है और एकान्त भी।"

* खेतों में पड़े हुए अन्न को 'शिलोञ्छ' और उससे जीवन-निर्वाह को 'ऋत' कहते हैं।

—अनुवादक।

दोनो फौरन घोडो पर से उतर गए और अपने-अपने घोडे की वाग थामे पैदल वरगद के नीचे पहुँच गए ।

वरगद के नीचे प्याऊ-सी वनी हुई थी । जरूर दिन में वहाँ कोई प्याऊ लगा-कर वैठता था । इस समय खाली मटके औंधे रखे हुए थे । वरगद के तने के पास ही पीछे की ओर एक झोपडी वनी हुई थी । घोडो को चुप खडे रहने का सकेत-कर दोनो व्यक्ति दवे कदमो से झोपडी की ओर वढे ।

झोपडी के अन्दर दीया टिमटिमा रहा था और उसका मटमैला प्रकाश किवाडो की सेंध में से वाहर आ रहा था । विना आवाज किए झोपडी के द्वार पर पहुँचकर उन्होंने अन्दर की टोह लेने के लिए किवाडो पर कान लगा दिए । अन्दर कोई दो व्यक्ति वहुत धीमे स्वर मे वात कर रहे थे । केवल ध्वनि सुनाई दी, शव्द समझ मे नही आए । काफी देर वही वैठे वे सुनने और समझने की कोशिश करते रहे । तभी दूर से निकट आती किसी के चलने की आहट सुनाई दी । उन्हें हठीले की चेतावनी याद हो आई । सीमान्त के प्रहरी सारी रात घूमते रहते हैं, अजनवियो पर कडी निगाह रखी जाती है और देखे जाते ही पूछ-ताछ होने लगती है । आने वाला अवश्य प्रहरी होना चाहिए । उसके हाथ मे पडने से पहले झोपडी में आश्रय ले लेना ठीक रहेगा । कोविदास ने धीरे से झोपडी के दरवाज़े को धकेला । अन्दर की वातचीत वन्द हो गई और भीतर मौत का-सा सन्नाटा छा गया । उसने फिर दरवाजे को धक्का दिया । इस वार भीतर का प्रकाश हटाकर परे रख दिया गया । अव कोविदास ने तीसरी वार जरा ज़ोर का धक्का मारा और थोडे ऊँचे स्वर में कहा "अन्दर कौन है ? ज़रा खोलो तो भाई ।"

भीतर कुछ घुसपुस होने लगी । स्वर घवराए हुए थे । शायद यह वहस हो रही थी कि खोलें या न खोले । ऐसा भी लगा मानो अन्दर किसी का हाथ खोलने को उठा तो सही, परन्तु आगल पर स्थित होकर रह गया ।

कोविदास ने एक धक्का और मारा ।

भीतर से किसी का घवराहट-भरा स्वर सुनाई दिया "कौन है ? और किस से काम है ?"

"काम तो किसी से नही है भाई । दो पथिक हैं । रास्ता भटक गए हैं । थोडी

देर के लिए बसेरा चाहते है।"

प्रत्युत्तर में जिसने दरवाज़ा खोला वह ब्राह्मण-जैसा लग रहा था। उसने पूरे किवाड़ नही खोले। थोडा-सा उघाडकर आगन्तुको को ध्यान से देखने लगा।

२ : अचलेश्वर

फिर दरवाज़ा थोडा अधिक खुला और कोविदास और उसका युवक स्वामी झोपड़ी के अन्दर चले आए।

दरवाज़ा खोलने वाले ब्राह्मण ने एक निगाह बाहर की ओर डाली और फिर तुरन्त किवाडे बन्द कर लिए।

झोपडी दो भागो में बँटी हुई थी। अन्दर दीया अब भी जल रहा था। ब्राह्मण भीतर जाकर दीया ले आया।

दीये के उजाले में कोविदास ने झोपडी मे चारो ओर निगाहें घुमाई। वहाँ की दशा देखकर उसे आश्चर्य हुआ। भीख माँगने के ठीकरो के सिवा उस झोपडी में कुछ भी नही था। एक ओर सोने के लिए पुआल का ढेर लगा हुआ था। बरतन-भाँडे सब-के-सब या तो मिट्टी के या नारियल के छिलके के थे। धातु-पात्र वहाँ एक भी नही था। एक कोने में तीन-चार तुम्बे लटके हुए थे। वही नीचे नारियल के चार-पाँच खोल उलटे रखे हुए थे। झोपडी की यह साज-सज्जा उसमें रहने वालो की भयकर गरीबी को पुकार-पुकारकर बता रही थी। कोविदास को सन्देह होने लगा कि किसी शत्रु राजा के गुप्तचर पाटन का रग-ढग देखने के लिए वेष बदलकर तो नही रह रहे है! उसने अपने युवक साथी का हाथ ज़रा-सा दबाकर सतर्क रहने का सकेत किया।

ब्राह्मण ब्रह्मचारी ने सम्भवत. इसे लक्ष्य किया, शायद नही भी किया, लेकिन अपने हाथ में लिये हुए दीये को उसने एक ओर रख दिया और पुआल बिछाते हुए बोला "आप लोग बहुत अच्छे समय पर आए। मै गाँव से करभक (सत्तू

की तरह का पदार्थ) माँग लाया था। लेकिन अचलेश्वरजी की तबीयत ठीक नही है, इसलिए फेकने जा ही रहा था कि आप लोग आ गए। यह प्याऊ है न, इसलिए दिन में तो वस्ती रहती है। कोई-न-कोई वना ही रहता है। सुख-दु ख की वाते करते कव समय वीता जाता है, कुछ पता नही चलता। लेकिन रात काटे नही कटती, खाने को दौडती है। एकदम निर्जन जगह है। लोगो को भूत-प्रेत का अन्देशा भी है। कोई इधर नही फटकता। धन्य भाग, कि आज आप लोग आए।"

"ऐसी भयावनी जगह में आप रात मे क्यो रहते हैं? वस्ती में क्यो नही चले जाते?"

"द्रम्म का मोह और द्रम्म का लोभ! दो द्रम्म पाने की आशा में इस निर्जन जगह में प्याऊ के वरतनो की रखवाली करते हुए पडे रहते है। लेकिन मारे डर के जान निकल जाती है। खैर, होगा। आप लोग थोडा करभक खा लीजिए और विश्राम कीजिए।" यह कहकर उसने नरेटी के औंधे पडे कटोरो की ओर हाथ वढाया।

"नही, नही, पण्डितजी, रहने दीजिए।" कोविदास ने उसकी इस चेष्टा पर फुर्ती से कहा "तकलीफ मत कीजिए। आधी रात वीते भी कोई खाने का समय होता है! और फिर हमें भूख भी नही है। भोजन साथ लेकर चले थे, सो सूर्यास्त के पहले ही खा-पी चुके है। अच्छा, आपका नाम क्या है?"

"माधवेश्वर।"

ब्राह्मण ब्रह्मचारी वैसे तो उन्ही की ओर देख रहा था, लेकिन अपना नाम पूछे जाते ही और सतर्क हो गया और जरा तीखी नजरो से देखकर वोला "कहाँ के हैं आप लोग? मरु-भूमि मारवाड के?"

"नही जी! अर्वुद-मडल से आ रहे हैं। घोडो के व्यापारी है। सुना कि महाराज को घोडे चाहिए तो इधर का रुख किया, लेकिन रास्ते में पता चला कि "

"महाराज का देहावसान हो गया! गजव ही हुआ समझो! राजा क्या मरे धरती विधवा हो गई!"

"हमने सुना तो कमर ही टूट गई। वडा आस लगाकर आए थ। भाग्य से रात विताने को यह जगह मिल गई। सुवह होते ही लौट जाएँगे।"

"अच्छी वात है, तो अब आराम कीजिए।" माधवेश्वर ने कहा।"

और वह दोनो के लिए पुआल विछाने लगा। ब्रह्मचारी निरा गावदी नहीं था। दोनों को देखते ही वह समझ गया था कि ये घोडो के व्यापारी तो कभी हो नही सकते। तभी युवक ने अपना मुँह घुमाया और दीये के प्रकाश मे ब्रह्मचारी को उसके चेहरे की झलक दिखाई दे गई। वह क्षण-भर स्तम्भित देखता ही रह गया। ऐसा वीर-श्री से मण्डित चेहरा घोडे के किसी भी व्यापारी का हो नहीं सकता। इतना तेज और ऐसा वीरत्व! शरीर भी इतना कसा हुआ और शक्ति-शाली मानो निरा फौलाद है। हाथी की सूँड-जैसे वलिष्ठ हाथ—एक ही थप्पड में पहलवानो के भी होश ठिकाने लगा दे। नही, यह आदमी घोडो का व्यापारी नहीं हो सकता। वरगद मे राजा का जो भूत कहा जाता है कहीं वही तो आधी रात में शरीर धारण करके नही उतर आया है! लेकिन नही, भूत भी नही है। है तो जीता-जागता आदमी ही। ब्रह्मचारी माधवेश्वर उस युवक के शरीर-सामर्थ्य को देखता ही रहा।

अभी तक उसने इन नवागन्तुको को अचलेश्वर की निगाह में नही आने दिया था। अचलेश्वर झोपडी के अन्दर वाले हिस्से में पुआल के ढेर पर पडा करवटें वदल रहा था। उसके कराहने की आवाज़ भी सुनाई दे रही थी। असल में तो वह इस वात को जानने के लिए मरा जा रहा था कि आगन्तुक कौन है। माधवेश्वर उसके सकेतो को समझ गया और वोला "अव आप लोग सो जाइए। थक भी गए होगे। मैं ज़रा अपने गुरु भाई अचलेश्वरजी की सेवा-टहल कर लूँ। आज उनकी तवीयत अच्छी नही है। सिर और हाथ-पाँव दवा देने से उन्हें कुछ आराम मिलेगा। दीये की आपको जरूरत न हो तो अन्दर ले जाऊँ। तेल तो इसका भी चूक ही चला है।"

कोविदास तो चाहता ही था कि यह वला जल्दी-से-जल्दी टले। जिस निगाह से माधवेश्वर युवक को देख रहा था वह कोविदास को अच्छी नही लग रही थी। इतना वह समझ गया था कि इस निर्जन प्याऊ में ये दोनो आदमी किसी गहरे मतलव से ही पडे हुए हैं। लेकिन कौन हैं, कहाँ के है और यहाँ क्यो पडे हैं, यह वात वह जान नहीं पाया था। फिर माधवेश्वर ने दाढी उगा रखी थी इसलिए पीसी हुई औषधि और मूँड मुँडाये जोगी की तरह उसे पहचानना

और भी मुश्किल हो गया था। और जिसे अचलेश्वर कहा गया था उसकी तो झलक भी देखने को नही मिली थी। कोविदास को चिन्ता होने लगी कि कही हम किसी मुसीवत में न फँस जाएँ।

इसलिए जैसे ही माधवेश्वर झोपडी का दरवाज़ा वन्द करके अन्दर के हिस्से में गया उसने अपने युवा स्वामी को आँख से सतर्क रहने का इशारा कर दिया और फिर धीरे से वोला "महाराज! मुझे तो यहाँ के हाल-चाल ठीक नही लगते। सवेरे जल्दी ही भागना होगा। रात में भी आप नीद मे गाफिल मत हो जाना, जागते रहना।"

"क्यो?" युवक ने धीरे से पूछा।

जवाव में कोविदास ने झोपडी के भीतरी भाग की ओर इशारा किया। युवक ने उधर देखा तो जिसे अचलेश्वर कहा गया था वह दीये के उजाले मे सिर उठाए उन्ही की ओर देखने की कोशिश कर रहा था।

उसके चेहरे-मोहरे और आँखो के तेज को देखकर दोनो आदमी चकित रह गए। जिसका चेहरा इतना प्रभावशाली हो वह आदमी सामान्य भिखारी या मामूली अचलेश्वर नही हो सकता। जरूर कोई रहस्य है। लेकिन है कौन?

और कही हम किसी जाल में तो नही फँसे जा रहे है?

कोविदास परिस्थिति के वारे मे केवल अनुमान ही कर सकता था। इस जगह और यहाँ के आदमियो के वारे में उसे कोई जानकारी नही थी, न उसकी कोई रुचि ही थी। वे तो महाराज जयसिहदेव के पास एक प्रसग में न्याय माँगने जा रहे थे। रास्ते में उन्हें हठीला मिल गया और देखते ही उसने उन्हें पहचान भी लिया। विवश होकर इन्हें अपने को प्रकट करना पडा। उसने जाकर अपने स्वामी कृष्णदेव को इनके आने की वात जरूर वता दी होगी, इसलिए न चाहते हुए भी पाटन नगर के अन्दर जाना होगा। नही तो उनका विचार, महाराज के मृत्यु-सवाद मिलने के वाद, रास्ते से ही लौट जाने का था!

लेकिन कोविदास को क्या पता कि उसका युवा स्वामी अगले पचास वरसो के लिए पाटन का प्रवल समर्थक और अडिग रक्षक वनने जा रहा था। जव वह स्वय परिस्थिति से निर्लिप्त रहना चाह रहा था विधना उसके स्वामी के लिए कुछ दूसरा ही आयोजन कर रही थी।

उधर माधवेश्वर अन्दर गया तो उसने पाया कि अचलेश्वर एक हाथ की टेक लगाए शरीर को थोडा ऊँचा किये आगन्तुको के बारे मे जानने की उत्सुकता मे भरा उसी की ओर देख रहा है।

उसने धीरे से कहा "कोई दो बटोही है। एक तो राजवशी मालूम पडता है।"

"लेकिन हैं कौन ? कहाँ के रहने वाले है ? क्यो आए हैं ? पाटन ही जा रहे है ? घोडे भी साथ हैं या नही ?"

"अपने को घोडो का सौदागार बताते हैं इसलिए घोडे तो साथ होंगे ही। लेकिन सौदागर जरूर नही है। एक की वीरता तो उसमे पुकार-पुकार कर कह रही है कि मै राजवशी हूँ। वसे कहते तो यही हैं कि पाटन जाएँगे, लेकिन कभी यह भी कहते है कि यही से लौट जाएँगे।"

"तुझे कौन लगते है वौसरि ?"

"मै पहचान नही पाया महाराज। शायद आप देखकर पहचान ले। मैंने आपका नाम अचलेश्वर और अपना नाम माधवेश्वर बताया है। याद रखिएगा बातचीत में भूल से दूसरा नाम न निकल आए।"

"अच्छा, अभी तो सो जाओ। सवेरे देखा जाएगा। पता चल जाएगा कि कहाँ जा रहे हैं। लेकिन कोई दगा-फरेब तो नही है ? जानते ही हो कि हमारे सिर पर हजार तलवारें लटकी हुई हैं।"

"फरेब-शरेब तो नही लगता। आदमी भले और ईमानदार मालूम पडते है।"

"फिर ठीक है। सोओ लम्बी तानकर ! लेकिन वौसरि, तुझे अपने अनुभव की एक बात बताता हूँ। भरोसे की भैंस पाडा जनती है और मर्द विश्वास में मारा जाता है। इसलिए इनका भी विश्वास मत करो। रात जागते रहो—मैं भी जागता रहूँगा। सवेरे की गत सवेरे देखी जाएगी।"

थोडी देर बाद तेल चूक जाने से दिया भी बुझ गया।

अँधेरी नीरव रात में नगर का उपान्त निर्जीव की तरह निःस्पन्द हो गया।

सिर्फ एक व्यक्ति आकुल और अशान्त था। यह वह व्यक्ति था जिसका नाम माधवेश्वर ने अचलेश्वर बताया था। रह-रहकर उसके मन मे यह विचार आता

था कि यह जो नवागन्तुक आया है जरूर गडवड करने के ही विचार से आया है। डीलडील और चेहरे-मोहरे से समर्थ लगता है। लेकिन कौन है ? उसने कई नाम सोच डाले, पर एक भी ठीक नही उतरा। इस तरह सोचते-सोचते जाने कव उसे नीद आ गई। सवेरे आँख तव खुली जव उसके साथी ब्राह्मण युवक ने आकर उसे जगाया। पहले तो मामला उसकी समझ मे ही नही आया। लेकिन जव पता चला तो वेचारे के हाथ के तोते उड गए। मारे घवराहट के उसकी साँस फूल गई।

वौसरि ने वताया कि जव सवेरे ब्राह्म मुहूर्त मे उठकर अपने अतिथियो को देखने गया तो दोनो को गायव पाया। पता लगाने के लिए झोपडी से वाहर भागा तो पाटन की ओर जा रहे घोडो की टापो की गूँज सुनाई दी। निश्चय हो गया कि रात वाले अतिथि ही घोडो पर सवार भागे जा रहे थे। घवराया हुआ अन्दर आया और सोते हुए अचलेश्वर को ज़ोर-ज़ोर से हिला-डुलाकर जगा दिया।

३. वौसरि का भिक्षाटन

क्या कहा तूने ? नही है ? दोनो चले गए ? तव तो वौसरि

"सुनिए महाराज ! मेरी एक वात गाँठ वाँध लीजिए। जो डोगा इतनी मेहनत के वाद किनारे आ लगा है वह डूवना नही चाहिए। पेड के पत्तो तक के कान होते हैं। इसलिए अव न मैं वौसरि हूँ और न आप महाराज कुमारपाल। मैं हूँ माधवेश्वर और आप हैं अचलेश्वर। कोई हो या न हो, अव हम आपस में इन्ही नामो का प्रयोग करेंगे।"

"लेकिन वे चले कव गए ?" कुमारपाल को अपनी आँख लग जाने का पछतावा हो रहा था। "वस जरा सी झपकी लगी थी—मुश्किल से दो पल !"

"अभी ज्यादा दूर नही जा पाए होंगे।"

"यह जगह तुरत छोड देनी चाहिए।" कुमारपाल ने कहा "पता नही,

मित्र थे या शत्रु ? मित्र तो हमें कोई मिलता नहीं इसलिए बहुत करके तो शत्रु ही होंगे। अब जब कि मामला लगभग किनारे आ गया है, हमें किसी तरह का खतरा नही मोल लेना चाहिए। आज का दिन मैं बरगद की खोह मे छिपकर काट लूंगा और रात में यह जगह छोड देंगे।"

"थोडा-सा करभक बचा रखा है। आज का दिन उसी से चला लीजिएगा। मैं जा रहा हूँ भिक्षाटन के लिए। रात में लौटूंगा। पाटन की ओर जो गए है वे पडे होंगे सरस्वती नदी के किनारे। वे कौन हैं और कहाँ से आए हैं यह मालूम करना ही होगा। और आपका खयाल ठीक है, अब इस जगह का कोई भरोसा नही रहा।"

इतना कहकर वौसरि अपने शरीर पर भभूत मलने लगा। फिर उसने एक-एक कर सात-आठ रुद्राक्ष की मालाएँ गले में पहन ली। कपाल पर चन्दन का त्रिपुंड लगाया। हाथ में रुद्राक्ष के बेरखे (कगन) पहने। अन्त में उसने नरेटी का अपना भिक्षापात्र उठा लिया और 'जय हर भोला! जय बम भोला!' कहता हुआ चलने के लिए तैयार हो गया। लेकिन झोपडी से कदम बाहर निकालने के पहले उसने चारों ओर दृष्टि घुमाकर एक बार देख लिया—कही वे लोग कोई चीज़ रख तो नही गए?

फिर वह एक क्षण कुमारपाल की ओर देखता रहा। उसे वह चेहरा एक ऐसे आदमी का लगा जो अपना विश्वास ही खो बैठा हो और आस्था का कोई बल, कोई आधार जिसके पास रह न गया हो। देखकर उसका मन दुखित हो गया। वह कुमारपाल के साथ पिछले कई बरसो से यहाँ-वहाँ भटकता फिर रहा था। अब कही जाकर उसे डोंगी किनारे लगती दिखाई दे रही थी। ऐसे समय कुमारपाल का विश्वास खोना या हिम्मत हार बैठना किनारे आई नाव को डुबो देना था। वौसरि को यह अच्छा नही लगा। इतने दिनो से देश-विदेश में कुमारपाल के साथ भटकते हुए वह उसका मित्र बन गया था, उसे दो बात कहने का अपने-आपको अधिकारी समझने लगा था। कुमारपाल के साथ स्वेच्छा से दुख उठाने के लिए वह तैयार हुआ था। घर-द्वार और भाई-बन्धुओ को छोडकर वह उनके साथ जगल-जगल छाया की तरह डोलता रहा था। उसने प्रण कर लिया था कि एक दिन कुमारपाल को पाटन के सिंहासन पर बिठाकर ही रहेगा।

अकसर पाटन जाकर मालूम कर आता था कि कुमारपाल को कव प्रकट होना चाहिए। लेकिन अभी तक उपयुक्त अवसर आया नही था। इसलिए वह प्रतीक्षा कर रहा था और उसके हिसाव से प्रतीक्षा फलने ही वाली थी। ऐसे समय कुमार-पाल की यह मनोदशा! उसका मन जाने कैसा हो गया।

"महाराज!" उसने धीरे से कहा "मै पाटन भिक्षाटन करने जाता हूँ। वहाँ एक वात मेरे देखने में आती है। महाराज जयसिंहदेव की गौरव गाथा से रहित एक भी घर मुझे दिखाई नही देता। इसी लिए तो महाराज के खाली सिंहासन पर किसी को विठाने का साहस राजपुरुषो को हो नही रहा है। महामात्य महाराज की पादुकाओ से ही काम चला रहे हैं। अभी तो हालत यह है कि कृष्णदेवजी और मन्त्रीश्वर उदयन चाहें तो भी किसी का नाम प्रस्तावित नही कर सकते। आपकी आज्ञा हो तो आज कृष्णदेवजी से मिल लूँ।"

"हमारे यहाँ होने की वात उन दोनो में से किसी को मालूम है?"

"जी नही, अभी तक तो नही। हाँ, रात वाले उन दोनो वटोहियो को पता लग गया हो और वे वात को ले उडे हो तो कह नही सकता। पर उनको भी पता कहाँ से लगा होगा! मौका तो मिला ही नही। खुद ही डरकर भागे है यहाँ से।"

"पता नही कौन थे! शाकभरी के अर्णोराज को पहचानते हो तुम?"

"जी नही, अर्णोराज नही था। वह तो खामा दैत्य धरा है। और रात जो युवक आया था वह तो कुछ अलग ही मिट्टी का गढा था। सामर्थ्य शव्द सुना तो वहुत था लेकिन उसका अर्थ उस युवक को देखने के वाद ही ठीक से समझ में आया। वडा ही सामर्थ्यवान था वह। लौह-स्तम्भ को तोडने की जो सामर्थ्य कही जाती है वह उसमें थी। नही, वह शाकभरी नही हो सकता, और जो भी हो। अच्छा, अव मैं चलता है। इन दिनो तो नगर मे मुझ-जैसो को माँगे भीख भी नही मिलती। वडा मुश्किल होता जा रहा है। जहाँ भी जाता हूँ वही गाथा गूँजती सुनाई देती है। उसे गाता हूँ तो मुझे भी भीख मिल जाती है, लेकिन गाना मेरे लिए मुश्किल होता जा रहा है।"

"कौनसी गाथा है वह?"

"मेरे खयाल में तो प्रभु, मन्त्रीश्वर उदयन पाटन में एक खास तरह का वातावरण वना रहे हैं। विना वातावरण वनाए इस तरह के काम हो भी नही

सकते । जिस गाथा का मैंने उल्लेख किया उसका मीधा सम्वन्ध इसी वातावरण से है । जहाँ भी जाता हूँ मुझे यही गाथा मुनने को मिलती है

पुन्ने वाससहसे सयमि वरिसाण नवनवइ अहिए ।
होहि कुम्मर नरिंदो तुह विक्कमराय सारिच्छो ।।

"आज तो मैं भी इसी गाथा को गाकर भिक्षाटन करूँगा । इसके विना वणिकवास में भीख मिलने की नही । तो चलता हूँ, वम भोला ! लेकिन अपने लौट आने की सूचना मैं आपको दूँगा कैसे ?"

"हाँ, यह वात तो रह ही गई । तुम्ही वताओ ।"

वौसरि थोडी देर सिर खुजलाता रहा, फिर वोला "केवल वही वात कहूँगा जिसे सिर्फ हम दोनो ही जानते हैं । दो मित्र थे । उनमें से एक करभक माँगकर लाया । रात मे वह दूसरे से छिपाकर चुपचाप करभक खा गया । पहले को सन्देह हुआ कि आखिर तो ठहरा भोजन भट्ट ब्राह्मण, मुझे छोडकर पेटू चुपचाप खा गया ।"

"वौसरि ! चुप होता है कि लगाऊँ घूँसा ?" कुमारपाल ने स्नेह-भरे कठोर स्वर मे कहा ।

एक वार कुमारपाल को वौसरि पर ऐसा ही सन्देह हो गया था । वौसरि इस समय वही चुटकी ले रहा था ।

कुमारपाल का स्नेह-कठोर स्वर सुनकर वौसरि हँसता हुआ वहाँ से कुछ दूर हट गया और मजा लेकर वोला "जिस पर सन्देह किया गया था उसने दूसरे दिन स्पष्टीकरण किया, 'करभक खुला पडा था, ढाँक कर रखा नही गया था, इसलिए पहले मैंने खा लिया, सिर्फ यह देखने के लिए कि कोई खरावी तो उसमें नही है । मै ठहरा ब्राह्मण । मरूँ या जीऊँ, कोई फर्क नही पडता । लेकिन आप ठहरे राजा, पृथ्वी के स्वामी ! आप पर है सारी धरती का भार !' इस स्पष्टीकरण के वाद वह वौसरि ब्राह्मण "

"लाटेश्वर (लाट का अधिपति) हुआ ।" कुमारपाल ने वात पूरी की ।

"लेकिन इस समय तो वह आटेश्वर (आटा माँगने वाला भिखारी) है । खैर, छोडिए भी अचलेश्वरजी ! माधवेश्वर अव जा रहा है और काफी रात वीते ही लौट मकेगा । तव तक के लिए जय सोमनाथ !'

वौसरि तेज कदम रखता हुआ पाटन की ओर चल दिया । वह लगभग दौडा

ही जा रहा था। उसे आशका हो रही थी कि वे रात वाले बटोही कही आँखो में धूल झोककर भाग न जाएँ। यदि निकल गए तो इस बढिया जगह को छोडना पडेगा। फिर पाटन के इतने समीप और ऐसी सुरक्षित जगह पाना मुश्किल ही होगा। यह जगह भी बडी ढूंढ-खोज के बाद हाथ लगी थी। इस बरगद में इतनी बडी और गहरी कोटर थी कि महीनो बैठे रहो किसी को पता नही चल सकता।

कुमारपाल वौसरि को जाते हुए देखता रहा। इस विश्वस्त अनुचर के भरोसे ही तो वह अपनी जीवन-नौका को यहाँ तक खे लाया था। लेकिन सच पूछो तो अब नाव भँवर में थी। जरा-सी असावधानी अब तक के सारे किए-कराए पर पानी फेर सकती थी। जरा-से गलत कदम से जीवन की सारी दिशा ही बदल जाती। सकट तो जीवन में पहले भी अनेक आए, लेकिन वह सबको पार कर आया था। अब सामने निर्णायक घडी थी—या तो इस पार या उस पार। सही-सलामत पार उतर गया, कोई भूल-चूक न होने दी तो राज्य उसका था। जरा-सा चूक गया तो रोटी के भी लाले पड जाएँगे। और सारा दारोमदार इस वौसरि पर था। जब तक वह आँखो से ओझल नही हो गया कुमारपाल उसी की ओर देखता रहा। फिर झोपडी का दरवाज़ा ठीक से बन्दकर धीमे-धीमे चलता हुआ अपने छिपने की जगह की खोज में बरगद के तने के पास पहुँच गया।

४ : पता चला

वौसरि सरस्वती के किनारे पहुँचा तो भिनसार हो चुकी थी। सवेरे के झुट-पुटे में लोगो के चेहरे दिखाई देने लगे थे। नदी में नौकाओ का आवागमन शुरू हो गया था। पाटन के दरवाज़े खुलने की तैयारी हो रही थी। लोगो की भीड वहाँ पहुँचने के लिए उतावली होती जा रही थी। किनारे पर कुछ साधु धूनी रमाए बैठे थे। वौसरि उनके आस-पास मँडराता और आश्चर्य से भरकर सोचता रहा कि वे दोनो घुडसवार कहाँ रह गए ? यहाँ इस किनारे पर तो दिखाई नही

दे रहे थे। उडकर अन्दर पहुँच गए, यहाँ आए ही नही या किसी दूसरे रास्ते से नगर मे पहुँच गए ? आखिर क्या बात हुई ? कही पैदल आकर तो भीड मे घुल-मिल नही गए ? किसी से पूछ भी नही सकता था, क्योंकि लोग व्यर्थ सन्देह करने लगते। इसलिए चुपचाप साधुओ की धूनियों के पास चहलकदमी करता रहा।

थोडी देर बाद सामने से एक नौका इस किनारे की ओर आती दिखाई दी। उधर दरवाज़ा खुल गया था और वहाँ कुछ लोग इस तरह खडे थे मानो किसी का स्वागत करने के लिए आए हो। वौसरि समझ गया कि ज़रूर कोई राजपुरुष आने वाला है और दरवाज़े में खडे लोग शायद उसी की प्रतीक्षा कर रहे है।

उसने नौका को इस किनारे लगते देखा। जैसे ही नाव रुकी एक स्वरूपवान तेजस्वी युवक सवार होने के लिए आगे बढा। उसके आगे-पीछे सात-आठ सैनिक चल रहे थे। एक सैनिक छत्र भी लिये हुए था। युवक के नौका पर चढते ही एक दबी आवाज़ सुनाई दी 'महाराज की ' लेकिन दूसरे ही क्षण नौका में खडे एक व्यक्ति के हाथ का इशारा पाकर बोलने वाला एकदम चुप हो गया। वौसरि चकित-विस्मित देखता रहा। थोडी देर बाद नौका चल पडी। नाव को अपनी ओर आते देख उस पार दरवाज़े में खडे लोगो ने स्वागत, सम्मान और अभ्यर्थना में अपने हाथ ऊँचे कर दिए।

वौसरि की समझ में नही आ रहा था कि माजरा क्या है! उसे सन्देह हो रहा था कि जो युवक नौका में सवार हुआ वह वही तो नही है जो रात प्याऊ में देखा गया था। लेकिन रात वाला चेहरा अभी दिन वाले चेहरे से बहुत ही भिन्न था। या कही उसकी आँखो का भ्रम तो नही है! फिर रात में दो बटोही आए थे जबकि नौका मे इस समय अकेला एक युवक सवार हुआ। कौन है यह युवक ? दिमाग पर बहुत ज़ोर डालकर भी वह उसे चिह्न नही पा रहा था। तब उसे यही उचित लगा कि आँख-कान खुले रखकर टोह लेता फिरे।

पास ही खडे दो आदमी ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे। बोली-बानी और कपडे-लत्तो से वे सोरठी प्रतीत होते थे।

"कोई राजा हो, हमें क्या! हम तो गादी के चाकर हैं और सिंहासन को सलाम बजाते हैं। लेकिन सुना है कि प्रभास से कुलगुरु की कन्या भी आज आई है।

सच पूछो तो हक इस कुमारतिलक त्यागभट्ट का ही है। कुमारपाल के लिए तो महाराज मुँह खोलकर मना कर गए है। कुमारपाल है भी चतुर। न जाने कहाँ छिपा बैठा है, अभी तक सामने नही आया। महाराज की अन्तिम आज्ञा का निरादर कोई कर नही सकता। यदि लोग मुकर गए तो विश्वास नाम की चीज़ इस दुनिया में रह ही नही जाएगी।"

"मुकरेंगे कैसे ? महाराज की अन्तिम आज्ञा तो माननी ही होगी, और मान भी रहे हैं। देखा नही तुमने ? जयकारा लग ही गया था, लेकिन सेनापति केशव का इशारा पाते ही वही-का-वही घुटकर रह गया।"

"तुम्हारा मतलव उस आदमी से है जो नाव में खडा था ?"

"हाँ, वही तो है सेनापति केशव। और जो जा रहे है वे " कहने वाले ने एक वार चारो ओर देखा, और वोसरि को अपनी वाते सुनते देख वाक्य अधूरा ही छोड दिया।

वोसरि भी 'भिक्षा देहि' कहता हुआ वहाँ से आगे वढ गया।

आगन्तुक के नाम-ठाम का उसे पता चल गया था। जरूर नौका में सवार होकर जाने वाला त्यागभट्ट होना चाहिए। और उनकी वातो से तो लगता है कि प्रतापदेवी भी आई हैं। दो-चार दिनो में ज़रूर कोई नया गुल खिलेगा। अव तो हर क्षण मूल्यवान है। लेकिन रात वाले वे दोनो वटोही कौन थे और कहाँ चले गए ? उनका पता भी लगाना ही होगा।

उस पार उतारने वाली नाव यात्रियो से खचाखच भर गई थी। वह भी उसमें सवार हो गया और सव के साथ दरवाज़े पर जा पहुँचा।

दरवाज़े के पास एक अधिकारी खडा था—ऊँचा-पूरा, रोव-दाव वाला, कठोर और मेल-मुलाहज़े से दूर। नख-शिख वह हथियारो से लैस था। नगर में प्रवेश करने वाले हर व्यक्ति को पहले वह एक निगाह देख लेता तव अन्दर जाने देता था। उसकी तेज़ निगाहो से वचकर किसी का निकल जाना सम्भव नही था। ढोंगी या छद्मवेश वाले को वह देखते ही पकड लेता था। आँखो से उसके जैसे विद्युत-लहरियाँ निकल रही थी।

वोसरि जैसे ही द्वार में घुसने को हुआ उसने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा : "महाराजजी, हटिए जरा !"

वौसरि के साथ वाले लोगो की आँखें वरवस उसकी ओर उठ गईं। इतने में तो एक सैनिक वौसरि के पास आ पहुँचा और वोला "चलिए, दुर्गपालजी आपको वुला रहे है।"

"दुर्गपालजी मुझे वुला रहे हैं? दुर्गपालजी कौन?"

"दुर्गपाल त्रिलोचनपालजी! वह देखिए, वहाँ खडे आपका रास्ता देख रहे हैं।"

वौसरि प्राय नगर में आता-जाता रहता था। लेकिन कभी इस तरह रोका-टोका नही गया था। आज प्रतिवन्ध अवश्य कुछ कडे थे। वह चुपचाप सैनिक के साथ हो लिया। त्रिलोचनपाल के पास खडे-खडे उसे भी नगर में प्रवेश करने वालो को देखने का अवसर मिल गया। योद्धा, व्यापारी, यात्री, सामन्त, नागरिक—सभी तरह के लोग चले जा रहे थे। वह खडा देखता और सोचता रहा कि रात वाले वे दोनो वटोही कहाँ गायव हो गए, कही लौट तो नही गए?

तभी त्रिलोचनपाल ने उसे सिरे से लेकर पाँव तक देखा और डपटकर पूछा "कहाँ से आते हो?"

वौसरि ठहाका मारकर हँस पडा और वोला "मुझी को नही मालूम तो आपको क्या वताऊँ कि कहाँ से आता हूँ। इतनी उम्र वीत गई पर अभी तक पता नही चला। शायद किसी को पता हो मुझे तो पता नही।"

"महाराजजी!" त्रिलोचन का स्वर कठोर हो गया "आपको मालूम होना चाहिए कि आजकल विदेशियो के यहाँ आने पर रोक है।"

"तो कहता ही कौन है कि मैं यहाँ का हूँ। ऐसे तो और भी कई निकलेंगे जो मेरे मुकावले विदेशी ठहरेंगे।"

"आप यहाँ क्या करते हैं?"

"मैं?" वौसरि ने नरेटी का अपना भिक्षापात्र सामने कर दिया "यह करता हूँ।"

"रहते कहाँ है?"

"वरगद वाली प्याऊ पर।" वौसरि वेहिचक जवाव दिये जा रहा था। जानता था कि जरा-सा भी हिचका और धरा गया।

"लौटेंगे कव?"

"करभक मिला और अपने राम लौटे। अभी मिला, अभी लौट गए, देर से मिला, देर से लौटे। आप यही भिक्षा दे दे, हम यही से लौट जाएँगे, फिर नगर में जाकर टाँगे तोडने से हमे क्या मतलब ?"

त्रिलोचनपाल ने उसे जाने का इशारा करते हुए कहा "अच्छी बात है, पधारिए।"

वौसरि ने छुटकारे की साँस ली और आगे बढा। सवेरे-सवेरे इतनी बाते हो गई थी कि वह मजे से पहर रात तक कुमारपाल को किस्से सुना सकता था। लेकिन यह भय भी उसके मन में पैठ गया था कि अब प्याऊ वाली जगह सुरक्षित नही रही। आज ही रात वहाँ से अपना बोरिया-बधना किसी दूसरी जगह ले जाना होगा।

त्रिलोचनपाल अब भी वौसरि की ही ओर देख रहा था। यह दुर्गपाल अपने महामान्य की हर आज्ञा का पूरी कट्टरता से पालन करता था। पाटन का दुर्ग उसे प्राणो से भी प्यारा था। इस दुर्ग के लिए उसके मन मे वडा आदर और अभिमान था। उसका विश्वास था कि मेरे जीते जी पाटन नगर मे कभी कोई गडबडी या अन्त सघर्ष नही होगा। अपने इस विश्वास को बनाये रखने के लिए वह रात-दिन एक किये रहता था। उसने एक सैनिक को इशारे से अपने पास बुलाया और वौसरि को दिखलाकर कहा "देखा उसे ? आज वह जहाँ भी जाए तू उसका पीछा करना और शाम को मुझे बतलाना। यदि कही झगडा-टटा करता दिखाई दे तो फौरन तुरगाध्यक्ष को खबर करना। जा!"

सैनिक ने प्रणाम किया और वौसरि का पीछा करता हुआ चल दिया।

वौसरि वहाँ से सीधा पाटन के वणिकवास मे पहुँचा। अपनी साज-सज्जा और नारियल के भिक्षापात्र के कारण उसे अपने यहाँ अधिक सफल होने की आशा नही थी।

वह धीरे-धीरे चल रहा था। एक जगह कोई श्रेष्ठी अपने घर के आगे चौकी पर वैठा द्रम्म गिन रहा था। वौसरि उसके आगे जा खडा हुआ और ज़ोर से बोला "होहि कुम्मर नरिंदो "

"कौन हो महाराज तुम ?" श्रेष्ठी ने द्रम्म गिनना छोडकर उसकी ओर देखते हुए पूछा। वौसरि ने फुर्ती से चारो ओर देखा और श्रेष्ठी के बिलकुल पास आकर

धीरे से कहा "उदयन मेहता का घर कहाँ है ?"

"बाएँ हाथ, सीधे चले जाइए। लीजिए।" श्रेष्ठी ने एक स्वर्ण द्रम्म वोसरि के हाथ पर रख दिया और स्वय भी गुनगुनाने लगा "होहि कुम्मर नरिंदो वरिसाण नव नवई अहिए इस गाथा को तो यहाँ सभी जानते हैं महाराज ! पडितो के सीखने-जैसी है यह गाथा !"

वोसरि का अनुमान ठीक ही निकला। जो उसने सोचा था वही हुआ। एक वातावरण बनाया जा रहा था। गाथा में उसी वर्ष, महीने, दिन, मुहूर्त, घडी और पल का उल्लेख था जब कुमारपाल राजा बनेगा ! गाथा यह भी कहती थी कि कुमारपाल विक्रम-जैसा राजा होगा। चारो ओर ऐसा एक वातावरण तैयार किया जा रहा था।

वहाँ से वह फुर्ती से उदयन मेहता के घर की ओर मुडा। लेकिन रास्ते पर दूर उसे एक आदमी खडा दिखाई दिया। वह समझ गया कि मेरा पीछा किया जा रहा है। जरूर त्रिलोचनपाल ने इसे मेरे पीछे लगाया है। सब से पहले तो इसको चकमा देना चाहिए। वह 'जय शकर ! जय भोला !' करता हुआ उलटी तरफ चल दिया।

वोसरि चाहता था कि आज वह तुरगाध्यक्ष कृष्णदेव से हर हालत में मिल ही ले। कुमारपाल के यहाँ पहुँच जाने के समाचार वह तुरगाध्यक्ष को दे देना चाहता था। लेकिन उससे पहले उदयन मेहता से मिल लेना जरूरी था। कुमारपाल ने उदयन की बहुत प्रशसा की थी और उसके बारे में बहुत-सी बातें वोसरि को बतलाई थी। लेकिन एकदम सीधे वह जा नही सकता था। उसका पीछा किया जा रहा था। इसलिए किसी को सन्देह न हो इस तरह घूमता-घामता और भिक्षाटन करता हुआ वह पाटन के रास्तो पर चलता रहा।

सहसा ही वह एक विशाल महल के सामने पहुँच गया। इस प्रासाद की शोभा सबसे निराली थी। कितने ही जैन साधु उस महल में आ भी रहे थे और जा भी रहे थे। वे परस्पर नमस्कार करते जाते थे। महल के बाहरी भाग में पालकियो, सुखासनो, घोड़ो और घोडागाडियो की कतारें लगी हुई थी। वोसरि देखते ही समझ गया कि उदयन मेहता के जिस भवन की उसे तलाश थी वह यही होना चाहिए। उसने दबी निगाहो से एक बार अपने चारो ओर देख लिया। पीछा

करने वाला कही भटक गया था और इस समय वह अकेला था।

वह भीड में घुस गया और लोगो को ठेलता-ठालता आगे बढने लगा। द्वार पर आकर रुक गया और प्रतीक्षा करने लगा कि किसी तरह उसे भी अन्दर जाने का मौका मिल जाए।

लेकिन आज मन्त्रीश्वर से मिलने वालो की सख्या बहुत अधिक थी। एक-एक कर लोग चले ही आ रहे थे। इस भीड़-भाड मे अपनी दाल गलती न देख—और चूँकि उसका पीछा भी किया जा रहा था—उसने पहले कृष्णदेव से मिल लेना ठीक समझा। भिक्षाटन करता हुआ उधर निकल जाए और जो-कुछ मिले उसे लेकर प्याऊ लौट जाए। निरापद यही रहेगा। इस तरह वह वहाँ से लौटने का विचार कर ही रहा था कि किसी का हाथ उसके कन्धे पर पडा और वौसरि के मुँह मे आई गाथा मुँह मे ही रह गई।

कन्धे पर हाथ रखने वाले को देखने के लिए जैसे ही वौसरि ने गर्दन घुमाई उसे ये शब्द सुनाई दिये "चुपचाप मेरे पीछे चले आओ! मन्त्रीश्वर तुम्हे याद कर रहे हैं।"

वौसरि को आश्चर्य हुआ। मंत्रीश्वर मुझे याद कर रहे हैं? देशाटन करते हुए एक बार कुमारपाल के साथ वह स्तम्भतीर्थ गया था। वहाँ क्षण-भर के लिए मन्त्रीश्वर से भेंट हुई थी। उस क्षणिक परिचय के आधार पर मन्त्रीश्वर ने मुझे इस भीड मे देखकर भी पहचान लिया, यह निश्चय ही उनकी अद्‌भुत स्मरण शक्ति और तेज़ निगाहो का प्रताप है। लेकिन दूसरे ही क्षण उसे यह खयाल भी आया कि कही किसी फन्दे में तो नही फँसाया जा रहा हूँ!

लेकिन जो आदमी उसे साथ लिये जा रहा था वह विश्वासघात करने वाला नही प्रतीत होता था। वह चतुर था, चपल था, बुद्धिमान था और था मन्त्रीश्वर के घर के चप्पे-चप्पे को जानने वाला। विना किसी रोक-टोक और पूछताछ के वह वौसरि को पिछवाडे के रास्ते से सीधा महल के अन्दर ले आया। भीतर पहुँचकर वह क्षण-भर बाहर की ओर देखता रहा और फिर वहाँ खड़े एक अनुचर को अपने पास बुलाकर उसने कहा. "ये महाराजजी बहुत जरूरी काम से आये हैं। मंत्रीश्वर से मिलना चाहते हैं। वाग्भट्टदेवजी अन्दर हैं या चले गए?"

"वाग्भट्टजी तो चले गए और मन्त्रीश्वर को अभी फुर्सत नही है।"

वौसरि के आश्चर्य की सीमा न रही। वह उस आदमी की ओर देखने लगा जो उसे यह कहकर बुला लाया था कि चलिए, आपको मन्त्रीश्वर याद कर रहे है। चेहरे-मोहरे से वह कोई उच्च पदस्थ राज्याधिकारी प्रतीत होता था। बिना बोले ही बहुत-कुछ कर डालने की सामर्थ्य उस व्यक्ति में थी। निगाहें उसकी तेज़, किसी के भी आर-पार निकल जाने वाली और सामने वाले को थाहने की शक्ति से सम्पन्न थी। उसकी प्रत्युत्पन्न मति और सजग तत्परता से लगता था कि जब जो हथियार हाथ लग जाए उसी से वह अपना काम निकाल सकता है।

वौसरि अभी अचरज में डूबा सोच ही रहा था कि इस आदमी को मेरे मन की बात क्योंकर मालूम हो गई, तभी उसने इसके कन्धे पर हाथ रख दिया और आँखों में आँखें डालकर मधुर मुस्कान के साथ बोला "मन्त्रीश्वर से मिल सको इसी लिए मैं तुम्हे यहाँ ले आया। रहने वाले तो शायद लाट के हो न ?"

वौसरि और भी चकित हुआ। था वह कभी लाट का। लेकिन अब तो लाट छोड़े बरसों हो गए, और जाने कितने समय से कुमारपाल के साथ देश-विदेश भटकता फिर रहा है। परन्तु यह आदमी इस तरह बातें कर रहा है मानो पहचानता है। कौन है यह ?

शीघ्र ही उसे पता चल गया कि वह कौन है। भीतर से एक अनुचर दौड़ता हुआ आया और बोला "भट्टराज! कक्कलभट्टजी* ! मन्त्रीश्वर आपको याद कर रहे हैं।"

"मुझे ? आप ज़रा यहीं रुकिए, मैं अभी आया।" वौसरि से यह कहकर काकभट्ट फुर्ती से अन्दर चला गया। वौसरि के काटो तो खून नहीं। अब पता चला कि जिससे बातें कर रहा था वह लाट का दण्डनायक काकभट्ट था!

वौसरि अकेला रह गया तो मन मे तरह-तरह के विचार घुमड़ने लगे। रात वाले बटोहियों का अभी तक पता नहीं चला। घूमता-घामता यहाँ तक आ पहुँचा हूँ तो अब यहाँ के सारे रंग-ढंग देखकर ही चलूँ। लेकिन कहीं कुमारपालजी मुसीबत में न पड़ गए हों! कुमारपाल की जोरों से खोज-बीन हो रही थी, इसका

* कक्कल, काक, कर्क—तीनों ही नाम मिलते हैं।

पता तो उसे आज की घटनाओ मे चल ही गया था।

उसकी व्यग्रता वढती जा रही थी। वहाँ खडे-खडे उसे काफी समय वीत गया। तव एक अनुचर अन्दर से आया और बोला "तुम्हारा यहाँ इस तरह खडे रहना ठीक नही। भट्टराज काक ने कहलवाया है कि यहाँ से हजारो आदमी निकलते हैं और उन्हे सन्देह हो सकता है, इसलिए तुम सीढियो के नीचे वाले तलघर में चले जाओ और वही प्रतीक्षा करो! तुम्हे वुला लिया जाएगा। भट्टराज की मन्त्रीश्वर से वात हो गई है, परन्तु भट्टराज को अभी फौरन वाहर जाना पड रहा है। जो तुम्हे वुलाने आएगा वह ताली वजाकर सूचित कर देगा। तुम्हारा नाम क्या है?"

"माधवेश्वर!"

"अच्छा तो माधवेश्वरजी, आज तो मन्त्रीश्वर मे मिलने वालो का कोई पार नही है। आपको कुछ समय रुकना पडेगा। वहाँ तलघर मे प्रतीक्षा कीजिए।"

वौसरि जीने के नीचे वाले तलघर में जाकर खडा हो गया। वहाँ सिर की ऊँचाई पर एक उजालदान था जिससे बाहर का दृश्य देखा जा सकता था। किसी ने यह उजालदान वहाँ किसी खास उद्देश्य से ही वनाया था। वौसरि को वक्त काटने का एक अच्छा साधन मिल गया। वह वाहर आने-जाने वालो को देखकर मन वहलाने लगा। सच ही आने वालो का आज ताँता लगा हुआ था। या कोई खास वात थी? लेकिन अभी वह निर्णय कर भी नही पाया था कि किसी के सीढियो पर से उतरने की आवाज सुनाई दी।

देखने के लिए वह मुडा ही था कि वही पहले वाला अनुचर आता दिखाई दिया। आने के साथ ही वह वोला "महाराजजी! जरा देखिए। कृष्णराजजी के साथ वह जो आ रहे हैं न . ."

वौसरि ने वाहर की ओर देखा तो देखता ही रह गया। रात वाले दोनो वटोही इस समय कृष्णदेव के साथ चले आ रहे थे। एक कृष्णदव के दाहिने चल रहा था और दूसरा वाएँ। अनुचर को जाने क्या कुतूहल हुआ कि वह वौसरि को दिखला-दिखलाकर कहने लगा "यह जो कृष्णदेवजी के दाहिने चल रहे हैं न, इनका शरीर देखा आपने? लगता है जैसे स्वर्ग से साक्षात् इन्द्रदेव धरती पर उतर आये हो।"

रात वाले दोनो बटोहियो को यहाँ इस समय इस तरह देखकर वौसरि के आश्चर्य का पार न रहा। उसने पूछा "कौन हैं ये ?"

अनुचर ने उसके अज्ञान पर तरस खाकर कहा "आप नही पहचानते ? सारी दुनिया जानती है और आप पूछ रहे हैं कि कौन है ? ये हैं आबू के धार परमार। आबूराज परमार धारावर्षदेव इनका नाम है। जिस प्रकार भगवान रामचन्द्र ने एक तीर मे सात ताडो को वेध दिया था उसी प्रकार इन्होने एक तीर से सात भैंसो को बीधकर रख दिया। यो समझ लीजिए कि आज के युग में बाण-विद्या की पराकाष्ठा ही कर दिखाई है। सगमरमर की मूरत-जैसे इनके तराशे हुए बदन को तो देखिए जरा।"

अनुचर ने जरूर धार परमार की वीरता और पराक्रमो की दन्तकथाएँ सुन रखी थी।

वौसरि भी सुध-बुध भूलकर धारावर्षदेव की ओर देखने लगा। उसके कसीले शरीर की सुन्दरता और शक्ति का अनुमान तो उसने रात में ही कर लिया था। लेकिन इस समय यह सोच रहा था कि धार परमार कहीं प्याऊ वाली बात बताने तो नही जा रहा है। उधर वह अनुचर बक-बक किये जा रहा था : "महाराज, इतना शारीरिक बल इस कलियुग में सिर्फ तीन व्यक्तियो को मिला है, एक जयसिंहदेव, आहा, साक्षात् देवता ही थे वे, दूसरे ये परमार धारावर्ष-देव और तीसरे. "

"तीसरा कौन ?" वौसरि ने उतावले होकर पूछा।

तभी अन्दर से ताली बजने की आवाज आई। अनुचर को बुलाया जा रहा था। वह फौरन ऊपर की ओर लपका।

"यो नही ! तीसरे का नाम बताते जाओ, नही तो बात अधूरी रह जाएगी।" वौसरि ने उससे कहा।

"तीसरा...तीसरा अच्छा, बताता हूँ.. " और वह धीरे से गुन-गुनाया "होहि कुम्मर नरिंदो " और दौडता चला गया।

वौसरि की प्रसन्नता का क्या कहना ! निश्चय ही उदयन मेहता अनुकूल वातावरण तैयार कर रहे थे। उसे यह एक और प्रमाण मिल गया। मेहता की

समझ और कार्य-पद्धति के प्रति उसके मन में पूज्य भाव उदित हुआ, साथ ही कुमारपाल की सफलता का विश्वास भी हो गया. .लेकिन यहाँ, इस तलघर मे कब तक बैठा रहूँगा ! उसका जी चाहने लगा कि पख निकल आएँ और वह उडकर बरगद वाली अपनी प्याऊ पर पहुँच जाए ।

लेकिन आज तो जैसे उसकी धीरज और सहनशीलता की परीक्षा ही ली जा रही थी । खडे-खडे दिन दुपहर चढ आया और किसी ने बुलाया नही । न बुलाए, न सही । असल चिन्ता उसे यह थी कि कही धार परमार रात वाली बात यहाँ किसी को बता न दे । दूसरी चिन्ता यह थी कि काकभट्ट को मित्र समझे या शत्रु ? कही वह प्रतिपक्षियो द्वारा प्रेषित तो मन्त्रीश्वर के पास नही आया है ? और अगर कुमारपालजी के प्याऊ में रहने की बात मालूम हो गई तो क्या होगा ? तब तो सर्वनाश ही हो जाएगा । परन्तु परमार को समय ही कहाँ मिला था ? झोपडी मे दूसरा कौन है, इस बात को वह जान ही नही पाया था । फिर भी सावधान तो रहना ही होगा । इस समय जरा-सी भूल जिन्दगी-भर के किये-कराये को चौपट कर देगी और जीती बाजी को हार जाना पडेगा । फिर कृष्णदेवजी से मिलना तो अभी बाकी ही था । यहाँ आ गया है तो अब इधर का सारा हाल-हवाल लेकर जाना ही ठीक रहेगा । यद्यपि यह भी सच है कि एक दिन की देर हमेशा की देर बन सकती है ।

परन्तु सिवाय प्रतीक्षा करने के वह इस समय कर भी क्या सकता था, इसलिए चुप खडा शान्तिपूर्वक प्रतीक्षा करता रहा । जरूर आज वह शकुन देखकर नही चला था । क्योकि थोडी देर बाद एक दूसरा अनुचर आया और काकभट्ट का यह सन्देश सुना गया कि माधवेश्वरजी महाराज को रुकना होगा, उनके भोजनादि का प्रबन्ध यही किया जा रहा है ।

"भोजन-वोजन तो ठीक है परन्तु मुझे मन्त्रीश्वर से मिलना था ." बौसरि ने व्यग्रतापूर्वक कहा ।

"महाराजजी, मिलना है तो रुकिए । क्या आपके लिए मन्त्रीश्वर राजसभा में जाना छोड दें और आपसे मिलें ?"

"बडा जरूरी काम था और फिर मुझे लौटना भी तो है ।"

"तो यह रास्ता पडा है, चले जाइए "

वौसरि को अनुचर की यह धृष्टता अच्छी नही लगी। शायद अनुचर ने भी अपनी गलती अनुभव की और कुछ विनम्रता से वोला "मन्त्रीश्वर से आपकी भेंट कराने के ही लिए तो काकभट्टराज ने आपको यहाँ खडा किया था। लेकिन वे देखिए एक-एक कर पालकियाँ राजदरवार की ओर चली जा रही है। परमारजी महामात्य से मिलने जा रहे हैं। काकभट्टजी भी वही जा रहे है। मन्त्रीश्वर को भी तो जाना होगा। इसलिए आप यहाँ आराम से बैठिए और इस वीच भोजन-पानी से निपट लीजिए, फिर आराम से भेट और वार्ता होती रहेगी।"

वौसरि भी समझ गया कि जल्दवाजी का कोई परिणाम नही होगा। अव उसे एक ही चिन्ता थी कि कही धार परमार प्याऊ वाली वात वहाँ कह न दें। लेकिन कर तो वह कुछ सकता नही था। चुप वैठा मन्त्रीश्वर के लौट आने की प्रतीक्षा करे—वस, यही एक उपाय रह गया था। इसलिए अपने देशाटनो और पर्यटनो को याद करता हुआ वह उस तलघर में चुपचाप वैठा रहा।

५ : महाराज जयसिंहदेव की पादुका

चन्द्रावती के परमार अपनी पाटन-भक्ति के लिए प्रसिद्ध थे। इसलिए जव उधर त्यागभट्ट और इधर धार परमार एक साथ पाटन आये तो परमार को अकेला न छोडने के विचार से कृष्णदेव, उदयन और काक आदि सभी उसके साथ राजदरवार गए।

परमार धारावर्पदेव क्यो आये हैं इसका कारण किसी को मालूम नही था। काक रास्ते-भर सोचता रहा, परन्तु किसी ठौर-ठिकाने पर न पहुँच सका। इस समय उसे एक साथ दो चिन्ताएँ सता रही थी। पहली चिन्ता तो यह थी कि वह ब्राह्मण कौन है और उदयन से क्यो मिलना चाहता है ? राजदरवार मे तो मुख्यत शोक-समवेदना और शिष्टाचार की ही वाते होने को थी। मगर ये दो आदमी इस समय आवू से क्यो आये ? यदि महामात्य के वुलाये आए हैं तो जरूर दाल

में कुछ काला होना चाहिए। कुमारपाल और सिंहासन के बीच, काक चाहता था कि कटक जितने भी कम हों, उतना ही अच्छा !

अब वह कुमारपाल के बारे में सोचने लगा। अभी तो उनके लिए कोई आशा दिखाई नही देती। महाराज की चरण-पादुकाएँ सिंहासन पर रखकर काम चलाया जा रहा है। जयदेव महाराज के अवतार-पुरुष होने की बात प्रजाजनों के दिल मे बैठी हुई है। महामात्य महादेव नागर की राजभक्ति की सभी सराहना कर रहे है। अभी तक लोग-बाग 'महाराज जयसिंहदेव की जय' बोल रहे हैं। लेकिन जयसिंहदेव की जय बोलते-बोलते यदि उन्होंने 'महाराजकुमार त्यागभट्ट की जय' का जयकारा लगा दिया तो क्या होगा ? परन्तु अभी तो चाक पर केवल मिट्टी का लोदा चढा हुआ है। वह क्या शक्ल अख्तियार करेगा इसे केवल भविष्य ही बता सकता है। वैसे चिन्ता तो सभी के मन में थी, लेकिन निश्चय केवल इक्के-दुक्के के मन में।

अच्छा, मन्त्रीश्वर उदयन धारावर्षदेव के आते ही उन्हें राजदरबार में क्यो ले जा रहे है ? जरूर कोई बात होनी चाहिए। या तो कोई जरूरी काम है या फिर कोई बुरे समाचार। मालवा के बल्लाल के सिर उठाने की खबर तो यहाँ भी पहुँच ही गई है।

जो होगा अभी सामने आ जाएगा, इस विचार से काकभट्ट ने मन समझाया और आराम से पालकी मे बैठ गया। थोडी देर मे वे सब राजमहल पहुँच गए। वहाँ इस समय भी नागरिको का मेला-सा लगा हुआ था। राजा के प्रति प्रजाजन का यह भक्तिभाव देखकर काकभट्ट गद्‌गद हुए बिना न रह सका।

लेकिन दूसरे ही क्षण उसके मन में विचार आया—'जिस तरह विक्रम का सिंहासन आसमान मे उड गया था उसी तरह यह सिंहासन भी उड जाएगा, यदि महाराज का कोई उत्तराधिकारी नियुक्त न किया जा सका !' काकभट्ट कुछ लोगो के मुँह यह भी सुन चुका था कि शायद महाराज का कोई उत्तराधिकारी नियुक्त किया ही न जा सकेगा।

सभी पालकियाँ राजमहल के बाहरी मैदान में ही रुक गईं। सब से पहले उदयन मेहता अपनी पालकी में से बाहर आये। उसके बाद एक-एक कर परमार धारावर्षदेव, कोविदास, कृष्णदेव, काकभट्ट आदि निकले। शोक के अवसर के

अनुरूप सब गम्भीर और उदाम मुद्रा से सिंहासन की ओर चले।

उन्हें देखने के लिए राजप्रागण में लोगों की भीड जमा हो गई थी। असल में वह भीड परमार धारावर्षदेव को देखने के लिए जुटी थी। किसी ने अपने मित्र से कहा कि धारावर्षदेव आये है और उसने अपने मित्र से—और यों बात एक मुंह से अनेक मुंह फैलती चली गई, और बात-की-बात में दर्शनार्थियों का वहाँ मेला-सा लग गया।

धार परमार की महाराज जयसिंहदेव के प्रति असीम भक्ति थी। उनके मन चौलुक्य सिंहासन भारतवर्ष के भविष्य का निर्माता था। उनकी मान्यता थी कि चौलुक्य सिंहासन के न रहने पर शाकभरी-अर्बुद की राह शत्रु सेनाएँ नर्मदा पारकर गुजरात मे घुस आएँगी। लेकिन यदि चौलुक्यो का राज्य स्थिर और शक्तिशाली हुआ तो उनका छोटा-से-छोटा सामन्त और माडलिक भी बडी-से-बडी शत्रु सेना को सीमा पर ही रोक लेगा और किसी की हिम्मत गुजरात पर आक्रमण करने की न होगी। यदि अर्बुदमडल, शाकभरी और पाटन एक हो गए तो तीनो मिलकर भारतवर्ष पर अपना चक्रवर्तीत्व स्थापित कर सकते हैं। उदयन मेहता को धार परमार के इन विचारो की जानकारी थी।

राजप्रागण से होते हुए सभी राजपुरुष वहाँ पहुँचे जहाँ बाहर के चबूतरे पर एक मडप के नीचे जयसिंहदेव महाराज का राजसिंहासन रखा हुआ था। धार परमार ने सिंहासन के सामने जाकर दोनो हाथ जोडे और सिर झुकाकर खडा हो गया। देर तक वह इसी विनीत मुद्रा में खडा रहा। फिर दो कदम आगे बढकर सिंहासन पर रखी हुई महाराज की पादुकाओ को उसने प्रणाम किया। उसके बाद म्यान से तलवार निकालकर माथे से लगाई और उसे दोनो हाथों में थामकर नतमस्तक सिंहासन के सामने कर दिया, मानो महाराज को अपनी तलवार समर्पित कर उनसे पुन ग्रहण कर रहा हो। अन्त में वहाँ से तीन कदम पीछे हट गया और एक बार फिर सिंहासन को सिर नवाकर खडा हो गया। सुडौल शरीर वाले सामर्थ्यवान धार परमार का यह भक्ति-प्रदर्शन इतना मनोरम था कि प्रागण में खडे प्रजाजन देखकर मुग्ध हो गए और जोश में आकर जयकारे लगाने लगे—"महाराज जयसिंहदेव अमर हो!"

महामात्य महादेव नागर महाराज के सिंहासन के पास बैठे हुए थे। उन्होंने

धार परमार को अपने पास वाले आसन पर बैठने का संकेत किया। चारों ओर मंत्रिमंडल के अन्य सदस्य बैठे हुए थे। सब-के-सब शोकमग्न हो रहे थे और लगता था जैसे महाराज के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हों। उदयन, काक, कृष्ण-देव आदि भी अपने लिए निर्धारित आसनों पर बैठ गए।

"परमारजी, कब पधारना हुआ ?" महादेवजी ने धार परमार से पूछा और फिर उदयन मेहता की ओर देखने लगे। अपनी बात का उत्तर वे परमार से चाहते थे और शंका का समाधान उदयन से। उन्हें यह सन्देह हो रहा था कि कहीं उदयन ने तो इसे नहीं बुलाया है।

"चला ही आ रहा हूँ प्रभु ! रास्ते में शोक-संवाद मिला और मेरे पाँव तले की धरती खिसक गई। ऐसा लगता है जैसे पृथ्वी निराधार हो गई, उसका भार धारण करने के लिए शेषनाग नहीं रहे !" कहते-कहते धार परमार का कण्ठ भीग गया।

"किससे क्या कहें, परमार जी !" महादेव ने कहा "जब सोमनाथ भगवान को ही अपने दरबार में उनकी ज़रूरत पड़ गई तो हम-आप क्या कर सकते हैं ! अच्छा बताइए, आपकी तरफ के क्या समाचार हैं ? इधर-इधर वल्लाल का नाम बहुत सुनाई पड़ने लगा है, वह कौन है ?"

"मैं इसी लिए तो आया हूँ प्रभु !" धार परमार ने कहा "अपने मन की बात कहने चला था। सुनने वाले महाराज तो रहे नहीं, इसलिए अब आपसे निवेदन करना चाहता हूँ।"

"जब तक आप-जैसे सामन्त हैं हम तो महाराज को जीवित ही समझते हैं।" महादेव ने पादुकाओं को सिर झुकाकर कहा "क्यों मेहताजी, ठीक कह रहा हूँ न मैं ?"

"बिलकुल ठीक, बावन तोला और पाव रत्ती ठीक। परमारजी, महाराज जयसिंहदेव यहाँ हमारे हृदय में बैठे हुए हैं, और आपको भी अपने तई यही समझना चाहिए।' उदयन ने कहा।

धार परमार अपनी बात कहने के लिए उठ खड़ा हुआ।

"कृष्णदेवजी, आइए ! परमारजी, आप भी चलिए और उदयन मेहता, तुम भी चलो।" महदेव नागर खड़ा हो गया और सब को सिंहासन के पीछे वाले

मंत्रणा-खण्ड की ओर चर्चा के लिए अपने साथ ले चला ।

वे सब महामात्य के साथ मंत्रणा-खण्ड में गए और इधर काकभट्ट कोविदास के पास पहुँच गया । यह जानने के लिए वह बडी देर से व्याकुल हो रहा था कि ये लोग क्यो आये है ।

६ : काकभट्ट ने जानकारी प्राप्त की

काक यह जानने के लिए व्यग्र हो रहा था कि कोविदास और धार परमार क्यो आये है। यदि त्यागभट्ट की प्रेरणा से आये हैं तो इन्हें इस तरह भगाना चाहिए कि सारी जिन्दगी न भूलें । और यदि त्यागभट्ट से इनका सम्बन्ध नही है तो आज की परिस्थिति में दोनो का किस तरह अच्छे-से अच्छा उपयोग किया जाए, इस पर सोचना होगा । कोविदास से पहले एक बार वह मालवा के मोरचे पर मिल चुका था । उसने इस तरह बात शुरू की मानो कोविदास से गाढ मैत्री हो और वह दोनो का परम हितैषी भी हो । 'बहुत दिनो के बाद मुलाकात हो रही है कोविदासजी ! क्या चन्द्रावती से आ रहे है ?"

कोविदास आ तो चन्द्रावती से ही रहा था और काक से उसका परिचय भी था। फिर भी बोला "यही समझ लो कि चन्द्रावती से ही आ रहे है ।"

इस अटपटे जवाब से काक को आश्चर्य हुआ । उसके मुंह की ओर देखता हुआ बोला "कोविदासजी, मालवा की लडाई में हम दोनो साथ-साथ लडे थे, याद है न ?"

"खूब याद है । पहले हमले में हम साथ ही थे ।"

"फिर आप इस तरह क्यो बोल रहे है ! छिपाने-जैसी कोई बात हो तो रहने दीजिए, वर्ना मोरचे पर साथ लडे हुए तो सगे भाइयो से भी अधिक होते है । शस्त्र-मैत्री हो जाती है पत्थर की लकीर और जो एक बार साथ-साथ लड लेते है वे दूसरी बार भी तो साथ लड सकते है । सच-सच बताइए, क्या आप चन्द्रावती

से नही आ रहे ? और वहाँ के सामन्तराज यशोधवलजी तो वही और कुशल से है न ?"

"है तो वही, लेकिन अब प्रश्न यह है कि उन्हें सामन्तराज कहा भी जाए अथवा नही ?"

"क्यो ? ऐसी क्या बात हो गई ? क्या चन्द्रावती मे भी गडबड हो गई है ?"

"गडबड तो क्या होगी ! परन्तु विक्रमसिंह को तो आप भी जानते ही है। परमार राजा रामदेवजी ने भाई समझकर राज्य सौपा था। उनका खयाल था कि सगा भाई है, राज्य की रक्षा करेगा और यशोधवल के बालिग हो जाने पर राज्य उसे सौंप देगा। लेकिन विक्रमसिंह एक ही घाघ निकला। वह अपने ही भतीजे को अँगूठा दिखलाने जा रहा है।"

"क्या कहते है आप ? दिखा चुका अँगूठा ! चन्द्रावती पाटन का राजदुर्ग है। महाराज की इस नीति मे आज भी कोई परिवर्तन नही हुआ है। हम है आपके साथ और हमारे रहते विक्रमसिंह की क्या मजाल कि यशोधवलजी को अँगूठा दिखाए।"

उनके मामले मे काक के इतना दिलचस्पी दिखाने का खास कारण यह था कि वह त्यागभट्ट को यहाँ से खदेडने मे इन दोनो का उपयोग करना चाहता था। बात को उसी रुख पर मोडते हुए उसने आगे कहा "विक्रमसिंह को कुमारतिलक त्याग-भट्ट के बल-विक्रम का शायद पता नही है। आठ घटी भी टिकना मुश्किल हो जाएगा विक्रमसिंह का। भागे ठौर न मिलेगी। आप जाकर कहना तो सही। अकल होगी तो फौरन मान लेगा। अच्छा, तो आप लोग इसलिए आये है ?"

"हाँ भाई, आये तो इसी लिए है। लेकिन अपना दुखडा अब रोएँ किसके आगे? महाराज तो रहे नही। समझ मे नही आता कि अब कहें तो किससे ?"

"महाराज नही रहे, यह किसने कहा ? और देखिए, ये तो है न !" काकभट्ट ने महाराज की पादुकाओ की ओर इशारा किया। "इनका दबदबा भी उतना ही है जितना महाराज का था।"

"काकभट्टजी ! महाराज के एक शब्द मे पूरी एक सेना की शक्ति हुआ करती थी। लेकिन अब वह समय नही रहा। आज का समय बडा विकट है। विक्रमसिंह ने ऐसा षड्यन्त्र रचा है जो विकट मे विकटतर है। मै उसकी नस-नस को पहचानता

हूँ। उसने मालवा, शाकभरी और नडूल, सभी को मिला लिया है। तैयारियाँ तो उसने महाराज तक को हरा देने की कर रखी है।"

"महाराज, यानी आपका मतलव है, जयदेव महाराज!"

"जी हाँ, जयदेव महाराज!"

"हरा चुका! उन्हे हराने वाला तो अभी तक कोई जन्मा नही है। यो खयाल आपका सच हो सकता है, लेकिन पाटन को कोई हरा नही सकता। फिर भी आप अपना मामला महामात्य के सामने अवश्य रखिए।"

"कुमार आये ही इसलिए है। इस समय वे महामात्य से इसी प्रसग पर चर्चा कर रहे होगे। लेकिन आप तो विक्रमसिह को जानते नही, मै जानता हूँ और इसी लिए मेरा कहना है कि वह तो महाराज जयसिहदेव को भी घोलकर पी जाता।"

"आप उससे वेकार डरते है।"

"पूरी वात सुनने के वाद खुद आपको विश्वास हो जाएगा कि मेरा डर वेकार नही है। विक्रमसिह मैदान मे आने और आमने-सामने लडने वाला आदमी नही है। वह तो आवभगत और स्वागत-सत्कार मे ही जान ले लेता है। अपने महल मे उसने कुछ ऐसा इन्तजाम कर रखा है कि जो वहाँ रात रह जाता है फिर वाहर नही निकल पाता। महल मे रातोरात जला दिया जाता है।"

"यह आप क्या कह रहे हैं!"

"सच ही कह रहा हूँ। शायद वह यहाँ भी आ धमका है। कल रात हम जहाँ रुके वहाँ एक साधु मिला था—माधवेश्वर था उसका नाम " लेकिन कोविदास तुरत सँभल गया। नही, यह वात उसे किसी को वतानी नही चाहिए। तुरत प्रसग वदलकर वोला "यहाँ तो अभी पादुकाराज ही चलता रहेगा, क्यो ?"

साधु का उल्लेख किये जाते सुन काकभट्ट चौंक पडा। कही इसका मतलव उस ब्रह्मचारी से तो नही है, जिसे सीढियो के नीचे वाले तलघर में प्रतीक्षा करता छोड आया हूँ। लेकिन उसने ऐसा अभिनय किया मानो साधु वाली वात सुनी ही न हो और वोला "जी हाँ, अभी तो यहाँ महाराज की पादुकाएँ ही राज्य कर रही है।"

"आखिर कव तक ?"

"आप यहाँ कव आये—आज या कल ?"

"आज ही।"

"अगर कल आते तो मैं आपको एक ढोंगी बाबाजी से मिलाता। भविष्यवाणी करते फिर रहे थे महन्तजी। सरस्वती के किनारे आपको रात बितानी पडी होगी और वहाँ आपने ऐसे कई नकली साधुओं को देखा होगा।"

"रात तो हम एक बरगद के नीचे रहे।"

"अच्छा! अरे हाँ, आप भी तो एक साधु का जिक्र कर रहे थे। कौन था वह साधु?"

अब कोविदास के लिए बात टालना मुश्किल हो गया और छिपाने मे कोई लाभ भी नही था। फिर भी उसने इस तरह कहा जैसे बात निरी महत्त्वहीन हो "यो था तो साधु, लेकिन लगता था जैसे साधु न होकर कोई और हो।"

"सतर्क तो हम खूब हैं, लेकिन षड्यन्त्रकारियो का क्या भरोसा! विक्रमसिंह-जैसा कोई धोखा भी दे सकता है। आपने जिस साधु को देखा वह विक्रमसिंह-जैसा तो नही लग रहा था न? कहाँ मिला था आपसे?"

"यहाँ से कुछ ही दूर, पश्चिम मे, एक बरगद के नीचे पानी की प्याऊ है वहाँ। लेकिन हमें व्यर्थ ही सन्देह हो गया था। दो भिखारी थे—मामूली-से भगत—माँग-जाँचकर अपना काम चलाने वाले। परन्तु आज के जमाने मे सन्देह करना ही भला।"

कोविदास ने बात को घुमा-फिराकर थोडे मे खत्म कर दिया। काक ने भी अधिक जिज्ञासा प्रकट नही की। लेकिन वह समझ गया कि कोविदास जिस भगत साधु के बारे मे बतला रहा है वह उस ब्रह्मचारी के सिवाय और कोई नही हो सकता। और यह कह रहा है कि दो थे तो वह दूसरा कौन हो सकता है? कुमारपाल तो नही? उसका मन चित्र-विचित्र कल्पनाओं मे भटकने लगा।

लेकिन दूसरे ही क्षण उसने जोर देकर कहा "आप निश्चिन्त रहिए कोविदासजी! आपके कहे कि यहाँ अवहेलना नही होगी और न निरादर होगा। चन्द्रावती और यशोधवलजी की सिंहासन-भक्ति प्रसिद्ध है। फिर आपका कहना भी सच है कि विष-बीज को उगते ही उखाड फेंकना चाहिए, मौका पाकर तो वह छतनार बन जाता है। अच्छा हुआ कि आप खुद आ गए। ऐसे मामले बुजुर्ग ही समझते और समझा सकते हैं। आपके समझाने से महामात्य सारी स्थिति को ठीक

ने समझ जाएँगे। मेरी राय में तो एकदम सीधे पाटन की गज-सेना भेजनी चाहिए। शुरू मे ही इतने जोर का हल्ला मारना चाहिए कि शत्रु के पाँव उखड जाएँ।"

"जी हाँ, मेरी भी यही राय है।'

काक को कोविदास की यह बात प्यासी धरती पर अमृत की वर्षा-जैसी लगी। उसने आगे कहा "वैसे तो यहाँ और भी कई तरह की सेनाएँ और अनेक वीर सेनापति हैं लेकिन आरम्भ मे ही इतना आतक जमा देना चाहिए कि फिर किसी को सिर उठाने की हिम्मत न हो।"

"सच पूछो तो वहाँ कई लोग सिर उठाए खडे हैं। पहला तो विक्रमसिह ही है, जो पाटन के हर आदेश को घोलकर पी जाएगा।"

"वह घोलकर पी जाएगा और आपका खयाल है कि हम बैठे देखा करेंगे ?"

"नहीं, ऐसा खयाल तो मेरा नहीं है।"

"फिर ठीक है। त्यागभट्ट जी की गजसेना का पराक्रम तो आप भी मालवा के मोरचे पर देख चुके हैं। उनके आगे विक्रमसिह की बिसात ही कितनी ? दो घडी तो टिक नही सकेगा। सिर्फ महामात्यजी से निवेदन करने की देर है। धारावर्षदेवजी इसी सम्बन्ध में बात करने आये है न ?"

"जी हाँ।"

"देखिए कोविदासजी! यहाँ हमारे लिए तो महाराज का सिंहासन अब भी समर्थ और उनका आदेश अब भी पवित्र और अनुल्लघनीय है। महाराज की राजनीति यहाँ हम सब लोगो के लिए पत्थर की लकीर है। इसलिए आपकी बात पर ज़रूर ध्यान दिया जाएगा और पूरी सहानभूति से उस पर विचार होगा। आप सच मानिए, जैसे ही पाटन की दृष्टि उस ओर घूमेगी सारे उपद्रव शान्त हो जाएँगे। ज़रूरत सिर्फ इस बात की है कि आप अपनी बात को ढग से पेश करें। असल मे तो आपके हित में ही हमारा हित भी है। शर्त यही है कि बात ढग से पेश की जाए।"

"इसी लिए तो हम आए है और अपने पक्ष-समर्थन मे कुछ भी उठा न रखेगे। लेकिन विक्रमसिंह ने भी पूरी तैयारियाँ कर रखी हैं और उसका घमण्ड तोडने के लिए त्यागभट्टजी की गजसेना के बिना काम बनेगा नही। उन्हें वहाँ भेजना ही होगा। लेकिन प्रश्न यह है कि अभी की परिस्थितियों मे उनको वहाँ भेजना सम्भव

हो भी सकेगा ? क्योंकि परिस्थिति तो पाटन की भी नाजुक है।"

काकभट्ट को मुँह माँगी मुराद मिली। बोला "सम्भव भला क्यो न होगा? राज्य की रक्षा सबसे पहला काम है।"

"राज्य की रक्षा ही पहला काम होता तो यहाँ वाले इस तरह बेखबर न रहते।"

"बेखबर ? किस बारे मे ?"

"उपद्रवो के बारे मे ! एक साथ इतने मोरचो पर आग भडकने वाली है और यहाँ किसी के कानो पर जूँ तक नही रेंगती। मै आपको बता ही चुका हूँ कि नडूल, मालवा, मेदपाट, शाकभरी और गोध्रक के भील—सब-के-सब विद्रोह करने पर तुले हुए है। शान्त और अनुवर्ती है तो सिर्फ अकेली चन्द्रावती। ऐसे समय कुमारतिलक त्यागभट्टजी को वहाँ अवश्य भेजा जाना चाहिए। वे उस ओर के उपद्रवो को दबाकर लौटे तो उनकी शान मे और चार चाँद लग जाएँगे।"

"वाह, क्या बात कही है आपने !" काक को कोविदास की यह बात मिश्री की डली-जैसी लगी। यही तो वह चाहता था कि किसी बहाने त्यागभट्ट को यहाँ से खिसकाकर कुमारपाल के लिए रास्ता साफ कर दिया जाए। बाद में जैसा होगा देख लिया जाएगा।

लेकिन कुमारपाल कहाँ हैं ? उन्हें अब जैसे भी हो ढूँढ निकालना होगा। कोविदास बरगद वाले जिन दो साधुओ के बारे मे बता रहा था क्या उनमे से तो एक कुमारपाल नही हैं ? ज़रूर वह भिखारी साधु कुमारपालजी का ही आदमी है। नही तो मन्त्रीश्वर का महल ढूँढने का क्या प्रयोजन ? उसे विश्वास हो चला कि कुमारपालजी को खोजने का सूत्र हाथ आ गया है। अब तो जल्दी-से-जल्दी यहाँ से भागकर उस साधु से मिलना चाहिए।

तभी कोविदास को बुलाने के लिए एक अनुचर आता दिखाई दिया। काक ने मुक्ति की साँस ली।

"कोविदासजी, हम आपके साथ ही हैं। और आपको वहाँ इसी विषय पर चर्चा करने के लिए बुलाया जा रहा है। गजसेना पर ज़ोर देना भूलिएगा नही। मुकाबला विक्रमसिंह से है, इसे याद रखिएगा।" काक ने कोविदास का कन्धा थपथपाते हुए कहा।

कोविदास फुर्ती से अन्दर चला गया। काक को इस बात मे सन्तोष हुआ कि

उसने समय का सदुपयोग किया और जो कहना था वह कह दिया।

लेकिन अब कुमारपाल का पता लगना चाहिए, नहीं तो सारा आयोजन बिन दुल्हे की बारात बन जाएगा। भाग्य से एक सूत्र हाथ आया है। फौरन चलकर उसकी परीक्षा करनी चाहिए।

७ : उदयन की शान्ति

कोविदास के अन्दर जाने के थोड़ी ही देर बाद काक ने मन्त्रीश्वर उदयन को बाहर आते देखा। अपमानित होने अथवा कठिनाई मे फँस जाने पर मन्त्रीश्वर के चेहरे के जो भाव हो जाया करते थे उनसे काक बहुत अच्छी तरह परिचित था। ऐसे कई प्रसगो पर वह मन्त्रीश्वर को देख चुका था। ऐसे समय उदयन के चेहरे पर प्राय एक अजीब तरह की शान्ति छा जाया करती थी। इस समय काक को मन्त्रीश्वर के चेहरे पर ठीक वैसी ही शान्ति दिखाई दे रही थी। वह समझ गया कि मन्त्रणा-खड मे जरूर कोई बात हुई है जिससे मन्त्रीश्वर ने या तो परेशानी अथवा अपमान अनुभव किया है। कदम उसके नपे-तुले और जमे हुए पड रहे थे। दृष्टि स्थिर थी। चेहरा निश्चल और निरुद्विग्न। केवल आँखों मे किसी निर्णय पर पहुँच जाने और उस पर अडिग रहने का कट्टर भाव प्रतिबिम्बित हो रहा था। जो भी उन आँखो को देखता स्तम्भित होकर रह जाता। मानो वे पुकार-पुकार कर कह रही थी, 'चाहे दुनिया इधर-की-उधर हो जाए, लेकिन अब तो यह बात होकर ही रहेगी।'

उदयन काक की ही तरफ चला आ रहा था। फिर उसके पीछे त्रिलोचन दुर्गपाल आता दिखाई दिया। बस, सारा मामला काकभट्ट की समझ में आ गया। जरूर उस साधु को लेकर कुछ कहा-सुनी हुई है। काक ने उदयन से उसके बारे मे कह तो दिया था, लेकिन दरबार मे आने की जल्दी थी इसलिए उदयन ने सिर्फ यही जवाब दिया था. "अभी तो उसे तलघर में बिठा दो। बाद मे देखेंगे। लेकिन

जाने मत देना। कही पकड जाएगा। लगता है कि कुमारपालजी के पास से आया है।" काकभट्ट ने उसे तलघर में विठा दिया था और फिर ये लोग यहाँ आ गए। वह अव भी वहीं वैठा होगा। लेकिन त्रिलोचनपाल को उसका पता कैसे चल गया? दुर्गपाल ठहरा, लगा दिया होगा किसी गुप्तचर को उसके पीछे। या हो सकता है कि परमार ने कहा हो। कारण जो भी रहा हो, मन्त्रीश्वर को इसी प्रश्न पर मन्त्रणा-खड से वाहर आना पडा, और यह मामले की गम्भीरता का ही सूचक है। उदयन के चेहरे पर की गम्भीर शान्ति का वस यही कारण था।

काकभट्ट सतर्क हो गया। तभी उदयन ने उसे देखा और पुकारकर कहा "काकभट्टजी, ज़रा यहाँ तो आइए मेरे पास और थोडी देर के लिए त्रिलोचनपालजी के साथ मेरी हवेली तक चले जाइए। स्तम्भतीर्थ से क्या आज कोई नया आदमी आया है हमारे यहाँ? आपको मालूम है?"

"स्तम्भतीर्थ से कोई नया आदमी!" काक ने सिर खुजलाते हुए कहा· "नहीं तो। क्यो, क्या वात है?"

त्रिलोचनपाल इस नाटक को वर्दाश्त न कर सका। तेज़ी से वोला "देखिए मन्त्रीश्वरजी, एक साधु आया तो जरूर है आपके यहाँ।"

काक ने कुछ इस तरह कहा जैसे सहसा याद आ गया हो· "हाँ, हाँ! एक भिखारी आया तो था। क्यो क्या वात है?"

"त्रिलोचनपालजी उसी को खोज रहे है।"

"नगर में कही भीख माँग रहा होगा वह इस समय।"

"आपने देखा है उसे भीख माँगते हुए?"

"ना, देखा तो नहीं, परन्तु भिखारी और करेगा क्या! भीख ही तो माँगता फिरेगा। लेकिन वात क्या है त्रिलोचनपालजी? क्या वह कोई सन्देहास्पद व्यक्ति है?"

"क्षमा कीजिएगा मन्त्रीश्वर। और बुरा भी मत मानिएगा। हम उसे वन्दी वनाना चाहते हैं।" त्रिलोचन पाल ने काक की नितान्त उपेक्षा करते हुए सीधे मन्त्रीश्वर से ही कहा।

"ज़रूर वन्दी वनाइए। हमे भला क्या आपत्ति हो सकती है! न वह जैन साधु है और न हमारा सगा-सम्वन्धी। मेरा साथ चलना तो ज़रूरी नहीं है न? या आप

चाहते हैं कि मैं भी चलूं और उसे वन्दी वनाने मे मदद करूँ ?"

"वह कुमारपाल का खास आदमी है।" त्रिलोचनपाल ने अपनी ओर से वता दिया कि मामला कितना गम्भीर है।

अत्यन्त शान्ति के साथ मत्री ने कहा "आपकी जानकारी गलत हो ही कैसे सकती है! काकभट्टजी, इस वात को ध्यान मे रखिए कि वह कुमारपाल का खास आदमी है!"

"एक वरगद वाली प्याऊ है, उसमे वह रहता है।"

"अच्छा? यह वात भी ध्यान मे रखने-जैसी है काकभट्टजी कि वह वरगद वाली प्याऊ मे रहता है। तव तो त्रिलोचनपालजी, उसे अवश्य वन्दी वनाइए। हमारा तो उमसे कोई लेना-देना है नही। अभी-अभी परमारजी भी वरगद वाली प्याऊ के किसी साधु के वारे मे कह रहे थे। कोई शत्रु ही वहाँ छिपा न वैठा हो! त्रिलोचनपालजी, इस वात की आज ही पूरी छानवीन हो जानी चाहिए। देखना दुश्मन का कोई आदमी हमे झाँसा न दे जाए!" उदयन ने विशिष्ट वात का साधारणीकरण कर दिया। लेकिन जव उसने काकभट्ट की ओर देखा तो उस मौन दृष्टि में अनमोल सकेत छिपा वैठा था। कुमारपाल के कही समीप ही होने की आशका उन निगाहो में झलक रही थी। उस सकेत को पाकर काकभट्ट स्वय भी आशकित हो गया।

"और सुनिए काकभट्टजी," उदयन ने उतनी ही शान्ति से कहा "त्रिलोचनपालजी कोई गैर नही अपने घर के ही आदमी हैं। आप इनके साथ चले जाइए और हवेली का कोना-कोना इन्हे दिखला दीजिए। शका का समाधान हो जाना चाहिए। इस समय कौन-सा दुश्मन कव वार कर जाए, कुछ कहा नही जा सकता। आप चलकर हवेली के फाटक खुलवाइए। त्रिलोचनपालजी भी तव तक वहाँ पहुँच जाएँगे।

काक उदयन के अभिप्राय को समझ गया। वोला "हाँ स्वामिन्! मैं यह चला। त्रिलोचनपालजी, आपको वही फाटक पर मिलूँगा। फिर हम लोग साथ-साथ एक चक्कर शहर में भी लगा लेंगे। कोविदासजी अभी-अभी मुझे विक्रमसिंह की कारस्तानियो के वारे मे वतला रहे थे। गाफिल तो अव रहना ही नहीं चाहिए। क्या पता वह साधु विक्रमसिंह का ही आदमी हो!"

उदयन ने एक अर्थपूर्ण दृष्टि काक की ओर डाली और धीरे-धीरे चलता हुआ मन्त्रणा-खण्ड के भीतर पहूँच गया।

काकभट्ट सारे मामले को समझ गया। मन्त्रीश्वर को खोजता हुआ जो साधु आया था वह निश्चय ही कुमारपाल का आदमी था। इसका अर्थ यह हुआ कि कुमारपाल इस समय प्याऊ में होना चाहिए। उसका कलेजा काँप उठा—समय वडा कीमती और मामला वडा पेचीदा था।

वह वहाँ से चल पडा। लेकिन उसी समय उसने देखा कि त्रिलोचनपाल ठिठककर किसी से बातें करने लगा था। देखने के लिए जैसे ही उसने निगाहे घुमाई तो चौंक पडा। वह मल्हारभट्ट था, जो इधर कई दिनो से दिखाई नही दिया था। दोनो कनफुसकियाँ कर रहे थे। काकभट्ट की धमनियो मे खून की गति तेज हो गई। जरूर मल्हारभट्ट के पास कुमारपाल से सम्वन्धित जानकारी है और इस समय वह त्रिलोचनपाल को वरगद वाली प्याऊ के वारे मे ही वता रहा है। किसी तरह उन लोगो की वात सुननी चाहिए। मानो कोई वात पूछनी रह गई हो इस तरह तेजी से चलता हुआ वह त्रिलोचनपाल के पीछे आ खडा हुआ। उसे देखते ही मल्हार-भट्ट चुप हो गया, लेकिन इस वीच काकभट्ट इतना सुन चुका था, 'रात मे पचासेक!'

"त्रिलोचनपालजी, मैं चलता हूँ। आप भी शीघ्र आइए। ओहो! तुम हो मल्हारभट्ट! कहो भाई, कव आए? इधर तो वहुत दिनो से नही दीखे!"

"तुम देखो तो दिखाई दे " मल्हारभट्ट ने औपचारिक ढग का जवाव देकर पल्ला छुडाया। असल मे वह परेशान होकर सोच रहा था कि कही इसने हमारी वात सुन तो नहीं ली!

"अच्छा?" और इतना कहकर काक वहाँ से जल्दी-जल्दी चला गया। उन शब्दो ने उसकी चिन्ता को और भी वढा दिया था—'रात में पचासेक' का मतलव क्या है?

कही प्याऊ को घेरने के लिए रात में पचासेक सैनिक भेजने की वात तो नही है? रात में पचासेक—जरूर यही मतलव होना चाहिए। तव तो कुमार-पालजी की नाव डूवी समझो। उन्हें जैसे भी हो वचाना होगा। प्याऊ की रक्षा करनी ही होगी! अब तो भागमभाग चले चलो हवेली और उस साधु से सारी वात मालूम कर लो। प्याऊ वाले किस्से मे कितनी सचाई है अभी मालूम हुआ

जाता है। लेकिन मन तो यही कहता है कि कुमारपालजी वही है—बरगद वाली प्याऊ मे ही। बचाना ही होगा उन्हें तो। उसने पालकी ढोने वाले कहारो से कहा "ज़रा फुर्ती से चलो। मत्रीश्वर के यहाँ धार्मिक उत्सव है। उसकी समाप्ति से पहले ही हमें वहाँ पहुँच जाना चाहिए।"

और कहार पवनपखी घोडे की तरह सरपट दौडने लगे।

८ : चौदहवाँ रत्न

काक वहाँ से चला तो उसका मन विचारो का अखाडा बना हुआ था। कुमारपाल का सिंहासन पर आना उसके अपने जीवन की एक महत्त्वाकाक्षा का पूरा होना था। वह सेनापति केशव के पद का प्रत्याशी था। पाटन का सेनापतित्व उसके मन इन्द्र की पदवी और प्रतिष्ठा के समकक्ष ही था। केशव की तरह जिस दिन वह ऊँचे कुम्मैत घोडे पर सवार पाटन के रास्तो पर निकल सकेगा, पाटन की विजयी सेना का नेतृत्व करता हुआ पराजित अवन्ती मे प्रवेश कर सकेगा उस दिन उसकी समस्त आकाक्षाएँ पूरी हो जाएँगी। फिर उसे कुछ पाने को नही रह जाएगा। सच ही बडा लोभ था उसके मन में सेनापति-पद के लिए। यहाँ तक कि वह उसे विष्णुपद की तरह अचल, अद्भुत और काम्य समझने लगा था। लेकिन कुमारपाल के लिए तो सिंहासन के बदले जीने के ही लाले पड रहे थे। मल्हारभट्ट को उसका सूराग मिल गया था और वह दुष्ट तो किसी को पाताल से भी निकालकर लाने की सामर्थ्य रखता था। कुमारपाल का इस समय देखा जाना बहुत ही बुरा होता। विरोधी पक्ष उसे हमेशा के लिए गायब कर देगा। बर्बरक अभी तक जयसिंहदेव महाराज के ही प्रति आस्थावान था। यो भी वह कुमारपाल से खार खाये बैठा था, इसलिए अगर दाव लग गया तो वही कुमारपाल को गायब कर देगा।

दूसरी ओर यह खतरा भी था कि यदि कुमारपाल ऐन वक्त पर हाजिर न

हुआ तो अपना दाव हमेशा के लिए हार जाएगा ।

परन्तु अभी तो उसे त्रिलोचनपाल की चिन्ता लगी थी, जो उसके पीछे चला आ रहा था। पता नही उस साधु से बात उगलवाने का वक्त मिल भी पाता है या नही। मन्त्रीश्वर तो वहाँ मन्त्रणा-सभा में फँसे रहेंगे और यहाँ सब-कुछ अकेले उसी को करना होगा। कही वह साधु का बच्चा इधर-उधर करने लगा, कह ही बैठा कि मन्त्रीश्वर के अतिरिक्त किसी को नही बताऊँगा तब क्या होगा ? हाथ आई बाजी हार देना पडेगी। कोई ऐसी तरकीब करनी होगी जिससे वह बात को फौरन उगल दे ।

इस समय तो ज़रा-सी भी देर हमेशा की अबेर बन जाएगी ।

आखिर काकभट्ट को अपना काम बनाने का एक उपाय सूझ ही गया। वह जानता था कि आदमी के मन मे विश्वास पैदा करना मुश्किल होता है, लेकिन भय आसानी से और जल्दी पैदा किया जा सकता है। परिणाम दोनो का एक ही होता है—सामने वाला अपने मन की बात उगल देता है। उसे इतनी खुशी हुई मानो अकेले चौदहवें रत्न में चौदहो रत्न मिल गए ।

जब काक उदयन की हवेली पहुँचा तो बौसरि तलघर में ही पडा था। काक ने सीधे जाकर उसे पकडा और पूछा "सच-सच बतलाना महाराजजी ! तुम कुमारपालजी के पास से ही आ रहे हो न ?"

प्रश्न इतना अप्रत्याशित था कि बौसरि असमजस मे पड गया। उसने किनारा करने में ही कुशल समझी। बोला "कौन कुमारपालजी ! शिवशकर ! बम् भोला ! मैं किसी कुमारपालजी को नही जानता ।"

"बाबाजी !" काक ने जल्दी से कहा "कुमारपालजी की जान खतरे मे है। जल्दी बताओ ! तुम बरगद वाली उस प्याऊ में ही रहते हो न ?"

जीवन के मीठे-कडवे अनुभवो ने बौसरि को यह सिखा दिया था कि शत्रु से मित्र कही खतरनाक होते हैं और मित्रो-हितैषियो से हमेशा बचकर रहना चाहिए। शायद परमार धारावर्षदेव ने दरबार मे बरगद की प्याऊ वाली बात कही है और उसी से प्रेरित होकर यह यहाँ चला आया है। पता नही इसका उद्देश्य क्या है ! ऐसे मामले में मन्त्रीश्वर के सिवा किसी पर भी भरोसा करना ठीक नही। उसने कान पकडकर इनकार कर दिया ।

लेकिन काकभट्ट इतनी आसानी से मानने वाला जीव नही था। फिर त्रिलोचनपाल चला ही आ रहा था। इस तरह प्रस्तावना में ही सारा समय बीत गया तो अनर्थ हो जाएगा। मालूम हो ही जाना चाहिए कि यह कहाँ से आया है। यदि कुमारपालजी के पास से नही आया है तो इसे छिपाकर दुर्गपाल के सन्देह का कारण क्यो बना जाए। उसने लपककर वौसरि का गला पकड लिया और दबाकर बोला "क्यो बे। बताता है कि घोट दूं गला ?"

वौसरि ने सोचा भी नही था कि नौबत यहाँ तक पहुँच जाएगी। बचारे की जबान तालू से सट गई और दम घुटने लगा। उधर काकभट्ट गला दबाये ही जा रहा था। बडी मुश्किल से बोला "छो छोड छो "

"छोड़ूंगा कैसे ? बता, नही तो यह घोटता हूँ गला।"

"हँ हँ हाँ " वौसारि को आखिर कहना ही पडा।

"हुँ अब आया रास्ते पर।" काक ने पकड कुछ ढीली कर दी और बोला "अच्छा, बता, कुमारपालजी कहाँ हैं ? और तेरा नाम क्या है ?"

"माधवेश्वर !"

"अबे माधवेश्वर के बच्चे !" काक ने पकड फिर मजबूत कर दी "वह तेरा बाप यहाँ तलाशी के लिए आ रहा है और वहाँ तेरा वह बाप पकड जाएगा। बोल, कुमारपालजी कहाँ है ?"

"बरगद वाली प्याऊ मे।" वौसारि ने डर से थरथर काँपते हुए कहा।

"प्याऊ में ही हैं न या और कही ?" काकभट्ट ने सर्र से तलवार सूंत ली। वौसारि ने सोचा, आज बुरे फँसे। लेकिन यह आदमी भरोसे का भी हो सकता है। हवेली तो मंत्रीश्वर की ही है और इस तलघर में विरोधी पक्ष का कोई आदमी यथासम्भव नही ही आ सकता। उसने कुमारपाल के छिपने का स्थान भी बता दिया।

काक ने ताली बजाई। एक अनुचर दौड आया।

"कोई आया तो नही ?" काक ने पूछा।

"त्रिलोचनपालजी आए हैं।"

"आ गए या आ रहे है ?"

"आ रहे हैं।"

"ऐसा क्यो नही कहता ! 'आ जाने' और 'आ रहे होन' का फर्क भी क्या तू नही समझता ! अच्छा, अब इसे छिपाने का प्रबन्ध कर ! यहाँ से चौकीदारो के आवास में ले जा, जल्दी । वहाँ चहारदिवारी फाँदकर बाहर निकल जाना । उधर कृष्णदेवजी के महल के पास जो रहती है क्या नाम है उसका ?"

"नीलमणि !"

"हाँ, उसी नीलमणि वारागना के यहाँ इसे छिपा देना ।"

"लेकिन मैं तो ब्राह्मण मैं तो " परन्तु काक उसकी बात सुनने के लिए रुका नही । बौसरि को सामने से धकियाता, उसे एक झापड टिकाता वह फुर्ती से जीना चढ गया । ऊपर आकर देखा तो त्रिलोचनपाल हवेली के फाटक में प्रवेश कर रहा था ।

९ : तैयारी

उदयन राजमहल से लौटा तो काकभट्ट को अपनी प्रतीक्षा करता पाया । काकभट्ट को इस बात का सन्तोष था कि त्रिलोचन ने हवेली के सारे कोने-अन्तरे देख डाले, पर उसे कही कोई साधु नही मिला । उसे अब जल्दी ही किसी निर्णय पर पहुँचना था । मन्त्रीश्वर उदयन को आज-जैसा शान्त और निरुद्विग्न उसने पहले कभी नही देखा था । वह समझ गया कि दरबार में जरूर कोई बात हुई है, वहाँ अवश्य ही कोई बहुत ही महत्त्वपूर्ण निर्णय हुआ होना चाहिए ।

जानने के लिए उसे ज्यादा देर प्रतीक्षा नही करनी पडी । अपनी बैठक की ओर जाते हुए उदयन ने एक बार बाहर के सारे मैदान को ध्यान से देख लिया । काक को उसने अपने साथ आने का सकेत किया । अन्दर कदम रखने से पहले मन्त्री ने बैठक को भी एक बार ध्यान मे देखा । काक मन्त्रीश्वर की हर चेष्टा को बहुत बारीकी से देखता जा रहा था ।

उदयन ने पगडी उतारकर खूँटी पर रखी, पास वाली दूसरी खूँटी पर दुपट्टा

टाँगा और मसनद की टेक लगाकर बैठ गया। उसका एक हाथ दाहिने पाँव के घुटने पर से होता हुआ नीचे झूल रहा था, बायाँ पाँव थोड़ा फैला हुआ था। उसके चेहरे पर दृढ़ निश्चय की छाप थी। जब भी कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय करना पड़ता या कोई बड़ा कदम उठाने को होता तो वह इसी तरह बैठा करता था। काक आया और चुपचाप उसके सामने बैठ गया।

"कहिए कर्कभट्टजी, वहाँ क्या रहा ?" थोड़ी देर रुककर वह आगे बोला "वहाँ के समाचार तो कुछ बहुत अच्छे नहीं हैं। सर्वदेव से मुहूर्त छनवाया गया और अभिषेक की तैयारियों के आदेश दिये गए हैं। कोविदासजी को आपने शायद समझा-बुझा दिया था। उन्होंने अपनी बात वहाँ पेश तो बहुत अच्छी तरह की।"

"उसके बाद भी अभिषेक की तैयारियों के आदेश दिये गए ? आश्चर्य है ! मगर अभिषेक होगा किसका ?"

"जो भी अपना दावा पेश करके सामन्त-मण्डल को अपने पक्ष में कर ले।"

"अभिषेक का निर्णय कोविदासजी की बात सुनने के पहले हुआ या बाद में ?"

"बाद में। कोविदासजी ने विस्तार से उधर के समाचार कहे। सब लोग उनसे सहमत हुए कि पाटन की चतुरंगिणी सेना को मालवा के विरुद्ध भेजना चाहिए। सब ने स्वीकार किया कि बल्लाल आदि चुप न रहेंगे और केवल दण्ड-भय से ही उन्हें शान्त किया जा सकता है। लेकिन साथ ही सब को यह राय भी हुई कि पाटन के नव-अभिषिक्त राजा को ही उस सेना का संचालन और नेतृत्व करना चाहिए। तात्पर्य यह कि इस तरह त्यागभट्ट के पक्ष में बात तय हो गई।"

"सब इससे सहमत हैं ?"

"जो न होंगे अब हो जाएँगे। महादेव ने राजसभा का अधिवेशन आयोजित किया है। दो-चार दिन में होने ही वाला है। उसमें सब स्थानों के सामन्त, माण्डलिक, मंडलेश्वर, पुरोहित, ब्राह्मण, नगरश्रेष्ठी, दंडनायक आदि सभी आएँगे। औपचारिक निर्णय उसी सभा में होगा। लेकिन वास्तविक निर्णय हो गया है और वहाँ केवल औपचारिकता निभाई जाएगी—जो हो चुका है उस पर मुहर लगाने का काम किया जाएगा।"

"अच्छा ?"

"इसमें अच्छा क्या और बुरा क्या ! देखो काकभट्टजी, राजकाज की अनन्त-

काल से यही रीति चली आती है कि राजपुरुष नीति निर्धारित करते हैं और सेना उसे कार्यान्वित करती है। और कोई पद्धति तो मैंने सुनी नही है। राजसभा मे सबको बुलाया गया है। सभी आएँगे। वहाँ महादेव नागर जो प्रस्ताव करेगा सब उसका समर्थन कर देगे। सेनापति केशव अपनी सैनिक तैयारियो के साथ देख-भाल करता रहेगा। त्रिलोचनपाल हर प्रतिस्पर्धी के पीछे लगा रहेगा। बर्बरक गीधदृष्टि से देखता रहेगा। आज की चर्चा का मेरा तो यही निष्कर्ष है। खैर, होगा। आप यहाँ की बताइए। क्या रहा? वह साधु कहाँ है? उसकी बात मे कुछ सार है भी या मुफ्त की परेशानी ही हाथ रही? अगर अब भी पता न चला तो हम गए काम से!"

"और यदि पता चल गया हो?"

"हैं!" उदयन एकदम सीधा बैठ गया। "सच? पता चल गया? कक्कल-भट्टजी, जरा मेरे पास आ जाइए। दीवालो के भी कान होते है। अब बताइए कि क्या हुआ, कैसे पता चला और कुमारपालजी इस समय कहाँ हैं?" अन्तिम बात उदयन ने करीब-करीब फुसफुसाते हुए कही।

काकभट्ट ने स्वर को यथासम्भव धीमा करके जवाब दिया "यहाँ से पश्चिम दिशा की ओर बरगद वाली एक प्याऊ है उसमे।"

"किसने, उस साधु ने बताया? त्रिलोचनपाल को तो उसका पता नही चला न?"

"जी नही। साधु का पता लगना क्या इतना आसान है! वह मजे से छिपा बैठा है। लेकिन अब खोने के लिए एक क्षण भी हमारे पास नही है। प्रतिक्षण कुमारपालजी के पकडे जाने की आशका बढती जा रही है।"

"कौन, मल्हारभट्ट जा रहा है उन्हें पकडने के लिए?"

काक विस्मित हो गया। उसकी समझ में नही आया कि उदयन को इस बात का पता कैसे चला! उसने कहा "जी हाँ।"

"तब तो इस साधु की बात सच है। परमार ने भी इसी से मिलती-जुलती बात कही है। रात वे लोग उस प्याऊ पर ही रहे थे। मल्हारभट्ट को त्रिलोचन-पाल के निकट जब मैंने खडा देखा तभी मुझे सन्देह हो गया था।"

"हमे पचास आदमी तैयार करने होगे।"

"क्यो, क्या लडने का इरादा है ? मल्हारभट्ट कब जा रहा है ?"

"शाम को। रात मे वह प्याऊ के चारो ओर घेरा डाल देना चाहता है। हमे उससे पहले ही कुछ कर गुजरना चाहिए।"

"साधु कहाँ हैं ?"

"उन्हे मैने नीलमणि के यहाँ रख दिया है।"

"नीलमणि के यहाँ ? ठीक " उदयन कुछ सोचने लगा। काकभट्ट ने साधु को छिपाने के लिए जगह तो बढिया चुनी थी।

वह अभी सोच ही रहा था कि काक ने कहा "एक तो उसका आवास कृष्ण-देवजी के महल के पास है और फिर वह उनकी प्रेयसी भी है। कृष्णदेवजी को उसने इतना अपनी मुट्ठी में कर रखा है कि उनकी पत्नी प्रेमलदेवी तक उस नीलमणि की सेवा करती और उसका मुँह जोहती रहती है। इसलिए मैंने सोचा कि साधु को यदि वही रख दिया जाए तो किसी को सन्देह न होगा। फिर मैंने त्रिलोचन-पाल को हवेली का हर कोना-अन्तरा दिखला दिया।"

"तो उठो काकभट्ट, वही चला जाए । तुम आगे-आगे चलो और मैं तुम्हारे पीछे-पीछे आता हूँ। पिछवाडे के दरवाजे से चलना ठीक रहेगा। उधर कोई हमें देख नही पाएगा।"

काकभट्ट उठा और तुरन्त चल पडा। मन्त्रीश्वर उसके पीछे हो लिया। उदयन सोचता जा रहा था कि इस समय कृष्णदेव की प्रेयसी को ऊँचा चढाये बिना काम बनेगा नही। काम निकालने के लिए पतुरिया की तारीफ भी करनी पडे तो कोई हानि नही।

१० : कृष्णदेव की प्रियतमा

कुछ औरतो में सलीका होता है, कुछ मे तरीका होता है, कुछ गजब की खूब-सूरत होती हैं, कोई लुभावनी और मनभावनी होती है, कुछ सामान्य ज्ञान

और समझदारी का भण्डार होती हैं, कुछ सरमता, रसिकता और रस का आगार होती हैं, किसी मे केवल वातावरण को प्रभावित करने की क्षमता होती है—उनका अपना रग-ढग निराला ही होता है। एक स्त्री में एक साथ ये मभी गुण प्राय कम ही देखने को मिलते हैं। कवि-कल्पना की वात निराली है। प्रकृति कभी किसी नारी को ये सारे वरदान एक साथ नही देती। लेकिन पाटन नगर की पतुरिया नीलमणि पर प्रकृति विशेष रूप से कृपालु हो गई थी। उसे प्रकृति देवी ने ममम्त नारी सुलभ सद्गुण मुक्त हस्त से दान किये थे।

उसमें सलीका भी था और तरीका भी। रूप भी था और रसिकता भी। आकर्षक वह गजव की थी और वातावरण को प्रभावित करने की उसकी क्षमता तो वम अद्वितीय ही थी। ये सव खूवियाँ उनमे इस तरह घुली-मिली थी कि एक को दूसरे से भिन्न करके देखा नही जा सकता था। ये सभी गुण एक दूसरे के पूरक ही नही परस्परावलम्वी भी थे। अपने इन रूप, शील और गुणो के कारण ही तो नीलमणि ने पाटन के शौकीन मिजाज, रसिक शिरोमणि, सभा-चतुर, धृष्ट, गर्विष्ठ और समरप्रिय तुरगाध्यक्ष कृष्णदेव को अपना दासानुदास वना लिया था। वह उमकी आँखो से देखता, उसकी वाणी से वोलता, उसकी धुन पर नाचता और उसके परामर्श को सर्वोपरि और अनुल्लघनीय मानता था। नीलमणि का सहवास उसके लिए स्वर्ग और नीलमणि की वाणी उसके लिए आपा भुला देने वाला स्वर्गीय सगीत था।

जयसिंह महाराज की मृत्यु के वाद पाटन की राजनीति और राजपुरुषो मे कृष्णदेव का स्थान वहुत ही महत्त्वपूर्ण हो गया था। महामात्य थे महादेव मेहता, उदयन मन्त्रीश्वर थे, सेनापति केशव था, भाव वृहस्पति कुलगुरु थे, लेकिन कृष्ण-देव का स्थान सवसे ऊँचा और अलग था। उसकी गिनती सामन्तो में और वह भी सामन्त-शिरोमणि के रूप में की जाती थी। प्रधान-मण्डल के विश्वसनीय लोगो में वह प्रमुख माना जाता था। पाटन की सेना का सवसे सवल और महत्त्वपूर्ण अग तुरग-सेना उसके अधिकार मे थी। सैनिक, सामन्त और सरदार हमेशा उसका मुँह देखा करते और हर काम उसकी सलाह मे करते थे। उसके कहे को कोई टाल नही मकता था। जो वात उसके मुँह से निकलती पत्थर की लकीर वन जाती थी। महाराज जयसिहदेव मरते समय जो-कुछ कह गए थे उन अन्तिम शव्दो को सुनने

वालों में एक कृष्णदेव भी था। आज की परिस्थिति में यह कोई मामूली सौभाग्य नहीं था। इस विशिष्टता ने कृष्णदेव के महत्त्व में चार चाँद लगा दिए थे। इस अभिमानी और मनमौजी तुरगाध्यक्ष का विवाह कुमारपाल की सगी बहिन प्रेमल के साथ हुआ था। प्रेमल बेचारी सीधी-सादी, सती-साध्वी, किसी का भी बुरा न चाहने वाली, शान्त स्वभाव की निरापद नारी थी। उधर कृष्णदेव युद्ध का रसिया और हवा से भी लड़ने को तैयार रहने वाला आदमी था। दोनों के स्वभाव में जमीन-आसमान का अन्तर था, इसलिए पारस्परिक सम्बन्धों में भी बड़ा खिंचाव और अन्तर बना रहता था। नीलमणि के कारण दोनों के सम्बन्ध और भी बिगड़ गए थे। तुरगाध्यक्ष पूरी तरह नीलमणि का ही होकर रह गया था। प्रेमल के आगे इस सारे दुःख को चुपचाप सहते रहने के और कोई चारा नहीं रहा था, इसलिए बेचारी सब-कुछ शान्ति से सहे जा रही थी। अपना दुखड़ा रोती भी किसके आगे? उसका भाई कुमारपाल तो चोर की तरह जाने कहाँ-कहाँ भागा फिर रहा था।

नीलमणि की अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ थीं। उसकी ऐसी धारणा बन गई थी कि यदि तुरगाध्यक्ष प्रयत्न कर सके, आवश्यक जोड़-तोड़ बिठा सके और इस काम में जितने धैर्य की आवश्यकता है उतनी धीरज रख सके तो पाटन का अर्धीश्वर बन सकता है। सिंहासन तक पहुँचने के उसके मार्ग में सिर्फ दो ही बातें बाधक थीं— एक तो उसका अहंकार और दूसरे उसकी सिंहासन-भक्ति। नीलमणि ने बड़ी चतुराई से उसके अहंकार को महत्त्वाकांक्षा की ओर प्रेरित किया। अब रह गई सिंहासन-भक्ति। इसके लिए उसने पट्टी पढ़ाना शुरू किया कि बिना मोढेरक-पति के समर्थन और स्वीकृति के कोई पाटन का महाराज नहीं बन सकता, इसलिए महाराज को बनाने वाला तो आप ही महाराजाधिराज हुआ। यदि वह आज्ञा-नुवर्ती न रहे तो उसे हटाया जा सकता है। लेकिन इसके लिए पहले किसी और को पाटन के सिंहासन पर बिठाना आवश्यक था। नीलमणि इस बात को जानती थी और इसी योजना में लगी हुई थी।

अपनी इस शतरंज में उसने अपना स्थान बहुत पहले ही निश्चित कर लिया था। वह पाटन में उस स्थान को चाहती थी जो पहले कभी चौलादेवी का रह चुका था। चौला के पुत्र की ही तरह वह अपने पुत्र को पाटन के सिंहासन पर आसीन देखना चाहती थी।

उदयन को जैसे ही नीलमणि की इस महत्त्वाकाक्षा का पता चला उसने उससे मेल-जोल वढाना और उसकी योजना मे दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया था। अगर वारागना को ऊँचा चढाने और मान-मरतवा देने से अपना काम वनता हो तो उदयन-जैसे कूटनीति प्रवीण को इसमे जरा भी आपत्ति नही थी। एक वार सफलता मिल जाए फिर जैसा होगा देख लिया जाएगा। इसलिए वह हर वहाने उसकी महत्त्वाकाक्षा को उभारता रहता था और उसकी योजनाओ को चोप चढाया करता था।

जव मत्रीश्वर नीलमणि के नीलभवन मे पहुँचे तो वहाँ के राग-रग और केलि-विनोद देखकर मुग्ध-मुदित हो उठे। सारे पाटन मे यही एक ऐसा स्थान था जिस पर समय का कोई प्रभाव नही पडा था। लगता था जैसे काल का सतत प्रवाह यहाँ आकर थम गया है। स्वर्गलोक की अप्सराओ का हास, विलास और केलि-विनोद ही जैसे यहाँ का चरम सत्य था। कही तान-पलटो के साथ राग का आलाप छिडा था, कही गीत के मधुर वोल वोले जा रहे थे, कही ताल पर नुपुर-अलकृत चरण थिरक रहे थे तो कही दु ख-मात्र को भुलाने वाले हास्य-विनोद हो रहे थे।

नीलमणि के मद्यभवन के ठाठ तो और भी निराले थे। लगता था जैसे प्रत्यक्ष स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आया हो। कही पासे खेले जा रहे थे, कही द्यूत का वाजार गर्म था। लका के गजमोतियो की मालाएँ धारण किये मृगनयनी परिचारिकाएँ इठलाती, वल खाती, कभी मन्द, कभी क्षिप्र चरण धरती इधर-से-उधर आ-जा रही थी। उनका पद-सचालन नृत्य-भगिमा के लालित्य मे भी अधिक ललित काव्य-पदावली-जैसा प्रतीत होता था। चारो ओर सौन्दर्य का समन्दर लहरा रहा था और चेतन-अचेतन सारी सृष्टि को आप्लावित किए हुए था। वहाँ के कण-कण में कला और सुरुचि की छाप थी। नीरस, कुरूप और वेढगा तो कुछ रहा ही नही था। हवा मे पुष्प-परिमल की सौरभ, शव्द-मात्र में गीत की लय, गति-मात्र मे लास्य और क्षण-क्षण में मधुर आनन्द तरगित हो रहा था। एक क्षण के लिए उदयन को प्रेमल पर दया हो आई। फिर भी कृष्णदेव की इस आभिजात्य रुचि और ऊँची पसन्द की तो उसे प्रशसा ही करनी पडी। वह नीलमणि का इन्द्रभवन-जैसा नीलभवन देखते हुए आगे वढे। वीच के हरी दूव वाले मैदानो में मयूरो को नाच सिखाया जा रहा था। वारागनाएँ खडी-खडी ताल दे रही थी। वीच-वीच में

रंगीन पानी के फव्वारे चन्दन की गन्धपूरित फुहारे उडा रहे थे। खिले हुए सुगन्धित फूलो की पुष्पमण्डपिकाओ में पाटन की प्रशस्ति के श्लोक गाती हुई मैनाएँ उड रही थी।

काकभट्ट यहाँ पहली ही वार आया था। उसके लिए सब चीजें नई और अद्‌भुत थी। वह मत्रमुग्ध-सा सब-कुछ देखता हुआ मत्रीश्वर उदयन के पीछे-पीछे चलता रहा। पाटन की इन वारागनाओ का रूप और हाव-भाव देखकर उसे आज पहली वार पछतावा हो रहा था कि भृगुकच्छ में जीवन के इतने वरस व्यर्थ ही बीत गए।

जैसे ही वे लोग मुख्य द्वार पर पहुँचे एक रूपसी ने आगे बढकर प्रणाम किया। वह बोली कुछ नही। लगता था जैसे नतमस्तक होकर प्रणाम करना ही यहाँ की भाषा हो। प्रत्युत्तर में उदयन ने अपनी मुद्रिका उसे दी।

काक के विस्मय का पार न रहा। उदयन-जैसे मत्रीश्वर भी जहाँ वगैर पूर्व-सूचना और विना अनुमति के जा न सकें ऐसी यह नारी कौन है? राजराजेश्वरी है या इन्द्रलोक की अप्सरा या कौन है? जब वौसरि को उसने यहाँ भेजा तो सपने मे भी नही सोचा था कि इस जगह के ये ठाठ होगे। एक वार मत्रीश्वर ने उससे कहा था कि आज के विक्षुब्ध वातावरण में यदि मैं उपस्थित न रहूँ और किसी को छिपाना हो तो मेरा नाम देकर उसे कृष्णदेवजी के महल के पास रहने वाली नीलमणि वारागना के यहाँ भेज देना, वह उसको इस तरह छिपाकर रख देगी कि पाटन का वडे-से-वडा गुप्तचर भी सिर पटकता रह जाएगा। इसी वात को ध्यान मे रखकर काक ने वौसरि को यहाँ भेज दिया था। अव जो यहाँ के ठाठ देखे तो चकित रह गया। सोचने लगा, जीवन के इतने वर्ष युद्धो मे व्यर्थ ही गँवा दिये। पता ही न चला कि पाटन में ऐसी-ऐसी वारागनाएँ भी वसती हैं। पता नही त्रिलोचनपाल ने कभी यहाँ के ठाठ-वाट देखे हैं या नही।

तभी वह रूपसी लौटती दिखाई दी। उसने पुन प्रणामकर उदयन को अन्दर प्रवेश करने का सकेत किया। उदयन के पीछे-पीछे काक भी आगे वढता चला गया।

सप्तभूमिका प्रासाद था वह। एक-एक मजिल, एक-एक भूमिका पार करते हुए वे महल की आखिरी मजिल पर पहुँचे। यहाँ के एक गवाक्ष मे से काक ने झाँक-

कर नीचे देखा तो देखता ही रह गया। लगा मानो इन्द्र की अमरावती ही पाटन का रूप धारण करके नीचे उतर आई हो। पाटन की ऐसी शोभा की तो उसने सपने मे भी कल्पना नही की थी। सैकडो, हजारो और लाखो सुनहले-रुपहले कलश सूर्य के प्रकाश में जगमगा रहे थे। फरफराती पताकाओ के उत्तुग ध्वजदड सिर ऊँचा किये पाटन के प्रतिहारियो की तरह शोभा पा रहे थे। दूर सरस्वती की धारा मे सैंकडो नौकाएँ अठखेलियाँ करती दिखाई देती थी। रग-विरगे पटोले-पाटाम्बर पहने पाटन की सुन्दरियाँ सरस्वती-तट को शोभायमान किए हुए थी। काक ने उदयन को यह मनोरम दृश्य दिखलाया और एक साथ दोनो के मन मे यह विचार उदित हुआ कि इस महीयसी पाटन नगरी के महत्त्व और प्रतिष्ठा की रक्षा कोई कर भी सकेगा या सव-कुछ महाराज जयसिंहदेव के साथ पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ उन्ही के साथ अन्तर्धान हो जाएगा ? "काकदेव, इस नगर की प्रतिष्ठा की रक्षा " उदयन कहने जा ही रहा था कि चाँदी के घुंघरुओ-सा मीठा, गूंज भरा स्वर सुनाई दिया "पधारिए, पधारिए, मन्त्रीश्वरजी ! आज तो आप स्वय "

काक ने चौंककर सामने की ओर देखा तो अन्दर के खण्ड से जो नारी चली आ रही थी उसकी शोभा और सुन्दरता उसे वर्णनातीत लगी। रूप, सौन्दर्य और सुपमा-शोभा से भी अधिक उसमें कुछ था जो देखन वाले को मुग्ध ही नही मूर्च्छित कर देता था और वह उस मूर्च्छना से कभी उवर नही सकता था। निरे रूप का नशा हो तो उतर भी जाए, इस अपरूप का नशा कैसे उतरे ! स्वय काक अपनी सुध-वुध भूल गया था। सामने से जो चली आ रही थी वह नारी नही मानो किसी कवि की साकार कल्पना ही थी। उसमे रूप, रग, शोभा, सुषमा, आकर्षण और माधुर्य दृग्गोचर न होते हुए भी जैसे इन सवकी किरणें उससे विकीरित हो रही थी। उसके नेत्रो मे त्रैलोक्य को मोहित करने वाली आभा थी। जो उसकी छटा को एक वार देख लेता फिर देखे विना जीवित नही रह सकता था।

उसने वहाँ आकर उदयन को प्रणाम किया और एक आसन की ओर ले जाती हुई वोली "आइए मन्त्रीश्वर, पधारिए ! वडे भाग्य मेरे कि आज आपके चरण पडे ! मेरे-जैसा कोई काम हो तो वताइए। आपने जिसे भेजा " लेकिन काक पर दृष्टि पडते ही उसने वात अधूरी छोड दी।

"अरे, आप इन्हें नही पहचानती ? ये हैं हमारे काकभट्ट; लाट के दण्डनायक।"

कृष्णदेव इस चाटूक्ति से प्रसन्न हो गया। उदयन ने उसका हाथ पकड़कर अपने पास बिठा लिया और कहा "कृष्णदेवजी, अब आपको निर्णयात्मक कदम उठाना चाहिए। देर करने से यह सुन्दर नगर, जरा देखिए तो गवाक्ष से इसका भविष्य आप पर ही अवलम्बित है।

कृष्णदेव बुजुर्गाना हँसी हँसकर बोला "सब मिलकर मुझी को बुजुर्ग बनाये दे रहे हो, क्यों ? अच्छा बताइए, क्या बात है ?"

"शास्त्रो मे लिखा है कि किसी काम को करने से पहले चाहे हजार बार विचार कर ले, लेकिन कदम उठा चुकने के बाद सिर्फ एक ही विचार मन में रखे। ये आये हैं " उदयन ने वौसरि की ओर सकेत किया।

"ये कौन हैं और कहाँ से आये हैं ?"

"आये तो है कुमारपालजी के पास से, लेकिन कौन हैं यह आप ही इनसे पूछिए। आपकी अनुमति के बिना हमने पूछना उचित नही समझा, अब पूछें लेते हैं। क्या नाम है आपका महाराजजी ? हैं तो ब्राह्मण ही न ?"

"जी हाँ, मेरा नाम वौसरि है।"

"कहाँ के हैं ?"

"लाट का।"

"कुमारपालजी कहाँ हैं ?" कृष्णदेव सहसा पूछ बैठा।

"यहाँ से पश्चिम दिशा मे थोडी दूर एक बरगद का पेड है उसके नीचे वाली प्याऊ में।"

वातावरण एकदम गम्भीर हो गया। कृष्णदेव के चेहरे का रंग प्रतिपल बदलने लगा। अब वह मालवा के रणक्षेत्र में पराक्रम दिखलाने वाला कृष्णदेव नही नीलमणि के रूप-सौन्दर्य का दासानुदास लम्पट कृष्णदेव था। वह नीलमणि के इशारो पर चलने वाला उसका पालतू कुत्ता था। यदि नीलमणि इशारा कर दे कि तुम्हें गादी पर बैठना है तो वह दुम हिलाता हुआ उधर को लपक जाएगा और यदि नीलमणि मना कर दे तो वह दुम दबाकर चुपका बैठ जाएगा। उदयन उसकी इस कमजोरी को भाँप गया और बोला "कृष्णदेवजी, आप जो चाहें कर सकते हैं और आप जो कहेंगे वही हम करेंगे। लेकिन कदम उठाने से पहले खूब सोच लेना चाहिए। कल का काम आज कर डालें अथवा आज का काम कल पर छोड

दे—बातें दोनो ही बुरी है। इसलिए जो भी करना है अभी करना होगा। कुमारपालजी के छिपने की जगह का पता शायद मल्हारभट्ट को लग गया है। त्रिलोचनपाल को भी मालूम होगा और केशव भी अवश्य जान गया होगा। इसलिए यदि कुमारपालजी को बचाना है तो सूर्यास्त के पहले ही हमें उन्हें यहाँ ले आना चाहिए। शाम होते ही मल्हारभट्ट उस प्याऊ को घेर लेगा। उसके पचास सैनिक वहाँ पहुँच गए होगे या पहुँचा ही चाहते है।"

"यह आपसे किसने कहा कि मल्हारभट्ट उस जगह पर घेरा डालेगा ?"

"उस जगह को घेरने का निर्णय हो गया है। काकभट्ट ने अपने कानो सुना है।"

"तो सुनो काकभट्ट, तुम पचास की जगह सौ सैनिक लेकर पहुँच जाओ।"

उदयन ठठाकर हँस पडा। ऊपर से तो ऐसा लगा मानो वह उसकी उदार वीरता की दाद दे रहा हो, परन्तु वास्तव में वह हँसा था उसकी मूर्खता और उतावलेपन पर। फिर धीरे से बोला "नही कृष्णदेवजी, इस तरह काम नही चलेगा। यो खुलकर तो हम कभी सामने आ नही सकते, न आना ही चाहिए। हमारी नीति परदे की ओट काम करने की है और हमें उसी का अवलम्बन करना चाहिए। खुले विरोध से अन्त सघर्ष फूट निकलेगा और बाहरी शत्रुओ का भय खडा हो जाएगा। लोगो में निन्दा होगी सो अलग। और परिणाम मनचाहा ही निकलेगा, यह नही कहा जा सकता। सघर्ष का रास्ता हमें टालना ही होगा। कुमारपालजी कहाँ होगे बौसरि ?"

"बरगद के तने में ऊपर की ओर एक बडी-सी कोटर है। दिन में वही छिपकर बैठनेवाले थे। यह तय पाया था कि शाम को मेरे लौटने पर निकल आएँगे।"

"शाम को निकलने की बात तो समझो कि खत्म हो गई। प्रश्न यह है कि उन्हें इसी समय यहाँ कैसे लाया जा सकता है !"

सब-के-सब विचारमग्न हो गए। न सघर्ष हो, न किसी को पता चले, न सन्देह हो और न मार-पीट करनी पडे—इस तरह कुमारपालजी को यहाँ लाने का क्या उपाय हो सकता है ? थोड़ी देर तो सब सोचते ही रहे। किसी को कोई उपाय सुझाई नही दिया।

"वह बरगद तो काफी बडा, घनी छायावाला और यहाँ से पश्चिम की ओर

"मैं आपसे मिलना चाहता था ?" वौसरि के मन मे अव भी डर समाया हुआ था, इसलिए उसने साफ-साफ नही कहा ।

"देखिए महाराजजी ! हमारे पास समय विलकुल नही है । एक-एक क्षण कीमती है । इसलिए आप निर्भय होकर जो वात है वह साफ-साफ वता दीजिए । आपके स्पष्ट और शीघ्र कथन से हमारा काम सरल हो जाएगा । आपको वहुत सहना पडा है इसलिए लोगो के प्रति अविश्वास होना स्वाभाविक है । लेकिन यहाँ हम घर में वैठे हैं और सव अपने ही लोग हैं । फिर एक क्षण की भी देर का मूल्य सारी जिन्दगी से चुकाना पड सकता है । अव आपका लौटकर कुमारपालजी के पास जाना खतरे से खाली नही है । वताइए कुमारपालजी कहाँ हैं ? आप उनके पास से ही आए हैं न ? हमने जमीन-आसमान एक कर डाला पर वे मिले नही । और अव मिले तो अचानक और विलकुल इतने पास । वरगद की कोटर कितनी वडी है ? आराम से छिपा जा सकता है या नही ?"

"जी, कोटर तो वहुत वडी और काफी ऊँची है । हफ्तो छिपे वैठे रहें किसी को पता नही चल सकता ।" वौसरि ने कहा ।

तभी नीलमणि लुभावने ढग से उठकर खडी हो गई । उदयन ने देखा और समझ गया । सामने से तुरगाध्यक्ष चला आ रहा था । तुरन्त ही उसकी आवाज़ भी सुनाई दी "क्यो मेहताजी, क्या वात है ? मुझे क्यो वुलाया ? वाह, यहाँ तो मजलिस जमी हुई है—आप हैं, काकभट्टजी है और यह भी है " उसने प्रेम भरे एक वचन में नीलमणि को उद्देश्यकर अन्तिम वाक्य कहा ।

"हम सव हैं महाराज !" नीलमणि वोली "लेकिन ऐसे ही जैसे विना पुतली की आँख ।"

उदयन को आज पहली वार यह अनुभव हुआ कि भाषा में भी इतनी मधुरता होती है । नीलमणि के मधुर शब्द अव भी हवा में तरगित हो रहे थे । उसने सोचा कि इस मधुरता से विधा कृष्णदेव प्रेमल को छोड न दे तो क्या करे !

"कृष्णदेवजी, आप तो इस तरह पूछ रहे हैं जैसे कुछ जानते ही नही, या हमारे ही मुँह से कहलवाना चाहते हैं ?" उदयन ने कहा : "कही विन दुल्हे की वारात भी होती है ? या जैसा कि हम वनियों का मुहावरा है—एक के अंक के विना सब सुन्नम्-सुन्ना !"

है न ?" नीलमणि ने वौसरि की ओर देखकर पूछा। उसे कोई उपाय सुझाई दे गया था।

"जी हां, वही है। आपने खूब याद रखा।"

"कई बार यात्रा की क्लान्ति दूर करने के लिए मैं उसकी छाया में सुस्ताई हूं। यदि भूलती नहीं तो उसके पास ही, पाटन की ओर, एक खंडहर भी है।"

"जी हां, है।" वौसरि ने तुरत जवाब दिया।

"तब तो मेरा खयाल ठीक ही है। क्यों मंत्रीश्वर, ऐसा नहीं हो सकता कि मल्हारभट्ट के प्याऊ को घेरने से पहले हमारे कुछ सैनिक उस खंडहर में पहुंच जाएँ और वहां खोज-बीन शुरू कर दें।"

"वाह!" उदयन ने प्रशंसात्मक दृष्टि से नीलमणि की ओर देखा। लेकिन दूसरे लोग कुछ समझ न सके।

"क्या कह गई तुम ?"-कृष्णदेव ने नीलमणि से पूछा।

"कृष्णदेवजी, इस तरकीब से जरूर काम बन सकता है।" उदयन बोल उठा।

"लेकिन तरकीब क्या है यह तो पहले बताओ।"

"मंत्रीश्वर बताएँगे।" नीलमणि ने कहा और वह उदयन के मुंह की ओर देखने लगी। वह इस बात से प्रसन्न थी कि उदयन उसके मन की बात जान गया। लेकिन साथ ही दोनों के मन में यह चिन्ता भी घुमड रही थी कि भविष्य में यदि मैत्री भंग हो गई तो वह अवश्य दोनों के ही लिए हानिप्रद होगी। नीलमणि ने फौरन इस विचार को दबा दिया और आंखों-ही-आंखों में जरा-सा मुस्कराकर बोली "क्यों मंत्रीश्वर, आपका क्या-खयाल है ? इस तरह काम बन तो सकता है न ? और किसी को सन्देह भी न होगा।"

अब भी किसी के कुछ समझ में नहीं आया।

"पहले यह तो बताओ कि योजना क्या है और करना क्या होगा ?" कृष्णदेव ने पूछा।

"करना सिर्फ यह होगा कृष्णदेवजी कि काकभट्ट पचासेक घुडसवार लेकर वहां पहुंच जाएँ और जैसे ही मल्हारभट्ट आता दिखाई दे खंडहर की तलाशी लेना शुरू कर दें।"

"इससे क्या होगा ?"

"होगा यह कि काकभट्ट को खडहर में खोज-बीन करते देख मल्हारभट्ट वही रुक जाएगा। सन्देह का मारा वह भी खडहर की तलाशी लेने लगेगा। इस अवसर से लाभ उठाकर वौसरि और तेजदेव अथवा हठीले में से कोई एक वरगदवाली प्याऊ पर पहुँच जाएँगे। वौसरि वही रुक जाएगा और कुमारपालजी हठीले के साथ दूसरे रास्ते से काकभट्ट के घुडसवारो में आ मिलेंगे। न किसी को पता चलेगा, न कोई पूछताछ करेगा। थोडी देर वाद, मल्हारभट्ट आप ही समझ जाएगा कि इन तिलों में तेल नही है, झूठे ही यहाँ आ फँसे तो वह भागेगा प्याऊ की ओर। तव तक चिडिया वहाँ से उड चुकी होगी। लेकिन उसका खाली हाथ लौटना भी ठीक नही। इससे और शका पैदा होगी। इसलिए वौसरि उसके हाथ लग जाएगा। डर का अभिनय करते हुए कहेगा कि इतने सारे घुडसवारो को देखकर मारे डर के छिप गया था। अव सारा दारोमदार इस बात पर है कि वौसरि पकडे जाने को तैयार है या नही? उसे थोडे समय तक वन्धन मे रहना होगा और अग्नि-परीक्षा देनी होगी।"

"प्रभो! उससे भी बुरे खडहरो में रह चुके हैं, अनेक वार अग्नि-परीक्षाएँ दे चुके हैं। यह तो कुछ भी नही। मैं तैयार हूँ।"

"खडहर, प्याऊ और वरगद—तीनो की तलाशी हो जाए और वौसरि के सिवा वहाँ और कोई न मिले तो सन्देह भी निर्मूल हो जाएगा। हमे कहने को हो जाएगा की धार परमार ने कृष्णदेवजी से विक्रमसिंह के किसी आदमी के वारे में कहा था, इसलिए शका हुई और काकभट्ट को तलाशी के लिए भेजा, मगर कोई मिला नही।" उदयन ने इस तर्क के साथ जाने की अनुमति दे दी।

काक तुरत उठ खडा हुआ। हठीला भी आ गया। वौसरि को घुडसवार के वेश में ले जाना था। इसलिए काक ने उसे साथ लिया। चलते-चलते काक ने कहा "व्राह्मण देवता, मैंने आपका गला दवाया था, अव उसका वदला कही तलवार से न ले वैठना।"

"कुमारपालजी का काम वनता हो तो आप एक नही हजार वार मेरा गला दवा सकते हैं।" वौसरि ने कहा।

"अगर उस समय गला दवाकर वात उगलवा न लेता तो आप हूँ-हाँ ही करते रह जाते और सारी वात विगड जाती।"

"काकदेवजी, कुमारपालजी को कई वार चने तक खाने को नही मिले है। इसलिए हमारी तो आदमी क्या पेड, पत्ते और पक्षियो तक पर सन्देह करने की वान पड गई है।"

"और हमारी आदत हो गई है जल्दी करने की। खैर, होगा। लेकिन आपने मुझे माफ तो कर दिया न ?" काक ने हँसकर पूछा।

"अभी तो जरूर माफ कर दिया है, लेकिन जरा कुमारपालजी को आ जाने दीजिए, फिर आपसे समझा जाएगा और मय व्याज के जुर्माना वसूल किया जाएगा।" वौसरि ने हँसते हुए कहा।

११ : मल्हारभट्ट को अच्छा सबक मिला

अविचल राजभक्ति में वर्वरक के वाद दूसरा नम्वर मल्हारभट्ट का था। वह निरा राजभक्त ही नही महाराज जयसिंहदेव का अनन्य सेवक भी था। लेकिन मालवा में उदयन से उसकी भेंट क्या हुई कोई ऐसा अनिष्ट ग्रह लग गया कि जिस किसी भी काम में हाथ डालता वही उलटा पड जाता था।

वरगदवाली प्याऊ में कुमारपाल से मिलते-जुलते किसी व्यक्ति के होने का पता सवसे पहले मल्हारभट्ट ने ही लगाया था। उसने फौरन इसकी सूचना महामात्य को दी। धार परमार ने भी कहा कि हम लोगो ने रात वहाँ विताई और दो सन्देहास्पद व्यक्तियो को देखा। इससे मल्हारभट्ट की वात का समर्थन हो गया। किसी को सन्देह न हो इसलिए सूर्यास्त के वाद प्याऊ पर घेरा डालने का फैसला किया गया। कुमारपाल को वन्दी वनाने का भार मल्हारभट्ट को ही सौंपा गया। इस तरह आज उसके जीवन की सवसे वडी अभिलाषा पूरी होने जा रही थी। खम्भात का वह वनिया हर कही जैन मन्दिर वना रहा है, उसे वहुत वढिया सवक सिखाने का मौका हाथ आया था। लेकिन भाग्य को क्या कहा जाए! इस काम में भी किसी दुष्ट ग्रह की वक्र दृष्टि पड ही गई!

महामात्य महादेव ने ठीक ही सोचा था। यदि लोगों को पता चल गया कि मन्त्रिमडल हाथ धोकर कुमारपाल के पीछे पड गया है तो सर्वसाधारण जनता की सहानुभूति उसके पक्ष में हो जाएगी और उसके दावे को शक्ति और समर्थन प्राप्त होने लगेगा। इसलिए यह निश्चय किया गया कि कुमारपाल को ज़रा भी महत्त्व नही दिया जाए। उस पर नज़र रखी जाएगी, उसे दूर रखने की कोशिश की जाएगी, परन्तु महत्त्व जरा भी नही दिया जाएगा। महामात्य उत्तराधिकार के प्रश्न पर किसी भी तरह का सघर्ष नहीं चाहता था। मल्हारभट्ट की सूचना को इसी लिए उसने अनावश्यक महत्त्व नही दिया। शान्त मन से सुन लिया और आवश्यक निर्देश दे दिए। महामात्य की योजना यह थी कि कुमारतिलक त्यागभट्ट को एक-एक कर शासन-कार्यों का भार सँभला दिया जाए और उसे बिना मुकुट का राजा बना दिया जाए। इस तरह वह सिंहासनासीन हो जाएगा, फिर तो सिर्फ मुकुट पहनाना रह जाएगा, सो वह भी किसी दिन अवसर देखकर पूरा कर दिया जाएगा। सघर्ष वह हर हालत में टालना चाहता था। इस बीच कुमारपाल पकड गया तो ठीक और न पकडा गया तो भी कोई चिन्ता नही। केवल उसे पाटन में प्रवेश न करने दिया जाए, सिंहासन से दूर और अलग ही रखा जाए—यह थी उसकी नीति।

मल्हारभट्ट को सख्त हिदायत दे दी गई थी कि वह शाम को घुडसवारो के साथ इस तरह निकले मानो हमेशा की तरह नगर के उपान्त का चक्कर लगाने जा रहा हो। मल्हारभट्ट ने इस आदेश का पूरा पालन किया। पचासो घुड-सवारो के मिलने का स्थान पहले से तय कर लिया गया था। मल्हारभट्ट ने अपने चरो के मार्फत चौकी-पहरे का कडा प्रबन्ध कर रखा था। बरगद के पास सबेरे से अब तक कोई फटका भी नही था। यहाँ तक कि जिस साधु से सबेरे त्रिलोचनपाल ने पूछताछ की थी वह भी दिखाई नही दिया था।

मल्हारभट्ट अपने सैनिको के साथ जब उस खडहर के पास से गुजरा तो अँधेरा हो चुका था। उसे खडहर में उजेला दिखाई दिया। लगा जैसे कोई आदमी मशाल लेकर घूम-फिर रहा हो। उसे सन्देह हुआ। फौरन घुडसवार टुकडी को वही रुक जाने के आदेश दिए गए। वह घोडे से उतर पडा और पैदल खडहर की ओर गया।

यह निर्जन खडहर मल्हारभट्ट का देखा-भाला था। कुमारपाल की खोज में वह कई बार इस जगह की खाक छान चुका था। यह खडहर काफी बडा और विस्तृत था। जगह धर्मशाला-जैसी लगती थी। अन्दर कुआँ भी था। अहाते में एक भग्न शिवालय भी था। लेकिन उसमे न मूर्ति थी और न शिवलिंग। चारो ओर एक परकोटा था जो जगह-जगह से टूट-फूट गया था। इस जगह का सारा नक्शा मल्हारभट्ट के दिमाग मे था। वह सीधा मुख्य द्वार पर पहुँचा।

देखा तो दरवाज़ा अन्दर से बन्द था। उसे आश्चर्य हुआ। आज तक उसने दरवाज़ा हमेशा खुला ही पाया था। उसका सन्देह और दृढ हो गया। ज़रूर अन्दर कोई है!

उसने किवाडो की सेंध में आँख लगाकर देखा। अन्दर घोडे हिनहिना रहे थे। पता नही कौन है? विक्रमसिंह की बात निकली थी। कही वही तो नही है? अच्छा ही है, साँप के साथ बिच्छू को भी मार दिया जाए। वह अकेला पिछवाडे की ओर चला गया और परकोटे पर चढकर अन्दर देखने लगा।

काकभट्ट ने घोडो की टापो की आवाज़ सुन ली थी। समझ गया कि मल्हारभट्ट आ पहुँचा है। उसने और जोर-शोर से तलाशी लेना शुरू कर दिया। अब एक के बदले चार मशालें खडहर मे घूम रही थी।

"कौन हो तुम? और यहाँ क्या कर रहे हो?"

काक तो यह चाहता ही था। मल्हारभट्ट यहाँ जितनी देर बिलमा रहेगा उसकी योजना उतनी ही आसानी से और जल्दी सफल होगी। उसने कोई जवाब नही दिया।

मल्हारभट्ट का सन्देह बढता गया। उसने फिर पूछा "अन्दर कौन है? जवाब क्यो नही देते? और क्या कर रहे हो?"

काक ने घबराए हुए स्वर में उत्तर दिया: "अरे भाई! तुम चौकीदार हो तो अपना काम देखो—जगल-रास्तो की चौकीदारी करो। राज-काज में बेकार माथा क्यो मारते हो? हम जो कर रहे हैं उससे तुम्हें कोई मतलब नही। तुम्हें भेजा किसने है?"

"तुम कौन हो?"

"तुम कौन हो?"

"मै पूछता हूँ, तुम कौन हो, वताओ ?"

"तुम्ही क्यों नही वताते कि कौन हो ?"

"मै हूँ मल्हारभट्ट !"

"तो मै हूँ काकभट्ट !"

"अच्छा, काकभट्टजी ! आप हैं ? यहाँ क्या कर रहे हैं ?"

काकभट्ट ने उसे गुमराह करने के इरादे से फुसफुसाकर कहा "अच्छा, तो मल्हारभट्टजी आप हैं ? निकले होगे चौकसी पर । हम यहाँ एक खास काम से आए हैं ।"

"किस खास काम से ?"

काक उसके समीप खिसक आया और भेद भरे धीमे स्वर से कुछ घवराहट के साथ वोला "किसी से कहिएगा नही । पता चला है कि विक्रमसिह का कोई आदमी यही कही छिपा हुआ है ।"

और उसने एक वार चारो ओर देख लिया ।

"इसी लिए आप यहाँ आये है ?"

"हाँ, जी हाँ ।" काक ने जान-बूझकर जल्दी-जल्दी कहा ।

लेकिन मल्हारभट्ट पर इसकी उलटी ही प्रतिक्रिया हुई । उसने सोचा कि यह जरूर यहाँ कुमारपाल से मिलने के लिए आया है । उदयन मत्रीश्वर ने इसे भेजा है । पहले से प्रवन्ध हो गया होगा कि कुमारपाल प्याऊ से निकलकर यहाँ आ जाएगा और यह उसे लेकर उड़न-छू हो जाएगा । त्रिलोचनपाल जिस साधु को खोज रहे हैं उसी ने सन्देशो के आदान-प्रदान का काम किया होगा । विक्रम-सिह का नाम तो यह मुझे चकमा देने के लिए वतला रहा है । इसकी घवराहट और जल्दवाजी से तो यही लगता है कि कुमारपाल यहाँ पहुँच गया है । चलो अच्छा ही हुआ । हमारा वहाँ तक जाने का परिश्रम वचा । अव उसे यही पकड़ लेंगे । कुमारपाल के विना ये वनिए के नौकर इस समय यहाँ आने ही क्यो लगे ? उसने परिस्थिति से लाभ उठाने का निश्चय किया और वोला "काकभट्टजी, तव तो आप फाटक खुलवा दीजिए । हम भी विक्रमसिह के आदमी की ही टोह में निकले हैं ।"

काक ने और भी घबराहट का नाट्य किया और बोला "अजी साहब, एक अदने आदमी के लिए हम दो-दो भटों और इतने सारे घुडसवारों की क्या जरूरत ? आप खडे देखते रहिए, हम अभी उसे अपने कब्जे में किए लेते हैं। बल्कि अच्छा तो यह होगा कि आप अपने जिम्मे का काम देखिए और हमारे जिम्मे का काम हमें करने दीजिए ।"

"नही साहब, एक से दो भले ।" और मल्हारभट्ट परकोटे से कूदकर नीचे उतर आया ।

काक ने और भी घबराकर कहा "नही-नही, रहने दीजिए । आपने बहुत पराक्रम किए हैं । इतने से काम की वाहवाही हमें भी ले लेने दीजिए ।"

"काकभट्टजी, बेकार ज़िद मत कीजिए । हाथ आया शिकार निकल जाएगा । यदि आपने फाटक नही खुलवाए तो हमें परकोटा लाँघकर भीतर आना पडेगा ।"

काक ने डर और घबराहट का नाट्य किया ।

"काकभट्टजी ! सुन रहे हैं न आप ?" मल्हारभट्ट ने कुछ कुपित होकर कहा ।

इस बीच काक ने हठीले को सकेत कर दिया और तब इस तरह बोला मानो कोई चारा ही नही रह गया हो "अच्छी बात है ! अरे, कोई सुनते हो ? फौरन दौडे जाकर फाटक खोल दो ।"

हठीला और बौसरि फाटक खोलने के लिए दौडे गए । इधर काक मल्हार-भट्ट को बातों में लगाए रहा "हम तो यहाँ थे ही, फिर आपकी क्या जरूतरत ?"

असल में वह मल्हारभट्ट को चिढाना और कुछ गुस्सा दिलाना चाहता था, जिससे वह हठीले और बौसरि के उद्देश्य को भाँप न सकें, और साथ ही उन दोनो को वहाँ से निकलने का मौका भी मिल जाए । काक खडा भी था उनके और मल्हारभट्ट के बीच में दृष्टि की बाधा बनकर ।

"काकभट्टजी, दरवाज़े पर मशाल भेजिए । वहाँ घुडसवार खडे है ।"

"ए मशालची !" काक ने मशालवाले को आवाज़ दी और मल्हारभट्ट से कहा "आप नाहक दाल-भात में मूसरचन्द बन रहे हैं। असल में यहाँ के लिए हम जिम्मेवार हैं और वैसे भी हम यहाँ पहले पहुँचे हैं ।"

"तो इससे क्या ?"

"इससे यह कि हम जिसे खोज रहे हैं उसे वन्दी बना लें तब आपका जो जी चाहे कीजिए।"

"आप खोज किसे रहे हैं ?" मल्हारभट्ट ने कुछ कठोर स्वर में पूछा।

"उसी को जिसे आप खोज रहे हैं।" काकभट्ट ने शान्ति से जवाब दिया।

"हमारे पास पक्की जानकारी है !"

"तो क्या आप समझते हैं कि हम बगैर जानकारी के ही चले आए है ?" काक को लगा कि इसकी शका को थोडा निर्मूल कर देना चाहिए, इसलिए आगे बोला "जानकारी हमारे पास भी पक्की ही है मल्हारभट्टजी !" फिर कुछ पास आकर विश्वासोत्पादक स्वर मे कहा - "हमें पता चला है कि विक्रमसिंहजी का खास आदमी आया हुआ है।"

मल्हारभट्ट को लगा कि यह फिर गुमराह करने की कोशिश कर रहा है। बोला "तब तो एक से दो भले। चलिए हम भी आपके साथ उसे ढूंढते हैं। एक से भले ही बच जाए, दोनो से कभी बचकर निकल नही सकता।"

काक उसे थोडी देर इधर-उधर घुमाता और बच्चो की तरह नचाता रहा। स्वय हाथ में मशाल लिये कभी इस कोने में जाता, कभी उस कोने में। कई जगह जान-बूझकर नही भी जाता था। खंडहर काफी बडा था और उसमें कई अलिन्द, कमरे और प्रकोष्ठ थे। मशालें उनके पास बहुत कम थी। यदि कोई इस सारी ढूंढ-खोज के बावजूद छिपकर रहना चाहे तो मजे से रह सकता था। मल्हारभट्ट ने चारो ओर अपने आदमी लगा दिए और स्वयं भी ढूंढने लगा। फाटक पर उसने कडा पहरा लगा दिया और खडहर की इच-इच जमीन की तलाशी लेना शुरू कर दी।

काक को जब विश्वास हो गया कि हठीला कुमारपाल को निकाल लाया होगा और दोनो उसकी प्रतीक्षा कर रहे होगे तो उसने कुछ थके हुए स्वर में कहा : "मल्हारभट्टजी ! यहाँ तो कोई दिखाई नही देता। हम व्यर्थ परेशान हो रहे हैं। अँधेरा भी कितना घिर गया है ! विक्रमसिंह का आदमी होता तो कहाँ जाता ? मेरे खयाल में तो वह इधर आया ही नही। धार परमार को यो ही सन्देह हो गया होगा। मैं तो अब चला। कृष्णदेवजी से कह दूंगा कि एक-एक कोना खोज

मारा पर कोई मिला नही। आप भी चल रहे हैं?" उसने वडे आग्रह से यह वात कही।

मल्हारभट्ट समझ गया कि अव यह अपनी धूर्तता पर पर्दा डालने की कोशिश कर रहा है। वह किसी निश्चय पर नही पहुँच सका। कभी सोचता, कुमारपाल आया होगा और अभी यही होगा, कभी सोचता, शायद कुमारपाल आया ही न हो। अन्त में उसने कहा "आप वडे सुखी हैं काकभट्टजी। कृष्णदेवजी इतने से भले ही मान जाएँ त्रिलोचनपालजी माननेवाले नही। हमारे लिए अपने सामन्त को सन्तुष्ट करना इतना आसान नही है।"

"ठीक है, तो मैं भी रुक जाता हूँ। लेकिन मुझे तो इन तिलो में तेल लगता नही है। वेकार मरी माता के थन चूसना है। आदमी तो ठीक, यहाँ मुझे कोई कौआ भी पर मारता दिखाई नही देता।"

"आप आए कव?"

मल्हारभट्ट के इस आकस्मिक प्रश्न से काक मन-ही-मन हँस पडा। क्या खूब छकाया है इस ब्राह्मण को आज। सारी चतुराई धरी रह गई। वोला "आपके आने के जरा-सी देर पहले। मैंने फाटक वन्द करवाया और आप आये।"

"फिर तो वह यही होना चाहिए। वाहर तो कोई जा नही पाया है।"

"जी नही। वाहर तो कोई निकल नही सका है।"

तभी एक आदमी मल्हारभट्ट के पास दौड़ा आया। उसने झुककर उसके कान में कुछ कहा। काक समझ गया कि क्या वात है! वह लगा जोर-जोर से चिल्लाने "अरे, मशाल लाओ। उस कोने में मशाल दिखाओ। किरीटजी! आप जरा उस दीवाल के पास तो देखिए। देखिए-देखिए, वहाँ वह कौन खडा है? ढाक का पेड़ है। धत्तेरे की। इसी को कहते हैं कुदाली का नाम गैर-सप्पा।"

लेकिन उधर मल्हारभट्ट मारे गुस्से के आग-बबूला हो गया था। वोला "काकभट्टजी! इसका नतीजा अच्छा न होगा। मेरा घोडा!" लेकिन फिर सहसा कुछ याद आ गया हो इस तरह वात अधूरी छोड़ जल्दी से उस आदमी से वोला "तुम सुन्न वरगदवाली प्याऊ की ओर फौरन चल पड़ो।"

"आपका घोडा क्या हुआ मल्हारभट्टजी ? बीमार हो गया क्या ?" काक ने बडी शान्ति से मीठी मार मारते हुए कहा "न हो तो मेरा घोडा ले लीजिए।"

"नही, कुछ नही !" मल्हारभट्ट ने जल्दी से और नाराज़ी भरे स्वर में कहा। वह समझ गया कि उसे जान-बूझकर यहाँ रोका गया था। इस बीच जरूर कोई बरगदवाली जगह पहुँच गया होगा। और घोडे के गायब हो जाने की खबर ने तो जैसे आग मे घी का काम किया।

काक समझ गया कि हठीला जाते-जाते अपने हाथ की सफाई दिखाता गया है।

"घोडे को क्या हो गया मल्हारभट्टजी ?"

"कुछ नही।" और मल्हारभट्ट दूसरे ही क्षण वहाँ से अपने साथियो के साथ चला गया। इस अनावश्यक देर से वह झुंझला उठा था और अब उडकर प्याऊ का घेरा डालने के लिए पहुँच जाना चाहता था।

१२ : भाई और बहिन

काकभट्ट का रास्ता अब साफ था। मल्हारभट्ट के जाते ही वह पाटन की ओर चल पडा। इस आशका से कि कही मल्हारभट्ट ने किसी चर को पीछे न लगा दिया हो वह चुपचाप चला जा रहा था। जहाँ से कुमारपाल और हठीला साथ होने को थे वह मोड आ जाए फिर तो वह बादशाह था!

आखिर वह मोड भी आ गया। दो घुडसवार चुपचाप उसके अश्वारोहियों मे सम्मिलित हो गए। उसने देखा और समझ गया। अब उसकी खुशी का क्या पूछना! अपने घोडे की चाल को क्रमश धीमा करते हुए वह पिछले सवारो मे हठीले के साथ हो गया। यहाँ उसे दूसरे घुडसवार की एक झलक देखने का मौका मिला। उसने सन्तोष की साँस ली। वह कुमारपाल ही था। काक कई बरसो के बाद देख रहा था, फिर भी पहली ही निगाह में पहचान गया। चेहरा कुछ उतरा

हुआ था, परन्तु आँखो का तेज और पुतलियो की चचलता कई गुना वढ गई थी। शरीर उतना ही कमा हुआ और मजबूत मानो फौलाद का वना हो। इधर के अज्ञातवास की विपत्तियो के कारण वह वहुत चौकन्ना और फुर्तीला हो गया था।

अव तो सिर्फ दरवाजे पर रोके-टोके जाने का अन्देशा था। यो कहने को वह कह सकता था कि तुरगाध्यक्ष की आज्ञा मे वाहर गए थे और तव शायद रोकने की किसी की हिम्मत ही न हो। लेकिन असल डर मल्हारभट्ट का था। यदि उसने खवर कर दी हो तव तो द्वारपाल जरूर रोकेंगे और थोडी असुविधा हो जाएगी। दूसरे ही क्षण उसने इस परिस्थिति का सामना करने का भी निश्चय कर लिया। यदि द्वारपाल ने रोक-टोक की तो पाँच-दस घुडसवार मिलकर उसे दवोच लेंगे और वाकी सव सही-सलामत निकल जाएँगे।

लेकिन रास्ते में किसी ने रोका-टोका नही। मल्हारभट्ट इतनी जल्दी मे था कि किसी से कुछ कह नही पाया था। एक-आध जगह चौकीदारो ने पूछा भी तो यह कहकर कि "कृष्णदेवजी ने भेजा था, जाकर उन्ही से पूछो" वे आगे वढ गए।

लेकिन म्याऊँ का असली ठौर तो नगर का प्रवेशद्वार था। वहाँ से सही-सलामत निकल जाएँ तो गगा नहाए। यह पहले ही तय कर लिया गया था कि फाटक में से निकल जाने के वाद सव विखर जाएँगे और अलग-अलग और अकेले-अकेले चलेंगे।

दरवाजा दिखाई देने लगा।

त्रिलोचनपाल वही खडा था। काक ने देखा तो पाँव तले की जमीन खिसक गई। मारे गए! यहाँ तो यह दुष्ट खुद खडा है!

लेकिन तभी कृष्णदेव पर नजर पडी। काक के जी-में-जी आया। तुरगाध्यक्ष ने अवश्य त्रिलोचनपाल से कह दिया है तभी तो कोई रोक-टोक नही हुई। एक-एक कर सभी घुडसवार फाटक में प्रवेश करने लगे। जव काकभट्ट की वारी आई तो कृष्णदेव ने उससे कहा : "सुनो काकभट्ट!"

काक घोडे की वाग खीचकर खडा हो गया।

दूसरे घुडसवार निकलते जा रहे थे। कृष्णदेव ने काक को सम्भवत इसलिए रोका था कि प्रहरियो में से किसी का ध्यान अन्य घुडसवारो की ओर जाने न पाए। काक को यह डर तो था ही कि कही कुमारपाल पहचान न लिया जाए।

तभी कृष्णदेव ने पूछा "क्यो काकभट्टजी, विक्रमसिंह के आदमी की वात सच निकली या झूठ ?"

काक समझ गया कि कुछ समय वातो मे विताना होगा। बोला "खडहर में तो कोई मिला नही प्रभु! लेकिन परमारराज की वात भी झूठ नही हो सकती। प्याऊ में किसी के छिपे होने की पूरी सम्भावना है।"

"फिर तुम वहाँ क्यो नही गए ?"

"मल्हारभट्ट गए ही हैं इसलिए मैं लौट आया। कह रहे थे कि उन्हें त्रिलोचनपालजी ने भेजा है। दो-दो भट्ट जाकर करते भी क्या ?"

"यह भी ठीक है! त्रिलोचनपालजी, सुन लिया आपने ? जो वात थी वह सामने आ गई। हम हैं महाराज जयदेव अवन्तीनाथ के स्वामिभक्त सेवक। उनके अन्तिम आदेश को सुनने का सौभाग्य हमें मिला है। क्या आदेश था उनका इसे हमारे सिवाय और कोई नही जानता। फिर भी इतना मैं आपसे कहे रखता हूँ कि जिस दिन भी कुमारपाल देखा गया उसकी सूचना देनेवाला मैं पहला आदमी हूँगा। सुन लिया आपने ? इनमें तो वह आपको दीखा नही न ? कम-से-कम हम पर तो आपको सन्देह नही करना चाहिए. . हद हो गई. " कृष्णदेव का स्वर कुछ तीखा हो गया था।

काक समझ गया कि यह त्रिलोचनपाल के ध्यान को वटाने की ही एक तरकीव है। लेकिन त्रिलोचनपाल भी अपने काम में मुस्तैद था। एक घुडसवार को देखकर उसे कुछ सन्देह, कुछ आश्चर्य और कुछ व्यग्रता भी हुई। ठीक तभी काक ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए कहा "हम पचास आदमी गए थे, इस आशा मे कि कोई हाथ लगेगा. ."

लेकिन त्रिलोचन ने जैसे सुना ही नही। उसे तो कृष्णदेव की वात शूल की तरह खटक गई थी। वह वोला . "तुरगाध्यक्षजी, इसमे हमारा क्या दोष! हम तो अपने स्वामी के आज्ञापालक सेवक हैं।"

"हाँ, यह भी ठीक है! लेकिन अव तो आपको इत्मीनान हो गया न ? ये पचास आदमी गए थे, पचास ही लौटे है या इक्यावन ?"

"जी, लौटे तो पचास ही है।"

"चलिए किस्सा खत्म हुआ! मैंने पचास घुडसवार वाहर भेजे थे और

पचासो लौट आए—न एक कम और न एक ज्यादा। परमारराज ने कहा था इसलिए हमने जाँच-पडताल करवाना जरूरी समझा। हमने अपने कर्त्तव्य का पालन किया और आपने अपने। अच्छा, काकभट्टजी, फिर क्या हुआ? कोई मिला या वहाँ कोई था ही नही?" कृष्णदेव अभी भी त्रिलोचन का ध्यान वटाये रखना चाहता था।

"जी नही, वहाँ तो कोई नही मिला। लेकिन प्याऊमें कोई अवश्य होना चाहिए।"

"वहाँ तो मल्हारभट्ट गए हैं न? वे भी अब लौटते ही होगे। उनकी जो भी खवर हो, दुर्गाध्यक्षजी, हमें अवश्य वताएइगा। और हाँ, इस वात को गाँठ वाँध लीजिए कि पहाड भले ही डिग जाए यह कृष्णदेव कभी " और वह अपनी वात को समाप्त किए विना ही वहाँ से चल दिया।

वे चले गए, और त्रिलोचनपाल उनको देखता रहा जब तक वे आँखो से ओझल नही हो गए।

यह सूचना तो पहलें ही दे दी गई थी कि प्रवेश हो जाने के वाद सव अलग-अलग रास्तो पर हो जाएँ—सव के साथ चलने पर अधिकारियो को सन्देह हो सकता था। सभी सैनिको ने चुपचाप इस आदेश का पालन किया और सव कोई अलग-अलग हो गए। काक भी कृष्णदेव से नीलमभवन में मिलने का कहकर आगे वढ गया। उसने देखा तो कुमारपाल हठीले के साथ चला जा रहा था। उनके आगे-आगे कृष्णदेव का खास आदमी तेजदेव था। काक समझ गया कि तेजदेव कुमारपाल को रास्ता दिखलाने के लिए आगे-आगे चल रहा है।

लेकिन तेजदेव नीलभवन की ओर नही मुडा। वह सीधा कृष्णदेव के महल की ओर चलता चला गया। काक ने सोचा, शायद उसे यही सूचना दी गई है। जव वह स्वय नीलभवन के पास से गुजरा तो उसने सिर उठाकर ऊपर की ओर देखा। सतमजले पर अव भी दीपिकाओ का प्रकाश जगमगा रहा था। काक समझ गया कि उन लोगों के लौट आने की व्यग्रता से प्रतीक्षा की जा रही है। यदि तुरगाध्यक्ष ठीक समय पर फाटक पर पहुँच न जाते तो उन लोगो का अन्दर प्रवेश करना मुश्किल हो जाता। काक अपने पराक्रम में किसी की सहायता लेने का अभ्यस्त नही था। इस विचार ने उसे खिन्न कर दिया।

कृष्णदेव के महल के पास एक छोटा-सा मकान था। तेजदेव कुमारपाल को उसके अन्दर ले गया। काक भी वहीं चला गया। कुमारपाल को सारे दिन पेड़ की कोटर में सिमट-सिकुडकर बैठना पड़ा था। उसके हाथ-पांव अकड गए थे। इसलिए मकान के अन्दर पहुँचते ही वह एक खटिया पर हाथ-पांव फैलाकर लेट गया। दो क्षण आँखें मूंदे वह मन-ही-मन सोचने लगा कि इसका परिणाम क्या होगा! उसे वौसरि के वारे में भी चिन्ता होने लगी थी। कही वह पकड तो नही गया, और पकडे जाकर अगर उसने हिम्मत हार दी तव तो सव किये-कराये पर पानी फिर जाएगा। यहाँ आकर भी वह अपने-आपको सुरक्षित नही समझ रहा था। लेकिन वौसरि कच्चा आदमी नही था। निरे फौलाद का वना था वह। कुमारपाल अनेक वार अनेक तरह से उसकी परीक्षा ले चुका था।

काक ने वहाँ पहुँचकर उसे प्रणाम किया और जोर से वोला "महाराज! मैं हूँ काकभट्ट।"

"काकभट्ट! आप हैं? जरा समीप आ जाइए।" उसने आँखे खोले विना ही कहा "वताइए, यहाँ के क्या समाचार हैं? लाइए अपना हाथ मेरे हाथ में दीजिए। हाथो के स्पर्श से जरा हम पुराने परिचय को ताजा कर ले। वौसरि का मै ऋणि हूँ। उसके वलिदान ने पूरी तरह मन जीत लिया है। अगर उसके अहसानो का वदला न चुका सका तो क्या होगा?"

"शिव-शिव! कैसी वात करते हैं आप? यहाँ तो सभी कुछ आपके अनुकूल है! देखा नही आपने कि कितनी सरलता से हमे नगर में आने की अनुमति मिल गई।"

"हाँ, मिल तो गई। आश्चर्य होता है कि ऐसा कैसे हुआ?"

"वात यह है कि हमने पहले से खवर फैला दी थी कि कृष्णदेवजी के आदेश पर विक्रमसिंह के किसी आदमी की तलाश में वाहर जा रहे हैं। तुरगाध्यक्षजी ने भी द्वार पर ठीक यही वात कही। उसके वाद रोक-टोक होती ही कैसे!"

"लेकिन सन्देह तो किया ही जा सकता था। और सन्देह तो तुरगाध्यक्षजी पर भी किया जा सकता है।"

"जी नही! उन पर कोई सन्देह नही कर सकता।" फिर कुमारपाल के कान में मुँह लगाकर उसने आगे कहा. "कृष्णदेवजी सन्देह से परे है। उनकी

राजभक्ति अविचलित है। अन्तिम इच्छा सुननेवालो में उनका स्थान सर्वोच्च और महत्त्वपूर्ण है। फिर वे जबर्दस्त की लाठी भी हैं और सन्देह करनेवालो से निपटना भी जानते है। परन्तु इतना सब होते हुए भी आपको यहाँ छिपकर रहना होगा। शायद इसी लिए कमरे में अँधेरा रखा गया है।"

"जी हाँ, बात तो यही है।" जवाब देनेवाला तेजदेव था। उसने वहाँ आकर कहा "प्रभु, स्वामिनी आ रही हैं।"

कुमारपाल फौरन उठ बैठा। सिर पर उसने पगडी लपेट ली। अँधेरे में उसे अपनी बहिन प्रेमल का आंसू भीगा स्वर सुनाई दिया "भैया! मेरे प्यारे भैया!" प्रेमल की वाणी रुद्ध हो गई। आँखो से आंसुओ की धारा बहने लगी। वह खाट की पाटी पकडकर बैठ गई। कुमारपाल उसके आँसू पोछने लगा। थोड़ी देर मौन रहा।

"भाई! भैया!" हिचकियो के बीच सुनाई दिया।

"बहिन! मेरी बहिन, प्रेमल! देवल के क्या समाचार है? मै तुम लोगो की कोई भी मदद ."

"महाराज!" काक ने अत्यन्त धीमी आवाज मे कहा "अभी तो हमे हर क्षण सतर्क रहना होगा। तेजदेव वहाँ, महल के छोर पर चुपचाप खडा है। यह केवल इसी बात का सूचक है कि हम हर क्षण सतर्क रहें। मै फिर सेवा में उपस्थित हूँगा। अभी तो जाता हूँ। डरने की कोई बात नही है, लेकिन सतर्क तो हमें रहना ही चाहिए।"

और वह दोनो भाई-बहिन को वही छोडकर नीलभवन की ओर चला गया।

कुमारपाल के मन में इस समय विचारो का अन्धड चल रहा था। पिछले पचास बरसो में उसे एक दिन भी सुख नही मिला था। काश्मीर से ठेठ कन्या-कुमारी तक उसे सात-सात बार पैदल चक्कर लगाना पडा था। सारे भारत की खाक उसने छान डाली थी। बुरे हालो दिन बिताने पडे थे—कभी चने चाबकर और कभी सत्तू घोलकर और कभी केवल पानी पीकर रह जाना पडा था। लेकिन पाटन के जैसा ऐश्वर्य उसे अन्यत्र कहीं दिखाई नही दिया था। कोल्हापुर, कांची, कान्तिनगरी, काश्मीर, कोलम्बपुर—सब पाटन के आगे फीके थे। गुजरात

के-जैसी तेजस्विता और गौरव कही भी नही था। महाराज जयसिंहदेव उससे अप्रसन्न थे तो क्या, टेढ़ी निगाहो से देखते थे तो भी क्या हुआ ! वास्तव मे वे गुर्जरेश्वर नही, भारतेश्वर थे। कुमारपाल के मन मे एक क्षण के लिए यह विचार कौंध गया कि उनके छोडे अखण्ड गुजरात को यदि मै अखण्ड रख सका तो अपने को भाग्यशाली मानूंगा। पारस्परिक शत्रुता होते हुए भी कुमारपाल ने सदैव जयसिंहदेव महाराज की वीरता को सराहा और सम्मानित किया था। भारत-भ्रमण ने उसे इस तथ्य को हृदयगम करवा दिया था कि स्वर्ग केवल दो जगहो पर था—एक आकाश में और दूसरा सरस्वती नदी मे विहार करनेवाली नौकाओ मे। चाँदनी रात में सरस्वती के बजरो में विहार करनेवाली सुन्दरी, कोमल-अगिनी और स्वाभिमानिनी गुजरातिनो के आगे तो काश्मीर के पाटल प्रसून भी फीके पड जाते थे। वे अपने कण्ठो में लाख-लाख द्रम्म मूल्य की मौक्तिक मालाएँ पहने होती थी, जो उनकी समृद्धि, सामर्थ्य और सयम की घोषणा किया करती। महाराज जयसिंहदेव अपने पीछे ऐसा गुजरात छोड गए थे। ऐसे गौरवशाली गुजरात की कल्पना मे कुमारपाल क्षण-भर के लिए सब-कुछ भूल जाना चाहता था। लेकिन किसी भी मनुष्य के लिए दु ख को भुलाना बडा ही कठिन होता है। और कुमारपाल अब तक के जीवन में इतना कष्ट उठा चुका था कि सौभाग्य को सामने खडा पाकर भी उस पर विश्वास करने को उसका जी नही होता था। मन में यह आशका समाई हुई थी कि पता नही इसका क्या परिणाम होगा—कौन जाने जीवन की यह जर्जर नौका किस घाट लगेगी ? इतनी निराशाओ और विपदाओ के बाद भी केवल इसलिए जूझता जा रहा था कि जूझना अब उसका धर्म बन गया था। उसका वज्र-सकल्प उसे हर क्षण अनुप्राणित करता रहता था—दु ख के आगे हार न मानने का उसका सकल्प उसे टिकाये हुए थे।

और भाग्य की विडम्बना तो देखो कि अँधेरे में बिलकुल निस्सहाय अपनी दुखियारी बहिन के सामने बैठा हुआ है। एक छोड दो-दो बहिनें है और दोनो ही दु खिता। भाई वीरो में श्रेष्ठ, पर उनके किसी काम का नही—न कोई सहायता कर सका, न कभी कुछ दे सका। प्रेमल और देवल, दोनो ही दु खी है। जिस कृष्णदेव ने प्राणो से भी प्यारी बहिन प्रेमल का जीवन नर्क बना रखा है उसी कृष्ण-देव के सहारे चोर की तरह छिपकर यहाँ आना और उसी के संरक्षण में रहना

पड रहा है ! कुमारपाल के मन मे विचारो का अन्धड हहराने लगा । बरसो बाद वहिन से मिलने का अवसर आया तो वह भी घुप्प अँधेरे मे, चोर-अपराधी की तरह मिलना हो रहा है । प्रकाश के नाम पर एक टिमटिमाता हुआ दीया भी नही । और चले है राज्य लेने ! कुमारपाल का कलेजा मसोस उठा । किसी तरह मन पर कावू किया और बोला

"प्रेमल दे ! मैंने जो सुना क्या वह सच है ?"

"क्या सुना है भैया, तुमने ?"

"यही कि कृष्णदेवजी ने तुझे दु.ख-ही-दु ख दिया और अब भी दे रहे हैं । देखना, झूठ मत बोलना ! जो भी हो सच वताना । मुँह तो तेरा देखे नहीं सकता, झूठ बोलकर मेरा मन वहलाने की कोशिश मत करना ।"

प्रेमल अपने भाई के आशय को तुरत समझ गई । दु ख सहते-सहते वह वहुत समझदार हो गई थी । अपने नारी-हृदय की वेदना कहने-सुनने और आश्वासन पाने का यह समय नही था । वह धीरे से हँसी एक वेदना-भरी हँसी, और बोली "भैया, तुम भी यह क्या किस्सा ले बैठे ! मुझे तो कोई दु ख नही है । भोजराज-जैसा जिसका वेटा हो उस माँ को दु ख ही किस वात का ! भोज कही वाहर गया है, तुम देखो तो आँखें जुडा जाएँ "

"देख वहिन, गुजरात का राज्य न मिले, कोई परवाह नही ।" कुमारपाल ने व्यथित स्वर में कहा "तेरे आसुओ पर मुझे राज्य नही चाहिए । मेरी प्रेमल वहिन को दु ख देनेवाला चाहे मेरा सगा वहनोई भी क्यो न हो मैं उसे जीता नही छोड़ूंगा । जो आदमी सात वार भारत की धरती नाप चुका है वह आठवी वार भी देश-देशान्तरो की खाक छान लेगा, लेकिन तेरे आँसुओ पर उससे राज्यकी इमारत खडी न की जा सकेगी यह मेरी अटल प्रतिज्ञा है । मैं आज यहाँ चला तो आया हूँ, पर तेरे दु ख की वात मेरे कलेजे में शूल की तरह चुभ रही है ।"

मेरी वहिन की छाती पर सौत सवार है और वह बरसो से इस कष्ट को चुप-चाप सह रही है इस विचार-मात्र से कुमारपाल के तन-वदन मे आग लग गई और वह उठकर खडा हो गया ।

प्रेमलदेवी ने स्नेह से उनका हाथ पकडकर फिर विठा दिया और मधुर, कोमल स्वर में बोली "भैया, अभी तो तुम चले ही आ रहे हो । न तुमने कुछ देखा,

न जाना और ”

“देखा-जाना तो नही, पर सुना जरुर है । और वरावर सुनता रहा हूँ । मैं इतना लोभी और पामर नही हूँ प्रेमल, कि तुझे दु ख देनेवाले की मदद से पाटन के सिंहासन पर वैठूँ ।”

प्रेमल डरी कि कही कुमारपाल जमी-जमाई वाजी को विखेर न दे ! उसको शान्त करने के लिए उसने चतुराई से प्रसग वदलते हुए कहा “इन दिनो इस नगर का हाल कुछ कहते नही वनता । यहाँ एक से एक विघ्न-सन्तोपी वैठे हुए हैं जो तुम्हे तुरगाध्यक्षजी से लडाकर अपना मतलव गाँठना चाहते हैं । अकेले कचन-देवी ने ही अपने सैकडो आदमी छोड रखे हैं, जो सोमेश्वर को गादी पर लाने के लिए जी तोड कोशिश कर रहे हैं !”

“तुम कहना यह चाहती हो कि तुम्हें कोई दु ख नही है ! तुम और देवल दु खी रहो तो मेरे जीवन को धिक्कार है ! मेरे लिए तुम दोनो पहले हो, राज्य वाद मे ! मेरा पहला कर्त्तव्य है तुम्हारे दु ख को मेटना, राज्य मै वाद मे हासिल कर लूँगा. अभी भी मेरे इस शरीर में इतनी शक्ति तो है ही कि इसमे मन चाहा काम ले सकूँ ।”

“भैया, मेरे-जैसी सुखी तो इस दुनिया में शायद ही कोई और हो ।” प्रेमल ने वेदना की कडवी घूँट पीकर कहा “मेरे लक्ष्मण-जैसा एक वेटा है, इतना विशाल महल है, मोढेरक का राज्य है, पाटन की तुरग सेना है, खामी केवल एक वात की रह गई है !”

“किस वात की ?”

“मेरा भाई राजा नहीं ।”

कहते-कहते प्रेमल की आँखो से आँसू वह चले । वे आँसू दु ख के थे, वेदना के थे और थे आनन्द के । उन आँसुओं में क्या नही था ! भ्रातृ-प्रेम में वह विभोर हो गई । अपने भाई को वह जानती थी । वहिनो के प्रति कुमारपाल इतना स्नेहिल और कोमल था कि गुजरात के मिलनेवाले राज्य को ठोकर मारकर तुरगाध्यक्ष कृष्णदेव से दो-दो हाथ करने को आमादा हो जाता । प्रेमल ने इस समय अपने दु ख-कष्टो के वारे में चुप रह जाना ही उचित समझा ।

तभी तेजदेव वहाँ भागा आया ।

दोनो भाई-बहिन चुप हो गए ।

"प्रभो ! तुरगाध्यक्षजी पधार रहे है ।"

"लो, खुद ही चले आ रहे है ! यहाँ हम सब आँखो में तेल डाले तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे थे । रोज मुझसे पूछते थे—हाँ-हाँ, तुम्हारे बारे में पूछते थे कि कब आ रहे है ?"

प्रेमलदेवी जाने के लिए उठ खडी हुई "भैया, अब मैं जाती हूँ । फिर आऊँगी । वे तुमसे मत्रणा करने आ रहे हैं । इस समय तो हर क्षण मूल्यवान है । शायद उदयन मेहता भी साथ में होगे ।"

१३ : प्रतापमल्ल कृष्णदेव

कृष्णदेव वहाँ आया । वह निश्चय करके ही आया था कि राज्य कुमारपाल का, पर सत्ता मेरे अपने हाथ में रहेगी । मैं उसे सिहासन पर बिठा रहा हूँ, यदि उसने जरा भी चूँ-चपड की या विरोध किया तो उखाड फेंकूंगा । इस समय वह अपने-आपको चक्रवर्तियो का भी चक्रवर्ती समझकर गर्वोन्नत हो रहा था । इस स्थिति मे उदयन ने जरा चतुराई से काम लिया । सोचा, अभी तो इस मूर्ख की हाँ-में-हाँ मिलाकर काम बना लेना चाहिए, बाद में आने-पाई से सारा हिसाब समझ लिया जाएगा । आज वह भी किसी निर्णय पर पहुँच जाना चाहता था । इसलिए कुमारपाल से मिलने के लिए कृष्णदेव के साथ ही वहाँ आया था । परन्तु एकदम सीधे मिलने के लिए नही चला आया । कदम धीमे कर थोडा पिछड गया । चाहता था कि पहले साले-बहनोई आपस में मिल-भेंट लें तब चलूं ।

कृष्णदेव को आते देख कुमारपाल उठकर खड़ा हो गया । हाथ फैलाकर दोनो गले मिले ।

"इस बार तो बहुत दिनो पर भेंट हुई कुमारपालजी ! हमने तो आशा ही

छोड़ दी थी। यह खवर आपने कहाँ सुनी ?"

"उस समय मैं मालवा में था।"

"अच्छा ? तो वहाँ से आये और प्याऊवाली जगह में मुकाम किया ? हमे सूचना तो भेजी होती ! वहाँ किसी ने देखा-पहचाना तो नही ? परमार धारा-वर्ष ने जो कुछ वनाया वह उनका अनुमान ही होना चाहिए। पहचान तो वे पाये न होंगे। क्यो, ठीक है न ?"

"जी हाँ, ठीक है। मैं भी उन्हें पहचान न सका। वौसरि क्या हुआ ? कुछ पता चला उसके वारे में ?"

"अव चल जाएगा। लेकिन आदमी कैसा है ? भरोसे का तो है न ? आपने ठीक से परख लिया था ? कही भाँडा फोड न दे !"

"जी नही, वौसरि ऐसा नही है। तीन-तीन वार मेरे साथ सारा भारत घूम चुका है। और खुद मैंने सात परिक्रमाएँ कर डाली।"

"देश-देशान्तरो की खाक छानना अलग वात है, कुमारपालजी, और सत्ता पर अधिकार करना विलकुल अलग। खाक तो सभी छान सकते है, परन्तु राज्य-परिवर्तन के अवसर का अपने हित में सदुपयोग कर सिंहासनासीन होना सव के वस का नहीं होता। विरले ही उस क्षण का सही उपयोग कर सकते है। एक जरा-सी गलती वरसो के किए-कराए पर पानी फेर देगी और आप केवल मुंह टापते रह जाएँगे।" कृष्णदेव के एक-एक शव्द मे अपनी महत्ता का अहकार वोल रहा था। वह जैसे भी वने कुमारपाल को अपने महत्त्व और अधिकार का भान करा देना चाहता था, इसलिए आगे वोला "आप हमारे सम्वन्धी होते हैं कुमारपालजी !" इस वीच दोनो ही खाट पर वैठ चुके थे। कृष्णदेव ने अपनी वात जारी रखते हुए कहा "आये हैं तो हमारे सिर-माथे पर, लेकिन अगर लोगो को यह वात मालूम हो गई कि मैंने आपको आश्रय दिया है तो समझ लीजिए कि मेरी कीमत कानी कौडी के वरावर भी नही रह जाएगी। और जहाँ मेरी वदनामी हुई कि आपके भाग्य में केवल भटकना रह जायगा। फिर तो महाराज जयदेव के पादुका-राज को कोई ताकत हटा न सकेगी। यहाँ की परिस्थिति सक्षेप में यह है कुमारपालजी। यो समझ लीजिए कि मैं आपका हूँ और नही भी हूँ। यहाँ की स्थिति सतत परिवर्तनशील और वडी विचित्र है। यहाँ आपको,

मुझे और हमारे पक्ष के सभी लोगो को बहुत सतर्क और सावधान रहना होगा। वैसे तो मैं हूँ ही, इसलिए चिन्ता-बाधा की कोई बात नही है । अन्त में जीत हमारी ही होगी। लेकिन यह भी सच है कि हमारे पक्ष का कोई भी व्यक्ति गलती करे उसका परिणाम सब से पहले मुझी को भुगतना पडेगा। इसी लिए स्वय मुझे तो हर समय सावधान रहना पडता है और एक-एक कदम फूंक-फूंककर रखना पडता है। जवाबदारी जितनी ज्यादा कष्ट भी उतना ही अधिक। खैर होगा, आपकी भेंट अपनी बहिन से हुई या नही ?"

कुमारपाल ने कृष्णदेव की इन गर्वोक्तियो को सुना तो सोच-विचार मे पड गए। इस क्षुद्र व्यक्ति की सहायता से सिहासनासीन होने की अपेक्षा तो जगल में मारे-मारे फिरना कही श्रेयस्कर है! इस घमण्डी मे तो मूक पेड ही अच्छे। जब चाहो अपनी छाँह में आश्रय देते हैं और अनुग्रह का एक शब्द तक नही कहते। चार शब्दो के बाद अहसान का मनो बोझ लादे चला जा रहा है! हर क्षण अपने अहकार की पुष्टि और सन्तुष्टि चाहता है ।

लेकिन प्रश्न का जवाब तो देना ही था, इसलिए उन्होने कहा "जी हाँ ! प्रेमल आई थी। भेंट हो गई। कितना अभागा हूँ कि न प्रेमल और न देवल की ही आज तक कोई सेवा-सहायता कर सका। बहुत बुरा लगता है, लेकिन "

"अब दिल खोलकर जो करना हो कीजिए—ऐसी भी क्या बात है!"

"जी हाँ-जी हाँ! लेकिन उदयन मेहता कहाँ है ? मैं उनसे भी मिलना चाहता था।"

"अवश्य भेंट हो जाएगी। मेरे पीछे-पीछे ही तो चले आ रहे थे। लेकिन कुमारपालजी, अब जमाना बहुत बदल गया है। मालवावाले वे दिन रहे ही नही। अब उदयन मेहता भी कुछ नही कर सकते। सच तो यह है कि कोई कुछ नही कर सकता। यहाँ तक कि महामात्य के भी हाथ में कुछ नही है। वे चाहें तो भी एक सलाई इधर से उधर नही रख सकते। सिहासन पर महाराज जयसिहदेव की पादुकाएँ प्रतिष्ठित हैं और उनकी रक्षा के लिए सैंकडो नही हजारो सैनिक हथियार बांधे तैयार खडे हैं। महाराज के अन्तिम शब्द और उनकी अन्तिम इच्छा सिर्फ हमारे पास है। दूसरे किसी को यह सौभाग्य मिला ही नही। इसलिए देश के समस्त रणकुशल सामन्तो, सैनिको, रावराणाओ और योद्धाओ का हम पर

विश्वास है। वे सब जीवन-भर महाराज के आज्ञाकारी रहे हैं। इसलिए आज हम उनके विश्वास को भुना सकते हैं और अवश्य भुनाएँगे। जो बात थी वह मैंने सार रूप में कह दी. . अब बुद्धि अगर आप में हुई मेरा मतलब है कि मेरी बताई बुद्धि, तो ." कृष्णदेव इस तरह बात कर रहा था मानो राजा को बनाना-बिगाडना उसके बाएँ हाथ का खेल हो

इस बकवास को सुनते-सुनते कुमारपाल का धीरज छूट चला और गुस्सा आने लगा। वह कोई कडी, कडवी और तीखी बात कहकर अपने बहनोई का मुँह बन्द करने जा ही रहा था कि पीछे से किसी ने उसके कन्धे पर अपना हाथ रख दिया। वह चौंक उठा और देखने के लिए मुडा ही था कि "महाराज ! मैं हूँ उदयन मेहता। प्रणाम करने के लिए आया हूँ। इस बार तो बहुत दिनो मे दर्शन हो रहे हैं।" यह कहता हुआ उदयन मंत्री उसकी बगल में आ खडा हुआ।

उदयन ने कृष्णदेव के अन्तिम शब्दो को सुन लिया था। बात उसकी बहुत ही दम्भ-भरी और उद्धत ढग से कही गई थी। कुमारपाल के क्रोध और अधैर्य को भी उसने लक्ष्य किया था। समझ गया कि यदि साले अथवा बहनोई मे से किसी ने भी अब एक भी शब्द कहा तो तलवारें खिच जाएँगी। इसलिए उसने फौरन कुमारपाल के कन्धे पर हाथ रखकर अपने आगमन की सूचना दे दी और तब आगे बोला "प्रभो ! कृष्णदेवजी ने जो कुछ कहा है वह निश्चय ही विचारणीय है। हम और सारा देश आज एक भयकर सकट में से गुजर रहे हैं। कृष्णदेवजी, हम लोग महाराज की राह देख रहे थे, महाराज पधार गए हैं, लेकिन आपके बिना तो हम एक कदम भी नही उठा सकते। अब बताइए कि क्या करना होगा ? जल्दी निर्णय कीजिए।" उदयन सीधे मूल विषय पर आ गया।

"पहले यह तो पता चले कि बौसरि का क्या हुआ ? उसने भेद तो नही खोल दिया ? उसके बाद ही निश्चिन्त होकर सोचा-विचारा जा सकेगा। अगर यह बात फूट गई कि कुमारपालजी यहाँ हैं तो समझ लो कि मुझ पर आसमान ही फट पडेगा। ये मेरे सम्बन्धी हैं, मेरे अपने हैं, इन्हें गादी पर बिठाना मैं चाहता भी हूँ, लेकिन अपने हाथ-पाँव बचाकर। आपका क्या कहना है ?"

"वही जो आपका कहना है।" उदयन ने उसकी मगरूरी को देखकर भी नही देखा और बोला "बौसरि के व्यवहार के बारे में पता चलने के बाद ही तय

किया जा सकेगा कि ”

“वौसरि पकडा गया, लेकिन वह निरा भिखारी—मांगने-खानेवाला निकला ।” तेजदेव किसी काम से इधर आ रहा था, उसने वौसरि का उल्लेख होते सुना तो वता दिया और आगे वोला “प्रभो ! स्वामिनी प्रेमलदेवी आपको याद कर रही हैं ।”

“अच्छा मैं अभी आया । उदयन मेहता, आप तव तक चर्चा कीजिए ।”

जव कृष्णदेव चला गया तो कुमारपाल ने उदयन से पूछा : “मेहताजी, यह सव क्या है ?”

“प्रभो ! स्तम्भतीर्थ मे मैंने जो-कुछ कहा था, वह आपको याद है ?”

“हाँ, याद है ।” कुमारपाल ने जवाव दिया ।

“तो समझ लीजिए कि वही यह समय है । कुछ दिन हमे इस आदमी को भी निभा लेना होगा ।”

“इसे या इसके अहकार को ?”

“महाराज, दोनो को ही । यह और इसका अहकार अन्योन्याश्रित हैं । अपने अहकार के कारण यह है और यह है तो अहकार है । रहे इसका अहकार ! हमारा उससे क्या विगडता है ? इसके कारण अभी हम निश्चिन्त हैं और अपना भविष्य वना सकते है । सकट तव होता है जव आदमी में शक्ति तो हो पर अहकार न हो । यह अपने अहंकार के ही कारण उपयोगी है ।”

“लेकिन मेरी वहिन प्रेमल को इसने कितना दुखी कर रखा है—आपने भी सुना तो होगा ही । क्या वह सुखी है ?”

“सुनिए महाराज ! अनेक ऐसे अवसर आते है जव मैं सुनकर भी किसी वात को नही सुनता, कई वार समझकर भी नासमझ वना रहता हूँ, कई वार जानकर भी नही जानता और अनेक वार देखकर भी अनदेखा करता हूँ । इस समय मैं इन सव वातो पर एक साथ आचरण कर रहा हूँ । और आपसे मेरा यही निवेदन है कि इसे कुछ समय के लिए निभा लिया जाए ।”

“नही मेहताजी, इस मूर्ख और अहकारी के सहारे तो मै कुछ भी पाना नही चाहूँगा ।”

उदयन कुमारपाल की मन स्थिति को समझ रहा था । कृष्णदेव के शब्दो

में व्यंग्य और वक्रोक्तियों की जो धार थी, सामनेवाले को हीन बनाने की जो दुष्प्रवृत्ति थी, आत्मश्लाघा का जो हलाहल विष उसके शब्द-शब्द में भिदा था उसे उदयन भी सुन चुका था। लेकिन कुमारपाल के क्रोध को शान्त करना भी नितान्त आवश्यक था।

उसने अतीव स्नेह से कुमारपाल के कन्धे पर अपना हाथ रख दिया और बोला· "महाराज, यह समय रोष और आक्रोश का नही, काम बनाने का है। एक-एक पल की हमारे लिए कीमत है। हमें आज और अभी फैसला करना होगा और तुरत उस फैसले पर अमल भी। इस समय कृष्णदेवजी से हम बिगाड नही कर सकते। उन्हें साथ रखना और अपनी योजनाओ में अन्तरग बनाये रखना बहुत आवश्यक है। यदि ये बिगड बैठे तो सब चौपट हो जाएगा। अभी तो इन्हें बर्दाश्त करना ही होगा।"

"लेकिन मैंने तो फैसला कर भी लिया है।" कुमारपाल ने दृढ वाणी में कहा।

"क्या ?"

"यही कि इस घमण्डी के टुकडे उडा दूं और आठवी बार भारतवर्ष का भ्रमण करने के लिए निकल जाऊँ! इसकी अधीनता और ऐसे का सहारा! ऐसे घमण्डी का सहयोग! नही, मुझे नही चाहिए!"

"महाराज! क्या आप हमारी किनारे लगी डोगी को ही डुबा देना चाहते हैं? हमारे अब तक के प्रयत्नों का सुफल मिला ही चाहता है। विजय जब कि होने ही वाली है क्या आप उससे पराङमुख हो जाना चाहते हैं? जब-जब देश पर सकट आया उसे बचाने का काम आपके परिवार ने किया है। क्या आज आप उस परम्परा को तोड देंगे? क्षेमराज महाराज को याद कीजिए। सघर्ष को तरह देकर उन्होने देश को बचा लिया। देवप्रसाद ने राज्य के लिए आत्म-बलिदान किया। त्रिभुवनपालजी शक्ति और सामर्थ्य के होते हुए भी महाराज जयदेव के अनुवर्ती बनकर रहे। आज आप इस महती परम्परा को तोड़ नही सकते। समस्या जो भी हो उसे अपने ढग से यानी अपनी पारिवारिक परम्परा के अनुसार ही हल कीजिए। आज प्रश्न देश को बचाने का है। इसी लिए आप यहाँ आये हैं। जो मुख्य प्रश्न है उससे आप विमुख नही हो सकते। हुए तो क्षत्रियत्व कहाँ रह

जाएगा महाराज ? और क्षत्रियत्व ही नही रहा तो फिर क्या बचेगा ? शब्द-चिन्तन अपनी जगह है, शब्दोच्चारण अपनी जगह है, शब्द का कार्यान्वयन अपनी जगह है। कथनी और करनी मे अन्तर तो होता ही है। वह बकता है बकने दीजिए। काम तो वह हमारा ही कर रहा है न ? और करता भी रहेगा। उसके जितना सामर्थ्यवान आज सारे देश में कोई भी नही है। मेरा कहा मानिए और अभी उसे सिर-माथे पर बिठा लीजिए। हमारे लिए वह अपनी जान लडा देगा। बाद में उससे निपट लेगे।"

"लेकिन उसे तो उचित-अनुचित किसी भी बात का ध्यान नही है। सारे ढग ही निराले है।"

"निराले कुछ नही हैं महाराज ! सीधी-सी बात है ! वह अधिकार का भूखा है, सत्ता का लोभी है। मैं कहता हूँ फेंक दीजिए चन्द टुकडे। फिर तो नीचे टुकडो पर ही नजर टिकी रह जाएगी, सिर उठाकर देखना भी भूल जाएगा। अभी लौटकर आता ही होगा। तब तक हमें किसी निर्णय पर पहुँच जाना चाहिए। आप तो जानते ही हैं जैसा वह है। लेकिन काम निकालना है तो बर्दाश्त करना होगा।" इतना कहकर उदयन ने इस बहस को खत्म कर दिया और दूसरा प्रसग छेडते हुए कहा "आप वह दिन तो भूले न होगे जब कान्तिनगर में हमारी भेंट हुई थी ? कई दिन हो गए। निश्चिन्त होकर कभी आपके सारे यात्रा-वर्णन सुनूँगा। अभी तो किसी भी दूसरी बात की ओर ध्यान देने का अवकाश नही है। रस्सी पर सन्तुलन साधकर नाचनेवाले नट-जैसी स्थिति हो रही है। बैठे यहाँ हैं और मन लगा हुआ है कृष्णदेव में। 'महाराज के अन्तिम समय मैं उनके पास था और उनके अन्तिम शब्दो को अकेले मैंने ही सुना है। कोई करे या न करे, मैं तो अवश्य उनके अन्तिम आदेश का पालन करूँगा।' इस तरह की बातें कहकर उसने कइयों का विश्वास सम्पादन कर लिया है। इसलिए अभी तो उसे मिलाये ही रखना होगा। और मिलाये रखने के लिए विशेष कुछ करना नही होगा। उसकी मनचीती दो मीठी-मीठी बाते बोल देने से सारा काम बन जाता हो तो क्यो न बना लिया जाए ! प्रश्न इस समय व्यक्तियो का नही देश का है—सारे देश का ! देश को छिन्न-भिन्न होने से बचाना है। सिंहासन का उतना महत्त्व नही है। वह कही नही जाता। आज न मिला तो कल मिलेगा, पर देश तो कल तक छिन्न-भिन्न

हो जाएगा। खास वात तो देश को वचाना है।"

तभी कृष्णदेव आता दिखाई दिया। उसकी चाल ही वता रही थी कि वह कोई निर्णय कर आया है और दुनिया की कोई ताकत उसे डिगा नही सकती। उदयन भाँप गया। उसने तुरत कुमारपाल का हाथ दवाया, मानो कह रहा था, देखिए, यह हाथ से निकल न जाए !

कृष्णदेव ने आते ही कहा "मेहताजी जरा सुनिए तो "

दोनो एक ओर चले गए। वहाँ कृष्णदेव ने उदयन के कान मे कहा "यह तो महालोभी है मेहता ! इसकी वहिन ने मुझे वताया। वाद मे सव को अँगूठा दिखला दे तो आप-हम क्या कर लेंगे ? अभी कह रहा था कि वहिन को कुछ भी नही दे पाया। तो अभी मौका है, जो चाहे और जितना चाहे दे.. राजा के गादी पर वैठ जाने और कुजड़े के वाजार से उठ जाने पर दोनो से कुछ भी नही पाया जा सकता। इसलिए मैं यह ले आया हूँ " और उसने सोमनाथ के जल की झारी उदयन के हाथो में थमाते हुए कहा "यह है सोमनाथ का पवित्र जल।"

उदयन समझ गया कि कृष्णदेव कच्ची गोलियाँ नही खेलना चाहता। वह कुमारपाल को प्रतिज्ञा मे वाँधे विना एक भी कदम नही उठाएगा। लेकिन इतनी वुद्धि तो इस मूर्ख में है नही। जरूर प्रेमल ने सिखा-पढाकर भेजा है। भाई से मिलते ही उसने ताड लिया होगा कि यदि सत्ता को लेकर खीचतान होती रही तो दोनो लड मरेंगे। इसलिए उसने यह उपाय सोच निकाला है। देने-लेने की वात में दोनो कुछ समय के लिए सत्ता और अधिकार के झगडे को भूल जाएँगे, इस तरह पाँच-सात दिन वीत गए तो वाद में सव ठीक-ठाक हो जाएगा। अभी तक उदयन को प्रेमल पर दया आती रही थी, आज उसके प्रति सम्मान जागृत हुआ।

उसने कृष्णदेव से कहा "कृष्णदेवजी, आपकी सूझ-समझ की तारीफ किये विना नही रह सकता। मैं डर रहा था कि कही आसमान की ओर देखते-देखते आप जमीन को ही न भूल जाएँ। जो वात मैं सुझाने जा रहा था वह आपको अनायास ही सुझाई दे गई। मन्दिर से पहले अपने घर मे दिया जलाना होता है आप उनके वहनोई होते हैं, देना उनका कर्त्तव्य और पाना आपका अधिकार है—

कोई नई बात नही। लेकिन माँगना आपको शोभा नही देता। अनुमति दें तो आपकी ओर से मैं कहूँ, या आप स्वय ही कहना चाहते हैं ?"

"नही, आप ही कहिए।"

"लेकिन मैं कहूँगा क्या यदि आप कुछ बताएँगे नही! जो चाहते हो बता दीजिए तो मैं कह सकूँ।"

कृष्णदेव चुप रहा।

"आप नही बताना चाहते तो लीजिए मैं बताता हूँ। जितना बडा काम आप कर रहे है उसका इसके सिवाय और बदला हो भी क्या सकता है कि 'जो आप-को चाहिए वह महाराज को नही चाहिए।' कहिए, ठीक है न ?"

"ठीक, बिलकुल ठीक, सोलहो आने ठीक!"

"और प्रेमल देवी उनकी बहिन हैं! अपनी बहिन को वे जितना भी धन, सोना, द्रम्म, गाँव, जागीर, मान, मरतबा देना चाहें दें, हमें उससे क्या ?"

"ठीक है, बिलकुल ठीक है!"

"लेकिन कृष्णदेवजी, एक बात है। आपका माँगना उचित नही। मैं कहूँगा आपके लिए और बाद मे आप मेरे लिए ज़ोर लगाइएगा। मेरे भी दो लडके हैं और उनके लिए कुछ करना-कराना पडेगा ही। नई-नई बात है और खुद इनको गरज है इसलिए अभी किसी बात के लिए मना नही करेंगे। क्यो, ठीक है न ?"

कृष्णदेव को बात ठीक लगी। वह तो सिर्फ यह चाहता था कि अधिकार उनके हाथ में बने रहें। बोला "ठीक है, बिलकुल ठीक है।"

"तो मैं कहता हूँ महाराज से!"

कुमारपाल की ओर जाते हुए उदयन की प्रसन्नता का पार न था। चलो, कुछ समय के लिए दोनो का पारस्परिक सघर्ष शान्त हो गया! वैसे बोलते-बति-याते कौन कब खम् ठोकने लगे कुछ कहा नही जा सकता था।

उदयन ने कुमारपाल के समीप जाकर बहुत धीरे से उसके कान मे कहा "महाराज, हम एक महान कार्य करने जा रहे हैं, उसके पहले यह थोडा-सा तमाशा "

"तमाशा ?"

"हाँ प्रभो! तमाशा ही तो है। उसे जो चाहिए दे-दिलाकर अभी तो अपनी

मुट्ठी में कीजिए ” उदयन ने सोमनाथ के जल की झारी सामने करते हुए कहा। “कृष्णदेवजी लाये है इस झारी को। हमे उनके सन्देह का निवारण करना ही होगा ”

“सन्देह ? किस बात का सन्देह ?”

“सन्देह न सही, मन का समाधान कह लीजिए। हमे वचन देना होगा। उनकी सहायता के बदले ”

“बदले क्या ?”

“सिर्फ यह कि जो उन्हें चाहिए वह हमे नही चाहिए।”

“मन्त्रीश्वर !” कुमारपाल ने दृढतापूर्वक कहा . “मैं राज्य का सौदा करने के लिए नही आया हूँ। तलवार के जोर से राज्य लेने आया हूँ और जब तक यह तलवार ” उन्होने तलवार की मूठ पर हाथ रखा।

“महाराज ! तलवार तो मेरे पास भी है और आपके आशीर्वाद से एक छोड तीन-तीन हैं—एक मेरी अपनी, एक आम्रभट्ट की और एक वाग्भट्ट की, और तीनो ही आपकी सेवा मे समर्पित हैं। लेकिन इस समय काम तलवार का नही चतुराई का है। हम एक महान कार्य का शुभारम्भ करने जा रहे है। वह कार्य केवल कृष्णदेवजी के सहयोग से ही सम्पन्न हो सकता है। हमे उनका उपयोग करना है। बस, इतनी-सी बात है। देश अपेक्षा करता है कि हम आज सयम से काम ले। फिर यह भी ध्यान में रखना होगा कि केवल वर्तमान अपना है, भविष्य पता नही, किसका होगा। निर्णय करना आपके अधिकार की बात है, मैं तो केवल सलाह दे सकता हूँ। जल्दी करके ही हम जीत सकते है। सोच-विचार और चर्चा मे खोने के लिए हमारे पास समय ही कहाँ है ?”

“लेकिन वह चाहता क्या है ?”

“भिखारी आखिर चाहेगा भी क्या—सिर्फ दो टुकडे ! दे दीजिए ! मान जाइए और कह दीजिए कि जो तुम्हे चाहिए वह हमे नही चाहिए। छुट्टी हुई। अधिक-से-अधिक मोढेरक के गाँव माँगेगा, सोना माँगेगा, द्रम्म माँगेगा और दो-चार उद्यान माँग लेगा।”

“आपने उसमे क्या कहा है ?”

“यही कह दिया है कि जो तुम्हे चाहिए वह हमे नही चाहिए। मुर्गी आखिर

तो घूरे पर ही मुंह मारेगी महाराज! खानेवाला उतना ही तो खाएगा जितना उसके पेट में समाएगा। फिर डर किस बात का! लम्बा-चौडा माँगने की उसकी औकात नही है।"

कुमारपाल विचारमग्न हो गया। उसे यह सफा सौदेबाजी लग रही थी। एक बार सौदा कर भी ले, लेकिन यह तो मालूम होना चाहिए कि उसे क्या चाहिए! बिना जाने-समझे ही 'जो तुम्हें चाहिए वह हमे नही चाहिए' कह देना तो अपने-आपको मुसीबत मे फँसा लेना था।

उदयन कुमारपाल के असमजस को समझ गया और उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोला "महाराज! कृष्णदेव मे पहले से बहुत परिवर्तन हो गया है। उसकी शक्ति बहुत बढ गई है। अनियन्त्रित सत्ता और अतुल सैन्यबल है उसके हाथ मे—शस्त्र-बल से वह जिसे चाहे स्थापित और जिसे चाहे विस्थापित कर सकता है। यदि हम यह मौका चूक गए तो सच मानिए गुजरात छिन्न-भिन्न हो जाएगा।"

"अच्छी बात है, बुलाइए उसे. " कुमारपाल ने फुर्ती से कहा। उदयन ने धीरे से ताली बजाई। कृष्णदेव के समीप आ जाने पर कुमारपाल ने सोमनाथ-जल हाथ मे लिया और बोले "कृष्णदेवजी, जो आपको चाहिए वह हमे नही चाहिए। ठीक है न? और मेहताजी, मैं प्रेमल को कुछ दे न सका इसलिए अपनी ओर से उसे मोढेरक के तीन गाँव, तीन लाख द्रम्म और तीन उद्यान देता हूँ। आप याद रखिए। और सुनिए, तीन लाख द्रम्म वार्षिक दिये जाएँगे—जीवन-पर्यन्त!"

प्रेमल अँधेरे मे एक ओर खडी सुन रही थी। उसकी आँखें भर आईं और टप-टपकर आँसू बहने लगे। सिर्फ उदयन को छोड और कोई जान न सका कि साले-बहनोई के सत्ता-सघर्ष को टालने में कौन कारण बना है! उसने मन-ही-मन उस दुखियारी नारी को उसकी समय सूचकता और सूझ-बूझ के लिए प्रणाम किया।—बहुत ही समझदार और बडी अद्भुत नारी है!

थोडी देर बाद उदयन और कृष्णदेव वहाँ से चले तो भावी मगल के प्रतीक के रूप में चन्द्रमा उदित हो रहा था।

१४ : केशव सेनापति

सेनापति केशव उन मध्ययुगीन शूरमाओं में था जो मरनेवाले के अन्तिम शब्दो का प्राण देकर भी पालन करते हैं। महाराज जयसिंहदेव के स्वर्गारोहण के वाद वह पूरी निष्ठा से अपने इस मध्ययुगीन आदर्श का पालन कर रहा था। कुमार-पाल को वह सब तरह से अनुपयुक्त और अनधिकारी भी समझता था और जैसे वने वैसे उसे समाप्त कर देना चाहता था। इसलिए जब वौसरि से कोई जान-कारी नही मिली तो उसे वहुत आश्चर्य हुआ। त्रिलोचन के कथनानुसार वह निरा भिखारी था, जो माँग-जाँचकर किसी तरह निर्वाह करता हुआ अब भी प्याऊवाली जगह मे पड़ा था। सेनापति केशव, वर्वरक और मल्हारभट्ट आदि की नीति विलकुल स्पष्ट थी। वे महाराज जयसिंहदेव के पक्के अनुयायी थे और उनके अंतिम शब्दो पर अमल करना चाहते थे। लेकिन वौसरि के प्रसग को लेकर उन्हें मात खानी पडी थी। अब चिन्ता होने लगी थी कि कही उदयन और कृष्णदेव उन्हें धोखा न दे जाएँ! वे और भी सतर्क हो गए और पहले से अधिक निर्णयात्मक रुख अपना लिया।

वौसरिवाली घटना के वाद उनका यह सन्देह कि कुमारपाल पाटन मे ही है, वहुत वढ गया था। एक वार कान्तिनगरी मे इन लोगो ने कुमारपाल को घेर लिया था, लेकिन वह बुत्ता देकर निकल भागा। इसलिए डरते थे कि कहीं यहाँ से भी भाग न जाए। और न यही चाहते थे कि ऐन वक्त पर हाजिर होकर मौके का फायदा उठा ले। लेकिन किसी भी तरह पता नही चल पा रहा था कि वह पाटन मे कहाँ छिपा वैठा है! निश्चय ही कृष्णपाल के यहाँ होगा, लेकिन वहाँ जाकर पक-ड़ना काले साँप की वाँवी मे हाथ डालना था। अगर न हुआ या होकर भी न पकड़ा गया तो कृष्णदेव पूरा आसमान सिर पर उठा लेगा। इस वात का प्रचार करके कि मैंने महाराज के अन्तिम शब्दो को सुना है, उसने अपने महत्त्व और शक्ति-सामर्थ्य को वहुत वढा लिया था। उसे छेड़ना वैल को मारने का न्यौता देना था।

सेनापति केशव महाराज जयसिंहदेव का अनन्य भक्त था। वह उन्हे देवता ही समझता था। अपने हृदय मन्दिर मे उसने महाराज की मूर्ति स्थापित कर रखी थी। महाराज के सिंहासन को वह पवित्र दैवी प्रतीक मानता था। उस सिंहासन के साथ उसके जीवन की अनेक मधुर और गौरवशाली स्मृतियाँ जुडी हुई थी। इस सिंहासन के आगे उसने भारतवर्ष के विद्वानो की विद्यासभा को बैठे देखा था। इस सिंहासन पर बैठे महाराज जयसिंहदेव को उसने विद्वानो से काव्यचर्चा और धर्म-चर्चा करते सुना था। इस सिंहासन पर बैठनेवाले महाराज जयसिंहदेव केशव के मन अमरावती के इन्द्र से भी श्रेष्ठ और वरिष्ठ थे। उसने महाराज जयसिंहदेव को अनेक रूपो मे देखा था और उनका हर रूप निराला होता था। जिन महा-राजा को उसने विद्वानो की मण्डली मे काव्य-शास्त्र, न्याय-तर्क और व्याकरण की चर्चा करते देखा था उन्ही को धारा दुर्ग के दरवाजे पर तलवार हाथ मे लिये कालाग्नि-जैसा दुर्घर्ष और गिरनार के समीप काली चट्टान की तरह कठोर और विकराल एव गुप्त वेश मे प्रजाजनो के बीच भटकते हुए शान्त और कोमल स्वरूप मे भी देखा था। जहाँ उसने महाराज को कूटनीति प्रवरो के कान खीचते देखा था वही बालको-जैसी निर्दोष सरल क्रीडाओ में रत भी पाया था। और एक दिन उसने अपने उन्ही जगद्वन्द्य महान महाराजा को कन्धे पर गगाजल की काँवर लिये नगे पाँवो सोमनाथ के मार्ग पर चलते देखा था। उनका तो हर रूप निराला होता था। सोचते-सोचते केशव की आँखो मे आँसू उभर आए। उसे महाराज और सोमनाथ महादेव साथ खडे दिखाई दिये। और क्यो न दिखाई देते! रुद्र-महल-जैसा मन्दिर भी तो आखिर उन्ही महाराज ने बनवाया था।

महाराज के सभी कार्य महान होते थे—उनके बनवाये महल होते थे महा-प्रासाद और जलाशय होते थे महातडाग। ऐसे देवोपम राजा के पवित्र सिंहासन पर कुमारपाल-जैसा अपढ और गँवार बैठे और वह भी दिवगत महाराज की इच्छा के विरुद्ध, इसे भला केशव कैसे सहन कर सकता था? वह मर मिटेगा, लेकिन ऐसा अनर्थ न होने देगा, और दैव दुर्विपाक मे हो गया तो तुरत जल-समाधि ले लेगा। वह जयसिंहदेव का भक्त और सेवक ही नही, मित्र भी था। उसके सामने सिर्फ दो ही रास्ते खुले थे—या तो कुमारपाल को खोज निकाले और उसे गायब कर दे या स्वय गायब हो जाए। उसके लिए दो ही स्थान थे—

तो महाराज जयसिंहदेव का सान्निध्य अथवा लडाई का मैदान। महामात्य हादेव के प्रति इधर कुछ दिनो से उसकी आस्था डिग चली थी। वह नागर रे-धीरे त्यागभट्ट का गस्ता साफ करता जा रहा था, लेकिन लगता था कि सी दिन सुखद स्वप्न की तरह यह सारा प्रयत्न हवा में विलीन हो जाएगा। मारपाल का रास्ता साफ होता जाता था। श्रेष्ठियो का सहयोग उसे प्राप्त होता ा रहा था। गाथाओ के द्वारा उसके अनुकूल वातावरण निर्मित किया जा रहा था। ोगो को कुमारपाल के पक्ष मे करने के लिए उदयन कमर बाँधकर जुटा हुआ था। कृष्णदेव विलासी और मनमौजी आदमी था। उस पर विश्वास करना जितना यकर था अविश्वास करना उससे भी अधिक भयकर। महाराज का अन्तिम ादेश सुनने की वात उडाकर उसने सामन्तो, रावराणाओ, सैनिको और जन-सामान्य मे अपनी राजनैतिक और सैनिक स्थिति को वहुत दृढ कर लिया था। एक उसे छोड़ और कोई भी नही जानता था कि महाराज का अन्तिम आदेश क्या है। उसी ने महाराज की पादुकाएँ सिहासन पर स्थापित करवाईं मानो यही उनका अन्तिम आदेश हो, और उनकी ओट में स्वय सत्ताधीश वन वैठा। देखा जाए तो इस समय सारा राज-काज उसी के हाथ मे था। चाहने पर वह किसी भी क्षण राजा वन सकता था। लेकिन डरता था, क्योकि पाटन की प्रजा उसे एक क्षण भी वर्दाश्त न करती और उठाकर परे फेंक देती। केशव इस वात को जानता था, परन्तु यह भी जानता था कि कृष्णदेव चाहे तो प्रजा की आँखो मे धूल झोक सकता है। लोगो को भुलावे मे रखकर और समय लेकर अपना मतलव सिद्ध करने में कृष्णदेव वहुत कुशल था। अन्त में केशव ने फैसला किया कि स्वय चलकर कृष्ण-देव के इरादो की जाँच-पडताल कर ली जाए। उसने खवर भिजवाई कि परमार धारावर्षदेवजी के धनुष-कौशल को देखने के लिए आना चाहता हूँ।

कृष्णदेव था उडती चिडिया भाँपनेवाला। समझ गया कि केशव क्यो आ रहा है। वह केशव के स्वभाव से खूव परिचित था और ऐसो को नचाना भी खूव जानता था। जव उसका अहकार प्रवल न होता तो उसकी कूटवुद्धि वहुत प्रवल और प्रखर हो जाया करती थी। फिर तो वह सैकड़ो आदमियो को अँगुलियो पर नचा सकता था। आवश्यकतानुसार वह विनम्र हो सकता था, उग्र रूप धारण कर सकता था, व्यग्र होना जानता था, व्याकुल हो सकता था, कठोर वन सकता था,

अकड सकता था, झुक सकता था, भक्त वन सकता था, यहाँ तक कि चरण भी चूम सकता था। अहकार के मुखर न होने पर वह वडा ही कडा दाना साबित होता था। इसलिए सेनापति केशव-जैसे सैनिक को वनाना तो उसके लिए वाएँ हाथ का खेल था।

इस समय कृष्णदेव का अहकार सोया हुआ था। उसने केशव को आते देखा तो उसकी कूटवुद्धि सहसा प्रखर हो गई। तुरत अगवानी के लिए दौडा गया।

"आइए, पधारिए सेनापतिजी! यहाँ आने का कष्ट क्यो किया? मै और धारावर्षदेवजी वही हाजिर हो जाते। लेकिन वडो की वडी वातें होती है। अपनी विनम्रता से दूसरो को सम्मानित करते हैं। अहा-हा! परमारजी के वल और धनुप-कौशल का क्या कहना! सही अर्थों मे राज्य के सीमान्त-रक्षक है! मजाल नही कि कोई उधर से फटक भी सके। चन्द्रावती को आप क्या कहेंगे? गुजरात का द्वार ही न?"

"जी हाँ, द्वार तो है ही।" परन्तु केशव था सीधा आदमी। डार-डार और पात-पात चलना उसे आता नही था। एकदम सीधा सवाल पूछा उसने "कुमारपालजी का कोई पता चला? सुना जाता है कि मालवा मे थे?"

"मुश्किल तो यही है कि वे कहाँ नही थे! यह भी कहा जाता है कि प्याऊ मे छिपे वैठे थे। मैंने जव उस भिखमगे साधु को देखा तो समझ गया और तुरत त्रिलोचनपालजी से कहा कि इन तिलो में तेल मालूम नही पडता। और मेरी वात ठीक ही निकली न?"

तभी धारावर्षदेव आते दिखाई दिये। केशव ने हाथ जोडकर उन्हे नमस्कार किया। एक क्षण दोनो एक दूसरे की ओर देखते रहे। एक वात दोनो मे समान थी—दोनो ही सिंहासन के परमभक्त थे, लेकिन भक्ति का प्रकार अलग-अलग था।

"आइए, सेनापतिजी, अन्दर चलिए।" कृष्णदेव केशव को अपने महल में ले चला। चलते-चलते वोला. "अच्छा हुआ कि आप आज आ गए। धारावर्ष-देवजी जानेवाले हैं।"

"जा रहे हैं?" केशव चलते-चलते खडा हो गया और फुर्ती से वोला "कव?

आज ही ? इतनी जल्दी ? क्या राजसभा के अधिवेशन तक रुक नही सकते ? रुक जाइए न ?" अन्तिम वाक्य उसने धारावर्षदेवजी की ओर देखकर कहा ।

धारावर्षदेव के इतने जल्दी पाटन छोडने का कारण ही था राजसभा का निकट भविष्य मे होनेवाला अधिवेशन । वह पाटन के उत्तराधिकारी के निर्णय मे किसी तरह का भाग नहीं लेना चाहता था । उसके लेखे यह काम पाटनवालों का था—पाटन जिसे भी सिहासन पर विठा दे उसके सीमान्त की वह प्राणपण से रक्षा करेगा । वह उठा-पटक करनेवाला राजनीतिज्ञ नही, सीधा-सरल सैनिक आदमी था ।

उसने कहा "जल्दी ही आप सब लोगो को वहाँ आना होगा । मैं तो कृष्ण-देवजी से कह भी चुका हूँ ।"

कृष्णदेव ने समर्थन में सिर हिलाया ।

"यदि ऐसी वात है तव तो कृष्णदेवजी, यहाँ का निर्णय तुरत-फुरत हो जाना चाहिए, और आपको अपनी ओर से पहल करनी चाहिए ।"

"वस महामात्यजी के कहने की देर है ।"

धारावर्षदेव ने उनकी इन वातो में कोई भाग नही लिया । यह प्रसग उसकी रुचि का था भी नही । वह सत्ता के प्रश्न पर पूरी तरह तटस्थ रहना चाहता था । इसलिए उसने प्रसग को वदलने के इरादे से कहा "यदि समय होता तो मैदान मे चलकर जरूर आपको अपनी धनुर्विद्या दिखलाता । लेकिन अभी तो जाने की जल्दी है । आगे कभी भेट हुई तव देखा जाएगा ।"

"फिर भेट होगी ? पता नही कब हो ! यहाँ की स्थिति को देखते हुए आपका क्या खयाल है ?" केशव ने पूछा । उसे चन्द्रावती का मामला युद्ध से भी अधिक पेचीदा लग रहा था ।

"भेट तो होगी, जव भी हो ‥" धारावर्षदेव केशव के दूसरे सवाल को सफा टाल गया और आगे वोला "सेनापतिजी, एक शिल्पी ने मेरे धनुष-कौशल को प्रस्तर प्रतिमा मे चिरस्थायी कर दिया है । उसकी कला भी दर्शनीय है । आप जरूर आइए । अव मैं चलता हूँ । मेरे अश्वारोही प्रतीक्षा कर रहे हैं । कोविदासजी तो रवाना भी हो चुके हैं ।"

"कोविदासजी रवाना हो गए ?"

"जी हाँ । मैं भी रवाना हो ही रहा था कि पता चला, आप आए हैं इसलिए

मिलने चला आया। अच्छा कृष्णदेवजी, यही से विदा लेता हूँ। देर हुई जा रही है "

कृष्णदेव एक क्षण सोच-विचार मे पड गया। धारावर्षदेव ने पहले ही कह दिया था कि वह किसी पक्ष का साथ नही देगा, तटस्थ रहने की अपनी नीति को उसने सोलहो आना निभाया था। न उसने कुमारपाल का समर्थन किया और न दूसरे किसी का। इस समय उसकी यही नीति कृष्णदेव की चिन्ता का कारण बन गई। कही चन्द्रावती जाकर यह अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा न कर दे! फिर तो गुजरात को छिन्न-भिन्न होते देर न लगेगी। एक की देखा-देखी दूसरे सभी माडलिक सिर उठाने लगेगे। फिर तो विघटन की प्रक्रिया को रोकना कठिन ही नही असम्भव हो जाएगा। आज केन्द्र मे ऐसी कोई शक्ति नही है जो इस तरह के विखराव को रोक सके! अभी तो कुमारपाल को प्रस्थापित करना ही मुश्किल हो रहा था। जयदेव महाराज के शब्दो को विस्थापित करना भी उतना ही मुश्किल था। केशव सेनापति को अपने अनुकूल करना मुश्किल था। बर्बरक को साथ लाना भी मुश्किल था, और त्रिलोचनपाल को डिगा पाना तो और भी मुश्किल था। यहाँ मुश्किलें-ही-मुश्किले थी। और कृष्णदेव अपनी मुश्किले आसान करने मे और अपनी सत्ता की जडें जमाने मे धारावर्षदेव का उपयोग करना चाहता था। लेकिन जिसकी मदद चाही जा रही थी वह अब यहाँ एक क्षण भी रुकना नही चाहता था।

"धारावर्षदेवजी, आपने जाने का निर्णय कर ही लिया है?" कृष्णदेव ने कहा।

"जी हाँ! मुझे वहाँ की फिक्र है—मेरे सिवाय कोई है भी नही। यहाँ तो आप " और वह एकदम चुप हो गया। तटस्थ है, किसी के पक्ष और विपक्ष मे नही है तो यहाँ के बारे मे कहने-सोचने की उसे जरूरत भी क्या है! केशव सुन रहा था। वह भी समझ गया कि धारावर्षदेव सोलहो आना तटस्थ आदमी है।

"आइए, जाने से पहले गले तो मिल ले।" धारावर्षदेव पहले कृष्णदेव और फिर केशव के गले मिला और दोनो से विदा होते हुए बोला "अब तो आपके वहाँ आने पर ही भेंट हो सकेगी, सेनापतिजी!" और वहाँ से वह सीधा अपने घोडे की ओर चल दिया।

जब वह चला गया तो कृष्णदेव ने कहा . "सेनापतिजी, यदि धारावर्षदेवजी का कहना सच है तो हमे तुरत निर्णय करना होगा। महामात्यजी ने इनसे कहा है कि आप शीघ्र लौट जाइए और वहाँ जो भी स्थिति हो तुरत सूचित कीजिए। इसी लिए ये भागे जा रहे है। विक्रमसिह ने वहाँ बुरी तरह उत्पात मचा रखा है।"

"इसी लिए तो मै आपके पास आया हूँ, कृष्णदेवजी !" केशव ने कहा। अब वे अन्दर कमरे मे पहुँच गए थे। केशव ने फुर्ती से पूरे कमरे का निरीक्षण कर डाला। वह मालूम करना चाहता था कि कुमारपाल को कहाँ रखा गया है। आसन्दी पर बैठने के साथ ही वह बोला "कृष्णदेवजी, अब तो आपको फैसला कर ही लेना चाहिए। हम तो महाराज के अन्तिम वचनो की रक्षा के लिए प्राण भी निछावर कर देगे। बताइए आपकी क्या योजना है ?"

"मेरी क्या योजना होगी ? क्या मैं आपसे जुदा हूँ ?" कृष्णदेव ने आश्चर्यान्वित होकर कहा।

"हम से जुदा हो या न हो, लेकिन कुमारपालजी से तो जुदा नही ही है।" केशव ने अपनी बात कह ही दी।

कृष्णदेव ठठाकर हँस पडा। वह केशव के श्लेष को समझ गया था। उसने उसके दूसरे अर्थ पर ज़ोर देते हुए कहा · "बात सच है ! जो रिश्ता कुमारपाल से बँध गया है उसे मै तोड़ तो सकता नही हूँ। लेकिन यह भी सच है कि मै उस कोढी* को सिहासन के जरा भी उपयुक्त नही समझता। आप सहमत हैं न मेरी इस बात से ?"

"बिलकुल नही। लेकिन फिर भी . "

* प्रौढ़ावस्था में कुमारपाल को कोई असाध्य चरम रोग हो गया था। उसके इस रोग को इतिहासकारो ने 'लूता रोग' का नाम दिया है। इस रोग का आरम्भ त्वचा के चकत्तो के रूप में होता है जो धीरे-धीरे सारे शरीर में फैलकर कोढ का रूप ले लेते है। शायद इसी लिए सिद्धराज ने कुमारपाल को सिहासन के अनुपयुक्त करार दिया हो। उन दिनो राजा के लिए शारीरिक दृष्टि से भी निर्दोष और अक्षत होना नितान्त आवश्यक होता था। जो शुद्ध शब्दोच्चारण भी न कर सके और चर्मरोग-ग्रस्त हो उसे राजा कैसे बनाया जा सकता था !

"यदि आपकी ऐसी ही धारणा है," कृष्णदेव ने पूरे जोर के साथ कहा "तो कान खोलकर सुन लीजिए। मैं कुमारपाल को कान पकड़कर हाजिर कर सकता हूँ। मुझ में इतनी शक्ति है और महाराज जयसिंहदेव के प्रति इतनी भक्ति भी है। फिर मुझे यह जरा भी पसन्द नही कि हम लोग आज की स्थिति मे पारस्परिक अविश्वास और सन्देह लेकर चले। यदि आपको कुमारपाल के यहाँ होने का सन्देह है तो मै आपको घर का कोना-कोना देखने की अनुमति देता हूँ। इससे अधिक तो मै कुछ कहने से रहा।"

"तो वह गया कहाँ ?"

"यह मै क्या जानूँ ? मैं उसका बहनोई जरूर हूँ, पर चौकीदार तो नही कि पीछे लगा चौकसी करता रहूँ।"

ठीक उसी समय वहाँ से पच्चीस कदम के फासले पर एक तलघर के अन्दर कुमारपाल एक बडी-सी नाँद में छिपा बैठा था। नाँद को बरतनो के नीचे छिपा दिया गया था। जैसे ही केशव के आने का पता चला यह व्यवस्था कर ली गई थी। वैसे कृष्णदेव जानता था कि आज की स्थिति मे खुला सघर्ष मोल लेने की स्थिति किसी की भी नही है। यहाँ तक कि वह स्वय भी इसके लिए तैयार नही था।

कुछ ठहरकर उसने आगे कहा "विश्वास न आता हो तो एक काम कीजिए। मेरे महल के सारे तलघर और कोठरियाँ देखते जाइए" और उसने ताली बजाई।

"अरे, अरे! कृष्णदेवजी, यह आप क्या कर रहे हैं ?"

लेकिन तब तक ताली बज चुकी थी।

"देखिए सेनापतिजी, मैं तो सीधा-सरल सिपाही आदमी हूँ। तलवार चला सकता हूँ, कूटबुद्धि चलाना मेरे बस का नही। जो आदमी महाराज जयसिहदेव तक की पकड में नही आया, बीसियो बार उन्हें बुत्ता दे गया, आज वह यदि पाटन मे हो तो भी बताइए हम उसे किस तरह पकड सकते हैं—ऐसे को न आप पकड सकते हैं और न मै। वह तो हवा की तरह है। हवा आती है, हवा जाती है, परन्तु पकडी नही जा सकती। यही हाल कुमारपाल के हैं। ठीक कह रहा हूँ न ? वैसे मैं आपसे सहमत हूँ कि कुमारपाल इस समय यही है या होना चहिए। ठीक जिस दिन राजसभा का अधिवेशन होगा वह सामने आ जाएगा। उसे खेत में भागते

हुए आपके पचास आदमियो ने देखा था, पचासो ने उसका पीछा किया, लेकिन क्या पकडा जा सका ? खेत की छोड़िए ! यहाँ राजमहल मे साधुओ के साथ बैठकर भोजन कर गया, पर पकडा न जा सका ! अभी-अभी आपके ही कडी गाँव के मुखिया ने खबर भेजी थी कि कुमारपाल पकड लिया गया, रात-भर उसे हवालात मे रखा, चौकी-पहरे का पूरा इन्तज़ाम था, लेकिन सवेरा होते ही वह गायब हो गया—चौकी-पहरे मे से निकल भागा । इन सब घटनाओ के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि राजसभा के अधिवेशन में वह जरूर आएगा—चाहे आसमान से उतरकर आए, चाहे पाताल फोडकर, लेकिन आएगा जरूर । कहते है कि वह अन्तर्धान होना जानता है—किसी जैन साधु से उसने अलोप होने की विद्या सीखी है । जो कडी गाँव तक आ सकता है वह भला पाटन आये बिना रहेगा ? कुहनी मे गुड तो उसके भी लगा ही है—खा जरूर नही सकता, पर खाने की कोशिश से बाज भी नही आएगा । वह देखिए तेजदेव आ रहा है । जरूर कोई बात होगी । तो सेनापतिजी ”

“कृष्णदेवजी, आप मेरी बात ” केशव ने कहा और तेजदेव को जाने का इशारा किया । लेकिन वह गया नही । खडा कृष्णदेव की ओर देखता रहा । जब कृष्णदेव ने इशारा किया तभी गया ।

“कृष्णदेवजी, आप मेरी बात सुन लीजिए । महाराज के अन्तिम वचनो का हम प्राण देकर भी पालन करेंगे । उनके अन्तिम शब्द हमारे लिए देवाज्ञा है ।”

“हमारे लिए भी देवाज्ञा से कम नही है ।” कृष्णदेव ने केशव के कन्धे पर हाथ रख दिया और आगे बोला “लेकिन सेनापतिजी, जल्दबाजी से कुछ नही होता । सब काम धीरज से होता है । तेल देखो, तेल की धार देखो और घी के बरतन मे घी आप ही चला जाएगा ।”

“राजसभा का अधिवेशन करने मे आपकी सहमति तो है न ?”

“अवश्य ।”

“कब रखा जाए ?”

“जो भी दिन महामात्य निश्चित कर दें ।”

“यदि कुमारपाल उसमें आए ?”

“तो आने दीजिए । जैसा कि मैंने कहा है, कुमारपालजी अवश्य आएँगे ।

सच तो यह है कि वे आए विना रह ही नही सकते ।"

"यदि आ ही गए तो आप क्या करेंगे ?"

"वही जो आप करेंगे ।" कृष्णदेव ने मुस्कराकर कहा और खडा हो गया "चलिए सेनापतिजी, अव चला जाए । आप तो व्यर्थ परेशान हो रहे हैं । सूत न कपास और जुलाहो में लट्ठमलट्ठावाली वात है । जल्दवाजी से कभी काम वना है ? ऋतु आने पर ही फल लगता है और समय पाकर ही पकता है । महामात्यजी इस रहस्य को जानते हैं इसी लिए धीरे-धीरे कुमारतिलक त्यागभट्ट का रास्ता साफ कर रहे हैं और समय आने पर उन्हे सिंहासन पर विठा देंगे । घुडदौड में हमारा तनिक भी विश्वास नही । खुला सघर्ष हमारा रास्ता नही । यदि आपने कुमारपालजी को पकडने की कोशिश की तो लोग उन्हे छिपा लेंगे, मारने की कोशिश की तो प्रजा-जन उनकी रक्षा करेंगे । इस समय तो उनकी उपेक्षा करना ही एकमात्र रास्ता है । और हम इसी नीति का अवलम्वन कर रहे हैं । अगर कुमारपालजी देवस्थली जाना और वही रहना चाहें तो भी हमें कोई आपत्ति नही होगी । हम उन्हें महाराज कुमारतिलक त्यागभट्ट का उस प्रदेश का मण्डलेश्वर स्वीकार कर लेंगे । क्यो, ठीक है न ? वस, इतनी-सी वात के लिए आपको आना पड़ा ! वही से पुछवा लिया होता तो मैं स्वय आकर आपको वता जाता । इन दिनो दूसरी झझटें क्या कम हैं कि आप यह एक और परेशानी अपने सिर पर ओढ लें ?"

केशव सेनापति को विलकुल खाली हाथ लौटना पड रहा था । निश्चित जानकारी भी कुछ नही मिली थी । वुरा तो वहुत लगा लेकिन कर भी क्या सकते थे ! इस समय मुकावला पाटन के घाघ-शिरोमणि कृष्णदेव से था । उसने इतना तो वता ही दिया था कि कुमारपालजी इस समय पाटन मे ही है ।

ठीक है, वकरे की माँ कव तक खैर मनाएगी ! जैसे भी होगा कुमारपाल को राजसभा मे आने से रोका जाएगा । अव्वल तो जहाँ होगा वही वन्दी वनाकर रख लेगे, और अगर राजसभा मे पहुँच ही गया तो वहाँ से गायव कर देंगे ।

केशव ने मन-ही-मन यह निश्चय किया और वहाँ से चल दिया ।

१५ : आधीरात में मंत्रणा

पाटन मे अब घटनाएँ विद्युत् गति से घटने लगी। रातो ने अनेक प्रकार की गति-विधियो और दौड-धूप के कारण दिन का रूप धारण कर लिया और दिन तो जैसे तेजी से दौडने लगे। एक-एक क्षण का महत्त्व महीनो और वर्षो के बरावर हो गया। हरएक शब्द अनेकार्थवाची हो उठा। सामान्य प्रजाजन का परिस्थिति के प्रति अज्ञान और उनकी उलझनें बहुत बढ गईं। समझदार किंकर्त्तव्यविमूढ होने लगे। और किंकर्त्तव्यविमूढ को निराशा घेरने लगी। हाँ, इतनी वात सवकी समझ मे आ गई कि राज-परिवर्तन होनेवाला है।

केशव सेनापति सवसे ज्यादा व्यस्त था। उसकी आँखो की नीद खो गई थी। भूख-प्यास और सुख-चैन को भुलाकर वह महाराज जयसिहदेव के अन्तिम शब्दो को कार्यान्वित करने के लिए कटिबद्ध हो गया था। कृष्णदेव के वारे मे सन्देह तो उसे पहले ही था, अव सन्देह ने निश्चय का रूप धारण कर लिया था। वह दुष्ट महाराज के अन्तिम शब्दो से अनुचित लाभ उठाना और अपने हित मे सौदेबाजी करना चाहता था। ठीक है, जिसको जो उचित लगे करे, केशव अपनी स्वामि-भक्ति से विचलित न होगा। वह अपने महाराज के आदेश का पालन अपने प्राणो की वाजी लगाकर भी करेगा।

एक आधीरात को उसने उन सव लोगो को सलाह-मशविरे के लिए बुलाया जो उसके विचारो से सहमत और उसके कार्यों के समर्थक थे। जहाँ सिद्धराज का अग्नि-सस्कार किया गया था उसके समीप ही यह वैठक रखी गई थी। सवसे पहले केशव ही वहाँ पहुँचा। अभी तक कोई आया नही था। केशव एक ओर वैठ गया। नदी का कछार इस समय सूना पडा था। चारो ओर सन्नाटा था। वह वैठा आसमान के तारो को देखने लगा। सवके मुँह से यह सुनते-सुनते कि नक्षत्र कुमारपाल के अनुकूल हैं उसकी दिलचस्पी भी ग्रहो और नक्षत्रो में हो गई थी।

कुछ देर इसी तरह तारो को देखते रहने के वाद उसे किसी के आने की आहट

सुनाई दी। देखा तो वर्वरक चला आ रहा था। अपने स्वामी के इस अनन्य सेवक को देखकर केशव गद्गद् हो उठा। महाराज की मृत्यु के समय रोनेवाले तो वहुत थे, लेकिन न रोनेवाला यही एक जडभरत था। रो जरूर नही रहा था, लेकिन सिद्धराज केशव के पास वेदना की साक्षात् मूर्ति वना यन्त्र की तरह स्थिर और शान्त खडा था। लगता था जैसे अव भी महाराज को जीवितावस्था मे देख रहा हो और उनका वोल सुनते ही हुक्म वजाने को दौड पडेगा। वह मितभापी था—वहुत जरूरी होने पर ही दो-चार शब्द वोलता था। लेकिन एक वार जो फैसला कर लेता वह पत्थर की लकीर वन जाता था, फिर कोई उसे जीते-जी उसके फैसले से डिगा नही सकता था। इस समय वह धीरे-धीरे कदम रखता हुआ चला आ रहा था। मन्त्रणा-स्थल के पास आकर वह एक ओर खडा हो गया, वैठा नही। केशव जानता था कि उससे कुछ कहना वेकार ही होगा। केशव यह भी जानता था कि यहाँ जो भी फैसला होगा उसका प्राण देकर भी वह पालन करेगा।

कुछ देर वाद मल्हारभट्ट आता दिखाई दिया। इधर कई दिनो से उस वेचारे की हर चाल उलटी पडती जा रही थी, इसलिए वह उद्विग्न रहता और चाहता था कि जो भी करना हो फौरन किया जाए। उसका वस चलता तो वह कुमारपाल को जिन्दा जमीन मे गाड देता, लेकिन वेचारे का वस ही जो नही चल पाता था। केशव ने उसे देख लिया, पर वह केशव को न देख सका। सेनापति डरा कि कही अँधेरे मे इधर-उधर भटक न जाए, इसलिए हलका-सा सकेत कर दिया। मल्हार-भट्ट ने सुना और सीधा आवाज की दिशा में चला आया।

थोडी देर वाद त्रिलोचनपाल आया। उसका दावा था कि अपने जीते-जी वह कुमारपाल को नगर मे घुसने न देगा। उसका यह दावा गलत भी नही था। अपने काम में वह वडा ही चौकस, तेज मिजाज और दवग था। वह जिसको भी चाहे रोक सकता था। और-तो-और खुद कृष्णदेव-जैसा व्यक्ति भी उसके सामने पड़ने से घवराता था। उसकी गरुड-जैसी तीखी निगाहो से कोई वचकर निकल नही सकता था। इसलिए जव से उसने सुना कि कुमारपाल चुत्ता देकर नगर मे प्रविष्ट हो गया है उसके दिन का चैन और रात की नीद हराम हो गई थी। उस दिन से वेचारा भरपेट भोजन भी नही कर सका था। इस समय मरी चाल से चलता हुआ आया और चुपचाप एक ओर वैठ गया।

सब-के-सब गम्भीर थे और हरएक के मन मे यही विचार घूम रहा था कि जहाँ महाराज के पार्थिव शरीर को अग्नि के समर्पित किया था वही हम एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निर्णय के लिए इकट्ठा हुए हैं। अभी थोडे ही दिन पहले अपार जन-समूह के समक्ष इसी स्थान पर इन लोगो ने अपने प्रिय महाराजा को अन्तिम विदाई दी थी। वह सारा दृश्य उनकी आँखो मे घूम गया और तीनो व्यक्ति शोक-विह्वल हो उठे।

वैसे तो प्रतापदेवी और कुमारतिलक त्यागभट्ट के भी यहाँ आने की बात थी। लेकिन बाद मे सोचा गया कि उनके आने से बात कही फैल न जाए इसलिए उन्हें आने से रोक दिया गया और यह तय पाया कि यहाँ जो भी निर्णय होगा उसकी सूचना उन्हें दे दी जाएगी। इसलिए त्रिलोचनपाल के बाद और कोई आने को रह नही गया था।

थोडी देर शान्ति छाई रही। केशव ने अँधेरे मे आँखें फाडकर चारो ओर बारीकी से देख लिया। बर्बरक भी बिल्ली की तरह नि शब्द चलता हुआ देख आया। फिर वह हमेशा की तरह अपनी लाठी की टेक लगाये सिर झुकाकर खडा हो गया। नदी का कछार बिलकुल सूना पडा था। बहुत दूर पर दो-एक अलाव जल रहे थे। आवाज कोई सुनाई नही दे रही थी। लगता था जैसे रात ने थोडी देर के लिए मौन धारण कर लिया हो। केशव को एक क्षण के लिए वे नीरव रातें याद हो आई जब वह छद्मवेशधारी महाराज जयसिंहदेव के पीछे चला करता था। ओह, वे रातें महाराज के मानवोचित कार्यों से किस प्रकार जगमगाने लगती थी! थोडी देर वह उन दिनो की यादो मे खो गया। और जब बोला तो उसके स्वर मे सस्मरणो की वेदना झकृत हो रही थी।

"त्रिलोचनपालजी, बौसरि ने नाटक तो खूब अच्छा खेला और जाहिर कर दिया कि कुमारपाल से उसका कोई सम्बन्ध नही है। परन्तु मेरा मन स्वीकार नही करता। मुझे लगता है, बल्कि कहना चाहिए कि मेरा पक्का विश्वास है वह खम्भाती बनिया कुमारपाल को नगर मे कही छिपाए हुए है। कृष्णदेव से मैं मिल चुका हूँ और उससे मेरा यह विश्वास और भी पक्का ही हुआ है। बहुत करके वह कृष्णदेव के घर मे ही छिपा होना चाहिए। और आश्चर्य नही यदि इस समय प्रेमल के रसोईघर में छद्मवेश धारण किये रोटियाँ पो रहा हो! खैर, जो भी हो, इस

समय तो यह तय करना है कि अब करना क्या चाहिए। आज अन्तिम रूप से निर्णय कर ही लिया जाए।"

"हमारा रास्ता तो एकदम साफ है।" त्रिलोचनपाल ने कहा "महाराज के अन्तिम शब्द हमारे लिए देवाज्ञा हैं। प्राण देकर भी हम उनका पालन करेंगे। दूसरो को जो करना हो करें। क्यो मल्हारभट्टजी, आपकी क्या राय है?"

"मैं आपके कथन का पूरी तरह समर्थन करता हूँ। महाराज के अन्तिम शब्द मेरे लिए भी देवाज्ञा हैं। कुमारपाल शहर में भले ही बैठा रहे, पर उपाय कोई ऐसा किया जाना चाहिए जिससे वह राजसभा मे पहुँच न सके। जहाँ भी हो वही बन्द पडा रहे।"

"ठीक है।" केशव ने कहा "अब उचित यही है कि जैसे ही महामात्यजी राजसभा की घोषणा करे हम लोग अपने-अपने स्थानो पर खडे हो जाएँ। त्रिलोचनपालजी राजसभा के प्रवेश-द्वार पर खडे होगे। यदि कुमारपाल वहाँ से प्रवेश करे तो हमें उसको वही रोक देना होगा।"

"लेकिन किस तरह? मेरे खयाल मे पूरी विगत अभी से सोच लेनी चाहिए।"

"यह भी ठीक है।" केशव ने कहा "वह अकेला ही आएगा और छद्मवेश मे होगा। राजसभा के प्रवेश-द्वार के दोनो ओर तलघर हैं। किसी एक मे हम उसे उतार देंगे और वही डाले रहेंगे।"

त्रिलोचनपाल थोडी देर तक इस योजना पर मन-ही-मन विचार करता रहा। वह एक बार चरका खा चुका था, दुबारा असफल होना नही चाहता था। अच्छी तरह सोच-विचार कर उसने कहा "राजसभा का प्रवेश-द्वार तो बहुत बडा और प्रशस्त है। उस दिन पूरा खुला रहेगा। उसके दोनो ओर, मेरा मतलब है, दाहिनी और बाईं ओर पत्थर की दो सँकडी सीढियाँ हैं जो नीचे के तलघरो मे जाती हैं। आपको याद है न?"

"हाँ, है।" केशव ने कहा।

"राजसभा के अन्दर जानेवाले हर आदमी को वही से प्रवेश करना होगा। कुमारपाल भी वही से गुजरेगा। अब यदि हम उसे तलघर मे बन्द करना चाहते हैं तो किसी को वहाँ खडा रहना पडेगा। हर किसी के खडे रहने मे काम बनेगा नहीं। वहाँ खडे रहनेवाले में तीन बातें होनी चाहिए--शक्ति, स्फूर्ति और तीक्ष्ण

दृष्टि। कुमारपाल मामूली ग्रादमी नही—खासा मल्ल है, वल्कि उसे मल्ल शिरोमणि कहना चाहिए। यदि ग्राप सोचते हैं कि हाथ पकडकर खीचते हुए तलघर मे उतार देंगे तो यह कदापि सम्भव नही। यो तो वह टस-से-मस न होगा। ग्रौर उस समय वहाँ खीचा-तानी, हो-हल्ला, मारा-मारी या लडाई-झगडा विलकुल नही होना चाहिए। वह तो हमी को भारी पड जाएगा। जिस तरह ग्राँख के ग्रन्दर पडी हुई कँकरी को निकालकर फेंका जाता है उमी तरह ग्रानेवालो की भीड मे से कुमारपाल को चीह्न कर फुर्ती से, सफाई से ग्रौर ताकत से उठाकर गायव कर देना होगा। क्यो, ठीक है न ?"

"विलकुल ठीक। ग्रागे वोलिए, ग्राप क्या कहना चाहते हैं ?"

"वहाँ खडा रहेगा यह वर्वरक !" त्रिलोचन ने वर्वरक की ग्रोर ग्रँगुली दिखलाते हुए कहा। "ग्रकेला यही इस काम को कर सकता है, ग्रौर तो मुझे कोई दिखाई नही देता।"

वर्वरक ने लाठी पर ठुड्डी टेक दी ग्रौर त्रिलोचनपाल वोला. "मै राजसभा के प्रवेश-द्वार के ठीक वीचोवीच खडा रहूँगा। ग्रन्दर जानेवाले सव वाएँ हाथ की ग्रोर से जाएँगे। जैसे ही कुमारपाल वहाँ ग्राये कि यह उसे घसीट ले जाए। कुछ गाफिल तो वह रहेगा ही। इतने मे इसे ग्रपना काम वना लेना होगा। सावधान होने के पहले ही उसे तलघर मे धकेल दिया जाए। ग्रौर जो एक वार सीढियो से धकेल दिया जाता है वह ग्रासानी से ग्रौर एकदम ऊपर ग्रा नही सकता।" त्रिलोचन ने पूरी योजना की मानो तसवीर ही खीच कर रख दी।

वर्वरक सारी वात पूरे ध्यान-से सुनता रहा। ग्रन्त में उसने ग्रपना सिर झुका दिया। यह इस वात का मकेत था कि वह पूरी कार्य-योजना को समझ गया है।

"राजसभा के प्रवेश-द्वार का तो यह प्रवन्ध हो गया। लेकिन कृष्णदेव के महल के चारो ग्रोर भी तो चौकी-पहरे का वन्दोवस्त करना होगा। यह काम मल्हारभट्टजी को सौंपा जाए।"

"समझ लीजिए कि मै ग्रभी से इस काम पर लग गया हूँ।"

"ग्रव्वल तो ग्राप उसे वहाँ से वाहर ही मत निकलने दीजिए। ग्रौर ग्रगर निकल जाए तो वुरी तरह पीछे पड जाइए। टेढे-मेढे रास्तो मे इस तरह खदेडिए कि वह

समय पर वहाँ पहुँच ही न सके। और एक बार समय चूक जाने पर वह कुछ नही कर सकता। फिर भटकता रहे जनम-भर, हमारी बला से।"

"यह सब तो ठीक है, लेकिन मान लीजिए कि वह मल्हारभट्ट की आँखो मे धूल झोककर निकल जाए, आपको और वर्बरक को भी दाद न दे और भरी सभा मे सिंहासन का अपना दावा पेश कर ही दे तो हम क्या करेंगे ?" केशव सेनापति ने सबका ध्यान इस सम्भावना की ओर खीचते हुए कहा।

सब चुप। किसी को इसका जवाब सुझाई न दिया। वास्तव मे केशव का प्रश्न बड़ा ही विकट था, जिसने उनके लिए जीवन-मरण की समस्या खडी कर दी थी।

थोडी देर की चुप्पी के बाद केशव ने अपने वस्त्रो मे से एक छोटी-सी जल-कुम्भी निकालकर सबके बीचोबीच रख दी। वह उस समय दूर पर वहती हुई सरस्वती नदी की धारा की ओर देख रहा था। वर्बरक आँखे फाडे देखता रहा और त्रिलोचनपाल एव मल्हारभट्ट के कुछ समझ मे नही आया।

अन्त मे केशव बोला "मल्हारभट्ट और त्रिलोचनपालजी, सुनिए। मैंने आजीवन महाराज जयसिंहदेव की सेवा की है। मै छोटे से बडा उन्ही की छत्रछाया में हुआ हूँ। उन्होने मुझे क्षुद्र से महान बनाया, मान और प्रतिष्ठा दी। अब मैं किसी दूसरे की सेवा नही कर सकता। यदि महाराज के अन्तिम शब्दो के लिए प्राण न्योछावर न कर सकूं तो मुझ मे और राजवाटिका के वृक्षो मे अन्तर ही क्या ! आप भूले न होगे कि महाराज के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके हाथी ने भी एक सप्ताह तक अन्न-जल ग्रहण नही किया था। उस पशु को भी पता चल गया था कि उस पर सवारी करनेवाला नही रहा। हमने जो योजना बनाई है वह वास्तव मे एक दुस्साहस ही है। लेकिन आज तो इसके सिवा कोई चारा भी नही रहा है। महामात्यजी को फिक्र व्यवस्था और शासन-तत्र के सुनियोजन की है। महाराज की अन्तिम इच्छा की उन्हें कोई चिन्ता नही। वे किसी भी शर्त पर अन्त सघर्ष को टालना चाहते हैं। उधर कृष्णदेव बहुत गहरे दाव चल रहा है। उसकी चाल कभी भी भयकर रूप ले सकती है। खम्भात का वह बनिया जैन है, धर्मोन्मत्त है और एक गाथा को पकडे हुए है। आज कोई भी शक्ति उसे रोक नही सकती। त्यागभट्ट है अवश्य, लेकिन जब तक स्वय स्थिर नहीं हो जाते उनके किये भी कुछ हो नही सकता। ऐसी स्थिति में यदि हम मात खा गए तो क्या करना होगा ? अपने लिए

तो मैंने फैसला कर लिया है। लेकिन मैं आप मे से किसी को मेरा अनुसरण करने की मलाह नही देता। दैव यदि हमारे प्रतिकूल हो ही गया तो . " वह सहसा गम्भीर हो उठा। वर्बरक टक लगाये उमी के चेहरे की ओर देख रहा था। सामान्यत वह अपनी जगह से हटा नही करता था, लेकिन इस समय जाने क्या सोचकर दो कदम आगे आ गया था

केशव ने उस जलकुभी को उठा लिया और दो बूंद पानी हाथ मे लेकर आगे वोला "मैं भगवान सोमनाथ के नाम पर प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि महाराज के सिंहासन का अपमान हुआ तो या तो अपमान करनेवाले को मार डालूंगा या मैं ही नही रहूँगा। मेरा यह अन्तिम और अडिग निश्चय है। लेकिन आप कोई मेरा अनुसरण न करें। यदि वह दिन आया तो वह होगा हमारा अन्तिम मिलन।"

अपने ही विनाश के उस भगीरथ सकल्प ने वातावरण को और भी गम्भीर कर दिया। थोडी देर तक वहाँ मौन छाया रहा।

फिर सहसा वर्वरक आगे वढा और उसने पानी हाथ मे लेकर कहना शुरू किया। देखने-मुननेवाले सव चकित हो उठे। वह कह रहा था "मैं मोमनाथ भगवान के नाम पर प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि ऐसा हुआ तो सारे झगडे की जड उस वनिए को स्वय अपने हाथो से काटकर या किमी से उसकी वोटी-वोटी कटवाकर चील-कौओ को खिला दूंगा। चाहे पचास वरस भी क्यो न हो जाएँ मैं अपने इम वचन का पालन करूँगा। यदि वचन का पालन न कर सकूं तो जन्म-जन्मान्तर तक मेरी आत्मा को शान्ति और मुक्ति न मिले!'

इतना कहकर वह फुर्ती से अपनी जगह लाठी की टेक लगाकर इस तरह खडा हो गया मानो कुछ हुआ ही न हो!

वातावरण और भी गम्भीर हो गया। अव मल्हारभट्ट ने आगे वढकर जलकुम्भी उठाई। केशव ने तुरत उसका हाथ पकड लिया और वोला "मल्हारभट्टजी, वस कीजिए। भगवान सोमनाथ हमें सफलता प्रदान करेगा। हम यहाँ मरने का सकल्प करने नही आए हैं। हमारा उद्देश्य तो मृत्यु को जीतना और महाराज के अन्तिम शब्दो की रक्षा करना है। अव कोई भी इस सम्वन्ध में कुछ न कहे।"

थोडी देर सव वही चुप वैठे रहे। उनके हृदय की धडकनें रात के सन्नाटे मे घुलती-मिलती रहीं। फिर सव खडे हो गए। केशव के अन्तिम शब्दो के वाद किमी

का कुछ कहना आज के महान निर्णय की महत्ता को कम करना था। अन्त मे सब अलग-अलग दिशाओ का रुख करके धीरे-धीरे पाटन की ओर चल पडे।

१६ : योजना पर योजना

रात का पिछला पहर था। आसमान मे अभी तारे जगमगा रहे थे। काकभट्ट सरस्वती में स्नान करके लौट रहा था। वह उस जगह पहुँचा जहाँ महाराज जयसिंह का अग्नि-सस्कार हुआ था। रात के झुटपुटे में वहाँ उसने जो-कुछ देखा उस पर सहसा विश्वास नही हुआ। लगा, स्वप्न देख रहा है। वह चलते हुए रुक गया। सेनापति केशव यहाँ कैसे? उसके आश्चर्य की सीमा नही रह गई।

वह फुर्ती से एक छोटे-से पेड की ओट हो गया कि देखना चाहिए माजरा क्या है। थोडी देर वाद मल्हारभट्ट आता दिखाई दिया। 'दोनो इस समय यहाँ ?' काक को और भी आश्चर्य हुआ।

मल्हारभट्ट और केशव अपनी मन्त्रणा के वाद इसी ओर चले आ रहे थे। काकभट्ट ने उन्हें देख लिया, लेकिन पिछली रात के झुटपुटे मे वे उसे देख न सके।

दिन चढे जव वह मन्त्रीश्वर उदयन के यहाँ गया तो उसके मन में सेनापति के ही विचार घूम रहे थे। अपने अनुभव से वह इस वात को जानता था कि छोटी-सी वात अथवा जानकारी का परिणाम भी प्राय वहुत वडा हुआ करता है। लेकिन यहाँ मन्त्रीश्वर के भवन मे उसने जो-कुछ देखा उसने उसे और भी आश्चर्यान्वित कर दिया। सवेरे-सवेरे कई वारागनाएँ महल से निकलकर जा रही थी। विस्मय से भरा वह वाहर खडा देखता रहा। वेश्याओ के पीछे साजिन्दो-वाजिन्दो की एक पूरी फौज निकली—कोई मृदग लिये था तो कोई पखावज, कोई शख तो कोई नगाडे। वह समझ गया कि मन्त्रीश्वर ने जरूर कोई नई योजना वनाई है।

जव पूरी पलटन वाहर आ गई तो काक ने अन्दर प्रवेश किया। वहाँ बीच के खण्ड में उसने नगर के वहुत से श्रेष्ठियो को खडा देखा। उनके वहाँ खडे होने के

उद्देश्य का पता लगाने के लिए वह समीप ही एक ओर हटकर खडा हो गया। वे लोग समवेत स्वर मे धीमे-धीमे 'भवति कुम्मर नरिन्दो' नामक परिचित गाथा का उच्चारण कर रहे थे। उन लोगो ने सब मिलाकर पच्चीसेक बार उस गाथा का मन्द स्वर में गान किया और फिर सब-के-सब वहाँ से चले गए।

ये सारी तैयारियाँ काक के अनुमान से, राजसभा के अधिवेशन के लिए हो रही थीं। उदयन की दूरन्देश योजनाओ का अनुभव काक को पहले भी कई बार हो चुका था।

वह मन्त्रीश्वर के प्रकोष्ठ मे प्रवेश करने जा ही रहा था कि कृष्णदेव आता दिखाई दिया। निश्चय ही वह किसी चर्चा के लिए आ रहा था। काक को अपना बाहर रुक जाना ही उचित प्रतीत हुआ। लेकिन तभी अन्दर से ताली बजी और मन्त्रीश्वर का स्वर सुनाई दिया "आइए, काकभट्टजी, आप भी आ जाइए! कृष्णदेवजी आए है। आज तो हमे किसी फैसले पर पहुँच ही जाना होगा।"

काक अन्दर गया। कृष्णदेव जल्दी-जल्दी चला आ रहा था। उसके चेहरे से लगता था कि वह निश्चय ही किसी महत्त्वपूर्ण प्रसग पर चर्चा के लिए आया है। उसके इस रूप को देखकर काक को आश्चर्य हुआ। अपने को सबसे ऊँचा और श्रेष्ठ समझने का अभिमान उसके चेहरे पर अब भी विद्यमान था, लेकिन साथ ही चिन्ता की एक छाया भी वहाँ फैलती जा रही थी। काक समझ गया कि इधर-इधर कुछ ऐसी घटनाएँ जरूर घटी हैं, जिसने महाअभिमानी तुरगाध्यक्ष को भी चिन्तित कर दिया है।

बात सच भी थी। कृष्णदेव कुमारपाल के व्यवहार के कारण चिन्तित था। अज्ञातवास के कठोर कष्टो ने उसे कुछ ढीला जरूर कर दिया था, परन्तु अकेले हाथो दुनिया को जीतने के उसके इरादो और दमखम में जरा भी कमी नही हुई थी। लेकिन अब पहले का वह उद्धत गर्व नही उसके स्थान पर शालीन विनम्रता थी। और यह विनम्रता ही कृष्णदेव की चिन्ता का कारण बन गई थी। मानव-स्वभाव की कुछ विचित्रताएँ बडी ही हास्यास्पद लगती है। आदमी को अपनी गलतियाँ नही दिखाई देती और दूसरो की गलतियो को वह देखे बिना रह नही सकता। कुमारपाल की वज्रोपम दृढता को कृष्णदेव उसका अहकार समझता था, आज उसकी विनम्रता को वह दु:ख से टूटे हुए आदमी की शिथिलता समझ

रहा था ।

लेकिन वास्तव में कुमारपाल शिथिल अथवा ढीला नही हुआ था । उदयन की वात का असर उस पर हुआ था । वह गुजरात को छिन्न-भिन्न नही होने देना चाहता था । थोडी-सी विनम्रता और सहनशीलता से यदि देश को बचाया जा सके तो वह इसके लिए सहर्ष प्रस्तुत था । उदयन की वात सुनकर उसे लगा था कि देश की रक्षा के ही लिए विधाता ने मुझे जन्म दिया और आज की स्थिति निर्मित की है । इसी लिए वह कृष्णदेव के अभिमान को सहर्ष सहने के लिए तैयार हो गया था।

जव जैसी परिस्थिति हो उसमे अपने को उस तरह ढाल लेने की कला में कुमारपाल पारङ्गत था । वहुत ही कम समय मे उसने कृष्णदेव को इस वात का विश्वास दिला दिया कि वह सव तरह से तुरगाध्यक्ष का अनुवर्ती है । इससे कृष्ण-देव के दुर्धर्ष अहकार का पोपण हुआ और उसे विश्वास हो गया कि चाहे कुमार-पाल राजा वने राजसत्ता तो निस्सन्देह मेरे ही हाथो में रहेगी । कृष्णदेव सोचता था कि एक वार सत्ता अपने हाथ मे आ जाए फिर कुमारपाल को हटाते देर ही कितनी लगती है ।

उदयन से कृष्णदेव का यह मनोव्यापार छिपा न रहा । वह व्यक्ति की दुर्वल-ताओ और सवलताओ दोनो का उपयोग करना जातना था । इस समय उसने कृष्णदेव को इसी सम्वन्ध में चर्चा करने के लिए वुलाया था । तीनो वैठे और दूसरे ही क्षण गम्भीर चर्चा मे निमग्न हो गए । कृष्णदेव कुमारपाल को अपने यहाँ से किसी दूसरी जगह रखना चाहता था । उदयन इससे सहमत नही था । कृष्णदेव को कुमारपाल का अपने यहाँ रहना निरापद नही लगता था, उदयन को उसका दूसरी जगह भेजा जाना निरापद नही लगता था ।

कृष्णदेव ने कहा "मेहताजी, वात यह है कि सेनापति केशव मुझसे मिलने आया था । उस गुट के सभी लोग दौड-धूप कर रहे हैं । उनका यह सन्देह कि मैने कुमार-पाल को अपने यहाँ छिपा रखा है, दिनोदिन पक्का होता जाता है । अभी तो मैने टका-सा जवाव दे दिया है, लेकिन वे लोग इतनी आसानी से माननेवाले नही । वे अपनी करनी से कभी वाज नही आएँगे । यदि उन्होने राजसभावाले दिन कुमार-पाल को गायव कर दिया तो क्या होगा ! इसलिए मेरी तो यही राय है कि कुमार-पालजी को मेरे यहाँ से हटाकर कही और रख दिया जाए ।"

उदयन को तर्क तो ठीक लगा, लेकिन कुमारपाल को उसके वर्तमान स्थान से हटाने में जोखिम भी कम नहीं था। इधर काकभट्ट ने सेनापति केशव का नाम सुना तो उसे सवेरवाली सारी घटना याद हो आई। उसने कृष्णदेव के सन्देह के सन्दर्भ में जब सारी बात को टटोला तो सकट और भी घना होता दिखाई दिया।

उधर कृष्णदेव कहे जा रहा था "राजसभा के अधिवेशन के समय हम सब तो वहाँ होंगे और कुमारपालजी यहाँ अकेले। उन्हे यहाँ से निकलकर वहाँ जाना होगा। इसमे खतरा तो है ही, और खतरा क्यो मोल लिया जाए? वहाँ राजसभा में सभी अपने दावे पेश करेंगे। महामात्यजी सब को मौका देंगे। महीपाल को मैंने इसी लिए देवस्थली से बुला भेजा है। कीर्तिपाल भी आ रहा है। कुमारपालजी को इनके साथ कर देंगे। उस दिन होगा यह कि कचनदेवी सोमेश्वर का दावा पेश करेंगी, भावबृहस्पतिजी त्यागभट्ट के पक्ष का समर्थन करेंगे और कुमारपालजी तो खैर है ही। और भी कुछ दावेदार निकल आएँ तो अचरज नहीं। हो सकता है कि अपने-आपको महाराज सिद्धराज के पुत्र कहनेवाले भी कुछ लोग वहाँ पर हो। हमें सोचना यह है कि कुमारपालजी यहाँ से चलकर वहाँ राजसभा में पहुँचे, क्या यह उचित है; क्या इसमे खतरा नहीं है? आपका क्या खयाल है?"

"खतरा तो मुझे कोई लगता नहीं। आप अच्छी नस्ल का एक बढिया और तेज घोडा तैयार रखिए। वस्त्राभूषण की व्यवस्था मैंने करवा दी है। नगरश्रेष्ठी आभड सेठ स्वय लेकर आएँगे आभड सेठ, छटाक सेठ, कुबेरराज आदि सभी हमारे साथ हैं।"

"नहीं-नहीं, यह ठीक नहीं है।" कृष्णदेव ने कहा "यदि उन्होंने बीच रास्ते से कुमारपाल को गायब कर दिया तो क्या होगा? हम तो यहाँ होंगे नहीं। राजसभा में बैठे रास्ता देखते रहेंगे और विरोधियो की बन आई तो जीवन-भर रास्ता देखते रह जाएँगे।"

"बात तो ठीक है" काक ने कहा। केशव और मल्हारभट्ट को सवेरे सरस्वती-तट से एक साथ लौटते देखकर उसे भी कुछ इसी तरह का सन्देह हो रहा था। विरोधियो की चाल को वह तुरत समझ जाता था और उनकी काट करने में लग जाया करता था। "लेकिन कृष्णदेवजी," वह आगे बोला "मेरी राय में कुमारपालजी की जगह बदलना इस समय ठीक नहीं है। इस काम

मे वडा खतरा है और वेकार खतरा मोल लेने से कोई फायदा नही ! अव रहा प्रश्न कुमारपालजी को उस दिन राजसभा में पहुँचाने का । उसकी जिम्मेवारी मैं लेता हूँ ।" केशव की योजना को एक वार फिर धूल में मिलाने का मौका पाकर वह वहुत उत्साहित हो गया था । पलक मारते ही सारी योजना उसके मन में स्पष्ट हो गई । इस काम में वह राजपुरोहित पडित सर्वदेव का उपयोग करना चाहता था । सर्वदेव और उदयन के वेटे वाग्भट्ट की दाँतकाटी रोटी थी । इस मैत्री के सहारे काकभट्ट कुमारपाल को राजसभा मे तो क्या सिहासन के ऊपर भी विठा सकता था ।

"अच्छी वात है ! आप उन्हें राजसभा के अन्दर पहुँचा दीजिए, और राजसभा तक पहुँचा देने की जिम्मेवारी मेरी ।" कृष्णदेव ने कहा ।

"भाई, आप लोग दोनो वहादुर और जवान है ।" उदयन मत्री ने परिहास किया "मैं ठहरा वूढा । अव कौनसी जिम्मेदारी लूं ? लेकिन कुछ तो करूँगा ही । काकभट्टजी ! आप मुझसे वाद में मिलिए। हमारा वाग्भट्ट शायद इसमें कुछ काम आ सके । लेकिन आपने सव सोच-विचार तो लिया है न कृष्णदेवजी ?"

उदयन उसे पूरी तरह वाँध लेना चाहता था । आगे वोला "आप महाराज के अन्तेवासी थे । प्रजा इस वात को जानती है । महाराज की अन्तिम इच्छा की जानकारी भी सिर्फ आपको ही है और यह वात भी सभी को मालूम है । महाराज की इच्छा को भूलना या उसकी अवहेलना करना कोई नही चाहता । और कुमारपालजी को सिहासन पर न वैठने देने का अपना मन्तव्य महाराज अनेक वार सार्वजनिक रूप से भी व्यक्त कर चुके हैं..."

"यह सव ठीक है मेहताजी !" कृष्णदेव ने कहा . "लेकिन हमारे पास यह तलवार है "

उदयन इस आदमी को घमण्डी तो समझता था, लेकिन यह नही जानता था कि मूर्ख भी है । और मूर्ख मित्र तो स्याने दुश्मन से भी अधिक खतरनाक होता है । उसने पूछा : "क्या मतलव ? लडकर राज्य लेना चाहते हैं ?"

"नही । आप मेरा मतलव समझे नही । राज्य के सारे तलवारधारी हमारे साथ हैं । वे हम जो कहेंगे उसी को करेंगे । और उन्हें क्या कहना होगा सो हम जानते हैं ।"

"क्या कहेंगे हम ?"

"इसका पता उसी दिन चलेगा ।"

उदयन ने आगे पूछना उचित नही समझा । लेकिन साथ ही यह आशका भी हुई कि कही उस दिन यह आदमी फिसल न जाए ।

इधर कृष्णदेव बोले जा रहा था · "तलवारधारियो का सारा वर्ग आज सत्ताशाली है और आगे भी सत्ताधीश बना रहना चाहता है । राजसभा मे उसी का बहुमत होगा और वहाँ कोई उनकी मर्जी के खिलाफ जा नही सकेगा । हम उन लोगो को मिलाये रखेंगे और सब से पहले वे ही कुमारपालजी का जयजय-कार करेंगे ।"

"अच्छा, बहुत अच्छा !"

"अच्छा तो जरूर है, लेकिन देखना यह है कि क्या कुमारपालजी का मनोबल दृढ है ? सत्ता छोडकर राजा बनना उन्हें अच्छा लगेगा ?"

"अच्छा क्यो न लगेगा ! सलाह देने और राह दिखाने के लिए आप तो रहेंगे ही ।" उदयन इस प्रसग को यही समाप्त कर देना चाहता था ।

"खैर, मै तो रास्ता दिखाऊँगा ही, लेकिन बाद में "

"देखिए कृष्णदेवजी, नीति में कहा है कि जब एक काम बन रहा हो तो दूसरे की नही सोचना चाहिए । इस तरह तो दोनो ही बिगड जाते हैं । एक ही साधे सब सधे बाद की बाद में देखी जाएगी । सूत्र तो सब आपके ही हाथ मे रहेंगे । अभी से उस समय की चिन्ता क्यो की जाए ? अभी तो हमे यह सोचना और तय करना है कि राजसभावाले दिन क्या करना होगा । पहले यह बताइए कि राजसभा का अधिवेशन किस दिन हो रहा है ? कोई दिन या तिथि तय हुई है या नही ?"

"सर्वदेव ने मुहूर्त तो निकाल दिया है ?"

"कब का ?"

"मार्गशीर्ष के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी ।"

"अरे !" और उदयन एक क्षण कृष्णदेव के मुंह की ओर देखता रह गया । लेकिन फिर तुरत सँभल भी गया । उसके विस्मय से कृष्णदेव को सन्देह हो सकता था । सयमित होकर आगे बोला . "यह तो सोने में सुहागे-जैसी बात हुई । उस दिन रविवार और पुष्य नक्षत्र है । वाह ! वाह !!"

"अच्छा तो काकभट्टजी, आज से तीसरे दिन आप अपना भार सँभाल लीजिएगा ।" कृष्णदेव ने कहा ।

"मैंने तो आज से ही वह भार सँभाल लिया । विरोधियो का कोई भरोसा नही । जाने कब क्या कर गुजरे ! आज ही सवेरे मैंने मल्हारभट्ट और केशव सेनापति को साथ जाते देखा था !"

"कहाँ ?" उदयन ने चिन्ता-भरे स्वर में पूछा । वह आशंकित हो उठा कि कुमारपालजी को गायब करने की कोई योजना न बनी हो !

"मुँहअँधेरे सरस्वती नदी के किनारे । जहाँ महाराज का अग्निदाह किया गया था उधर से आ रहे थे ।"

उदयन और कृष्णदेव दोनो ही चिन्तित हो गए । निश्चित हो गया कि विरोधी चुप नही बैठे हैं । और खतरा दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता है ।

"धारावर्षदेवजी तो गए !" कृष्णदेव ने तनाव को कुछ कम करने के विचार मे कहा ।

"एक तरह मे अच्छा ही हुआ कृष्णदेवजी ! अपना गुड पहले हमी खा लें; बाद में जिसे आना हो आए ।"

"वे तो आए और चले भी गए—उनके इस आने-जाने मे कोई रहस्य तो नही है न ?"

"जी नही, रहस्य-जैसी तो कोई बात दिखाई नही देती । उन्होंने जो कहा वह ठीक ही मालूम पडता है । वहाँ लडाई छिड सकती है । और यदि यहाँ सिंहासन पर कोई कच्चा नौजवान या कमजोर आदमी बिठाया गया तो आग भडके बिना नही रहेगी । राजसभा में हमे इस तथ्य को स्पष्ट कर ही देना होगा ।" इतना कहकर उदयन उठ खडा हुआ "तो कृष्णदेवजी, हमे बहुत सतर्क रहना होगा । कुमारपालजी को हम अभी हटाएँगे नही । वे जहाँ हैं वही रहने देंगे और उनकी पूरी हिफाजत करेंगे । क्यो काकभट्टजी, अभी तो यही तय रहा न ? और क्या बाद में आप मुझसे मिल सकेंगे ?"

काक समझ गया कि उदयन और भी कोई योजना बना रहा है । उसने सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी ।

थोडी देर बाद कृष्णदेव चला गया । उदयन उसकी ओर से निश्चिन्त हो

गया, क्योंकि वह जानता था कि अब कुमारपाल की सुरक्षा कृष्णदेव के अपने ही हित में थी। लेकिन उदयन यह भी जानता था कि ऐन वक्त पर संकट किसी भी रास्ते मे आ सकता है, इसलिए वह अकेले कृष्णदेव पर निर्भर नही रहना चाहता था। ऐन वक्त पर आनेवाले आकस्मिक सकट के सभी रास्तो को वह अभी से बन्द कर देना चाहता था, इसलिए मन-ही-मन नई योजना पर विचार करने लगा और काकभट्ट के कन्धे पर हाथ रखकर बोला "काकभट्ट जी, आपकी आशका मुझे भी सच लगती है। हमे कुमारपालजी की सुरक्षा का पूरा खयाल रखना होगा। ज्यादा अच्छा तो यही होगा कि हम उन्हे राजसभा भवन के आस-पास ही कही रख दे। नगरश्रेष्ठी कुबेरराज का महल सभा-भवन के पास ही है। आपने भी उसे देखा ही होगा। मेरे विचार मे कुमारपालजी को वहाँ एक दिन पहले पहुँचा देना चाहिए। आप केशव और मल्हारभट्ट को सवेरे सरस्वती नदी के किनारे पर देखने की बात कह रहे थे न ? वे उस समय वहाँ क्या कर रहे थे ?"

"जहाँ महाराज का अग्निदाह किया गया था वहाँ से लौट रहे थे। मै सरस्वती में स्नान करके आ रहा था।"

उदयन कुछ सोचने लगा, फिर बोला "काकभट्टजी, वे दोनो जब तक जल-समाधि नही ले लेगे चैन से नही बैठेगे और न हमे चैन लेने देंगे। त्रिलोचन और बर्बरक भी उनके साथ है। खैर होगा ! अभी तो यह बताइए कि कृष्ण-देव ऐन वक्त पर धोखा तो नही देगा ?"

"दे भी सकता है।" काक ने कहा और सोचने लगा कि यदि कृष्णदेव के ही भरोसे रहे तो वह सच ही किसी भी समय धोखा दे सकता है।

"इसलिए हमे राजसभा मे स्थान-स्थान पर अपने आदमियो को नियुक्त करना होगा। और जैसे ही कृष्णदेव कुमारपाल का नाम प्रस्तावित करे, और यदि न करे तो हमारे सकेत पर, वे सब लोग 'महाराज कुमारपालदेव की जय' के नारो से चारो दिशाओ को गुंजाने लगें। साथ ही शख, मृदंग, पखावज और घटियाँ बजने लगे और वाराङ्गनाएँ नृत्य आरम्भ कर दे। परिचारकगण छत्र और चँवर डुलाने लगे। सेनापति और माण्डलिक अभिवादन करना शुरू कर दे। ये सारे काम इस तरह व्यवस्थित और एक सिलसिले से हो कि बीच मे रोकटोक करने की

किसी की हिम्मत ही न हो। हमे गायनाचार्य सोलाक को बुलवा लेना चाहिए। किसी को देवस्थली भेजिए। नीलमणि तो यहाँ है ही। इन दिनो मैं इन्ही सब कामो मे व्यस्त हूँ। आज आप एक बार कुबेरराज के महल की ओर हो लीजिए। वहाँ के प्रबन्ध का भार मैंने वाग्भट्ट को सौंपा है। राजपुरोहित सर्वदेव उसका मित्र है। *अभिषेक भी तुरत ही करना होगा। कृष्णदेव का कुछ भरोसा नही।* कब क्या कर बैठे और हमारी सारी योजना को मिट्टी मे मिला दे, कुछ कहा नही जा सकता। इसलिए हमे सारी योजना को पूरी सतर्कता से कार्यान्वित करना होगा।

काक जवाब देने जा ही रहा था कि मार्ग पर से डिंडिमिका घोष सुनाई दिया और दोनो चौंक पडे। कोटपाल कह रहा था. "मार्गशीर्ष की शुक्ल चतुर्थी, रविवार के दिन सवेरे तीसरे पहर राजसभा का अधिवेशन हो रहा है। सब निमन्त्रित हैं। सिंहासनासीन राजपादुकाओं के समक्ष उत्तराधिकार के प्रश्न का निर्णय होगा। सुनें, सब नगरजन सुनें, इस घोषणा को सुने "

१७ : श्रेष्ठी कुबेरराज के यहाँ

दिन था विक्रम संवत् ११६६ के मार्गशीर्ष महीने के शुक्लपक्ष की तृतीया और समय था आधीरात के बाद की पहली घटिका। ठीक विधाता की तरह पाटन नगरी और गुर्जर देश के भविष्य का निर्माण उसके अपने ही हाथो की बात थी। सारा शहर गहरी नींद मे सोया पडा था। रात के पहरुओ की पुकार के सिवाय और कोई आवाज़ सुनाई नही पडती थी।

पशु, पक्षी और पत्ते तक सो गए थे। सरस्वती नदी का बहता पानी नींद मे माता मधुर-मोहक सपने देख रहा था। चारो ओर घना अन्धकार छाया हुआ था। इमली पर बसेरा करनेवाला उल्लू भी अपने पखो मे मुँह डाले चुप बैठा था। ऐसे समय पाटन के अश्वपति कुबेरराज श्रेष्ठी के इन्द्रभवन के ऊँचे परकोटे के

बाहर-बाहर अँधेरे मे दो व्यक्ति सावधानी मे लुकते-छिपते चले जा रहे थे।

वे सतर्क थे। चारो ओर देखते जाते थे। चिन्तित और अधीर मालूम पडते थे। शायद दिल भी दोनो के धडक रहे थे। मुँह पर उन्होने ढाटे बाँध रखे थे। काले लबादे ओढे हुए थे। चलने मे जरा-सी भी आवाज न हो इसलिए उन्होने अपने पाँवो पर कपडे लपेट लिए थे। ऊँचे परकोटे की ओट लेकर वे धीरे-धीरे और सावधानी से आगे बढ रहे थे। रुक-रुककर वे टोह लेते जाते थे। कदम-कदम पर ठिठक जाते और अँधेरे मे आँखे फाडकर देखने लगते थे। कदम उठाने से पहले आगे-पीछे और अगल-बगल देख लिया करते थे।

इस तरह बहुत देर तक चलने के बाद लगा जैसे उनका गन्तव्य आ गया है। वे कान लगाकर सुनने लगे। कुछ करने से पहले शायद इत्मीनान कर लेना चाहते थे कि कही से कोई आवाज तो नही आ रही है। लेकिन चारो ओर सन्नाटा था और आधीरात की निस्तब्धता ऐसी मालूम पड रही थी मानो स्वय देवाधिदेव ने चर-अचर सृष्टि को मौन और शान्त हो जाने का आदेश दिया हो।

अपने-अपने दिलो की धडकनो को सुनते हुए दोनो वहाँ थोडी देर खडे रहे। लगता था जैसे दीवाल के पत्थरो के साथ दोनो पत्थर ही हो गए हो। वे थोडी देर तक इसी तरह खडे रहे। फिर बहुत आहिस्ता से दोनो एक दूसरे के पास खिसक आये और एक ने कहा "जगह तो यही है, परन्तु जरूर कोई गडबड हुई है, नही तो सर्वदेव यहाँ होता। क्या बात है, वह आया क्यो नही ?"

"क्यो काकभट्ट, ऐन वक्त पर कही वह फिसल तो नही गया ?"

"सर्वदेव ऐसा तो नही है प्रभो! और फिर कुबेरराज श्रेष्ठी ने उसे सवा-कोटि मूल्य का कीमती हीरा भी तो दिया है। निर्णय तो यही हुआ था कि वह अभिषेक की सारी सामग्री लेकर यहाँ मिलेगा। इसलिए उसके न आने का तो प्रश्न ही नही उठता। यदि कोई गडबड हुई हो तो बात दूसरी है, अन्यथा आता ही होगा। यो भी देवस्थली के लिए उसके मन मे काफी स्नेह और आदर-मान है।"

"यह सब तो ठीक है काक, और वह आए चाहे न आए, हमे तो अन्दर जाना ही है न? तो यह बताओ कि कहाँ से घुसना होगा ?"

"इसका पता भी उसके आने के बाद ही चलेगा। यो तय तो यही हुआ था कि यही से अन्दर जाएँगे। परन्तु हो सकता है कि कोई परिवर्तन हुआ हो। कुछ देर

रास्ता देखने मे कोई हर्ज नही। जरा-सी भी जल्दी मारे किये-कराए को चौपट कर सकती है।"

इसके बाद फिर शान्ति हो गई। रात अपनी धुरी पर घूमती रही। दोनो के दिल तरह-तरह की आशकाओ से मथित होने लगे। तभी दूर से किसी के पाँवो की आवाज़ आती सुनाई दी। काक ने सुना और फुर्ती से कुमारपाल के कन्धे पर अपना हाथ रखकर प्रसन्न स्वर में कहा "वही मालूम पडता है प्रभो!"

कुमारपाल ने जवाब नही दिया। चुप कान लगाए सुनता रहा। कही कोई पहरुआ न हो इस विचार से दोनो-के-दोनो परकोटे से सटे खडे थे—यहाँ तक कि उन्होने दम भी साध लिया था। पाँवो की आवाज़ क्रमश पास आती गई। चलने-वाला बिलकुल समीप आकर कही रुक गया। काक ने आँखे फाडकर अँधेरे मे देखा और कुमारपाल का हाथ अपने हाथ मे लेकर फुसफुसाया "राजपुरोहित सर्वदेव ही है महाराज। अनुमति हो तो पुकारूँ?"

"नही!" कुमारपाल ने फुसफुसाकर ही जवाब दिया। "परकोटे से सटे रहकर हम उसकी ओर बढ चलें। आवाज़ बिलकुल नही होनी चाहिए।'

कुमारपाल के इतने अधिक सतर्क रहने का परिचय पाकर काकभट्ट को विस्मय हुआ। परकोटे से सटे-सटे दोनो आगे बढने लगे। कुछ दूर जाने पर अँधेरे मे एक धुँधली मानव-आकृति दिखाई दी। दोनो उसके पास पहुँचकर रुक गए। अँधेरे मे यह तो मालूम हो नही सकता था कि आगन्तुक कौन है। थोडी देर चुप्पी रही। फिर काक ने एक विचित्र प्रकार की आवाज की। सामने से ठीक उसी आवाज़ मे प्रत्युत्तर मिला। काक के आनन्द की सीमा न रही। वह सर्वदेव ही था।

रास्ता साफ पाकर खुद सर्वदेव उनके पास आ गया। इस समय वह स्नानार्थी के वेश मे था। एक धोती कन्धे पर पडी थी, सिर पर गमछा लपेटा हुआ था। एक हाथ मे लोटा और काँख मे छोटी-सी दडीका थी। समीप आकर बहुत ही धीमे स्वर मे उसने कहा . "काकभट्टजी, आप ही है न? और क्या महाराज भी हैं?"

काकभट्ट ने बिना कुछ कहे कुमारपाल का हाथ उसके हाथ मे पकडा दिया।

सर्वदेव बोला "ठीक है। महाराज, मै आपका सेवक सर्वदेव हूँ। अब हमे जल्दी करना होगा। इधर कुछ हलचल है। मैंने दो-एक सैनिको को इस ओर गश्त लगाते देखा है। इस परकोटे के उस ओर नीचे उतरने के लिए सीढी रखी गई है।

वहाँ से आपको पश्चिम की ओर जाना होगा। कर्कभट्टजी, सावधानी से चढ़िए-उतरिएगा। उधर कुबेरराज स्वय खडे होगे और वाग्भट्ट भी होगे। पहले महाराज को जाने दीजिए।"

काक जहाँ परकोटे से सटकर खड़ा था वही थोडा झुक गया। कुमारपाल ने एक पाँव उसके घुटने पर, दूसरा कन्धे पर रखा और परकोटे का कँगूरा पकडकर ऊपर चढ गया। दूसरे ही क्षण वह अँधेरे मे उस पार गायब हो गया। अब काक की जगह सर्वदेव खडा हुआ था और काकभट्ट उसके घुटने-कन्धे पर पाँव रखकर परकोटे के पार उतर गया। जब दोनो आदमी परकोटे को फाँद चुके तो सर्वदेव ने सन्तोष की साँस ली और सस्कृत सुभाषित बोलता हुआ वहाँ से आगे बढ गया।

कुमारपाल और काक महाश्रेष्ठी कुबेरराज की हवेली के पिछले हिस्से मे उतरे थे। हवेली की मुख्य इमारत के चारो ओर इतनी खुली जगह थी कि उसमे आधी पाटन समा जाती। सर्वदेव ने ठीक ही कहा था। उतरने के लिए वहाँ एक सीढी रखी गई थी। जब काक भी उतर गया तो उन्होने सीढी को खीचकर नीचे पटक दिया और दोनो आदमी वहाँ से पश्चिम की ओर बढे।

कहाँ जाना होगा, इसका स्वय उन्ही को पता नही था। सर्वदेव ने पश्चिम की ओर जाने को कहा था, इसलिए पश्चिम की ओर चले जा रहे थे। सिर्फ इतना मालूम था कि कुबेरराज श्रेष्ठी के भवन में रात बितानी होगी, क्योकि यह बात पहले से तय हो गई थी। सर्वदेव से यह भी मालूम हुआ था कि उदयन का बडा बेटा वाग्भट्ट भी इस समय कुबेर श्रेष्ठी के ही भवन मे था। स्वय कुबेर सभी तरह से अनुकूल था और महाराज कुमारपाल का अपने भवन मे स्वागत करने के लिए तैयार थी। लेकिन बात को पूरी तरह गुप्त रखा गया था, क्योकि उन्हे कोई अनुचर अथवा परिचारक दिखाई नही दे रहा था। वे बहुत सावधानी से आगे बढते रहे। रास्ता बिलकुल सुनसान था।

वाग्भट्ट की विद्वान के रूप में ख्याति थी। राजपुरोहित सर्वदेव भी पडित था। इसलिए दोनो मे सहज भाव से मैत्री हो गई थी। इस मैत्री का उपयोग किया था उदयन ने अभिषेक तिथि को निश्चित करने मे। कुबेर के ही भवन मे इस बात का फैसला हुआ था कि राजसभा मे कुमारपाल का तुरत-फुरत राज्याभिषेक कर दिया जाए। उदयन 'कुमार नरिन्दो' की गाथा के द्वारा जो वातावरण तैयार कर

रहा था उसने पाटन के अनेक श्रेष्ठियो को प्रेरित किया था। कुबेर श्रेष्ठी भी उन्ही मे से एक था। इन जैन श्रेष्ठियो ने अपने धर्म को भारत-व्यापी बनाने के लिए थैलियो के ही मुँह नही खोल दिए थे अपने महल, साधन और स्वय अपने-आपको भी उदयन के हवाले कर दिया था।

कुछ दूर चलने के बाद कुमारपाल और काक को रास्ते पर एक आदमी दिखाई दिया। उसका दिखना इतना आकस्मिक था मानो वह धरती फाडकर निकल आया हो।

काक ने पूछा "कौन है ?"

तुरत धीमे स्वर मे प्रत्युत्तर मिला "काकभट्टजी, मैं हूँ वाग्भट्ट! महाराज भी पधारे है न ? आप लोग चुपचाप मेरे पीछे चले आइए!" उसने दोनो हाथ जोडकर कुमारपाल को प्रणाम किया और चुपचाप आगे-आगे हो लिया।

आगे वाग्भट्ट, पीछे काकभट्ट और दोनो के बीच मे कुमारपाल—इस तरह चलते हुए तीनो व्यक्ति कुबेर भवन के पिछवाडे पहुँचे। पगध्वनि से कही अँधेरी रात की नीरवता भग न हो जाए इसलिए वे बहुत सँभल-सँभलकर चल रहे थे।

भवन का यह भाग एकदम निर्जन था। अनुचरो के मकान आदि भी बहुत पीछे छूट गए थे। दिन में भी शायद ही कभी कोई इधर आता था। एक ऊसर मैदान के बीचोबीच पगडण्डी जाती थी। वाग्भट्ट उसी पर चलने लगा।

कुछ दूर जाने पर एक कुआँ मिला। वाग्भट्ट कुएँ की जगत पर खडा हो गया। कुमारपाल और काकभट्ट उसके समीप आकर रुक गए। वाग्भट्ट ने चारो ओर देखा—न कही उजाला था न कही से कोई आवाज़ ही आ रही थी।

अन्त में उसने कहा "काकभट्ट! यह सबसे सुरक्षित जगह है। ऐन वक्त तक महाराज को यही रहना होगा और हमे इस जगह की रक्षा करनी होगी। महाराज को राजसभा में जाने से रोकने के लिए त्रिलोचन ने चारो ओर अपने चरो का जाल बिछा रखा है। हमारे यहाँ होने की जानकारी सिर्फ एक व्यक्ति को है और वे हैं कुबेरराज श्रेष्ठी। बाकी किसी को इस सम्बन्ध में कुछ भी मालूम नही है। आज की रात, महाराज, अपराध क्षमा हो, हम आपको इस कुएँ की जगत से ज्यादा अच्छा और आरामदेह बिस्तरा नही दे सकते।" वाग्भट्ट ने हाथ जोडे और आगे बोला "आज अन्तिम दिन है प्रभो! आप यही आराम कीजिए। सवेरा होने मे अभी देर

है। इधर घूरो का ढेर लगा है इसलिए एक तो कोई आएगा नही और यदि आया भी तो सूर्योदय के बाद ही आएगा। मुर्गा बोलते ही मैं फिर हाजिर हो जाऊँगा और काकभट्टजी, तभी आप बाहर जा सकेंगे। आगे क्या करना है इसका फैसला भी हम तभी करेंगे। अब महाराज को आराम करने दीजिए। कल सबेरे तो राजलक्ष्मी का स्वयंवर होगा।" वाग्भट्ट ने झुककर प्रणाम किया और तेज कदम रखता हुआ वहाँ से चल दिया।

उसके जाने के बाद काकभट्ट और कुमारपाल कुएँ के थाले मे उतर गए। थाला काफी प्रशस्त और गहरा भी था। नीचे पुआल बिछा था। दिन मे सम्भव है कोई इधर आता हो पर इस समय तो यहाँ परिन्दा भी नही था। काक और कुमारपाल निश्चिन्त हुए। इस समय उन्हें ऐसे ही शान्त और एकान्त स्थान की आवश्यकता थी। दोनो आदमी आराम से लेट गए।

थके-माँदे कुमारपाल को तो लेटते ही नीद आ गई, पर काकभट्ट जागता रहा। कल क्या होगा—विजय अथवा पराजय—इस चिन्ता ने उसकी आँखो की नीद हर ली थी। बहुत सोचने पर भी उसकी समझ में नही आ रहा था कि कुमारपाल राजसभा में कैसे पहुँच पायेंगे। फिर भावबृहस्पति का डर भी उसे व्यथित कर रहा था। सोमनाथ का वह श्रेष्ठ पुजारी यो तो मितभाषी था, लेकिन जब बोलने लगता तो सरस्वती उसकी वाणी में आ बैठती और भगवान सोमनाथ का आर्ष स्वर उसके शब्दो मे ध्वनित होने लगता था। पता नही, कल राजसभा मे भावबृहस्पतिजी क्या कहेंगे और कैसा आचरण करेंगे। अगर उन्होने कृष्णदेव की एक भी न चलने दी? लेकिन अभी चिन्ता करने से भी क्या होगा? जो पडेगी निबेट ली जाएगी। और वह आँखें मूंदकर निद्रा देवी की आराधना करने लगा, परन्तु उसे श्वान निद्रा ही मिल सकी।

सबेरे जैसे ही मुर्गे ने बाँग दी काकभट्ट उठ बैठा। उसे राजसभा में उपस्थित होना था, इसलिए तुरत जाना चाहता था, लेकिन वाग्भट्ट अभी आया नही था। थोडी देर बाद जब वह आया तो कुमारपाल भी जाग गया था।

इस बार वाग्भट्ट अकेला नही था। एक गौर वर्ण सुन्दर वणिक् भी उसके साथ था। बिना परिचय के ही काकभट्ट ने पहचान लिया कि नवागन्तुक कुबेरराज श्रेष्ठी होना चाहिए। वह इतना सुन्दर, सुकुमार और मोहक था कि कठोर-से-कठोर

शस्त्रधारी का हाथ भी उस पर वार करते हुए एक बार काँप जाता ! वह युवक, सज्जनता का प्रतीक और शील की मूर्ति था। उसके कपाल मे लगा केशर तिलक पिछली रात के अँधेरे मे भी दिखाई दे रहा था। लगता था जैसे लक्ष्मी ने स्वय अपने हाथो उसके भाल पर वह तिलक लगाया हो ! उसके हाव-भाव और दूसरो की ओर देखने मे एक प्रकार की शालीन महत्ता दृष्टिगोचर होती थी। उसे देखकर लगता था जैसे सारी दुनिया लक्ष्मी के चरणो मे लोट रही हो और अकेला वही सबसे परे और ऊँचा लक्ष्मी के वरद पुत्र की तरह खडा लोगो को अनुकम्पा से देख रहा है। इस समय वह एक रेशमी वस्त्र पहने और एक रेशमी वस्त्र ओढे हुए था। उसकी अँगूठी का नग शुक्र तारे की तरह जगमगा रहा था। दोनो कानो मे वह तीन-तीन बडे मोतियो के दो-दो लगर पहने हुए था। उसके आने पर ऐसा प्रतीत हुआ मानो इन्द्र का वैभव रूप धारण करके आ खडा हुआ हो। काक अपलक उसे देखता रह गया। कुबेर श्रेष्ठी की अपार सम्पत्ति के सम्बन्ध मे देश-देशान्तरो मे अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित थी। हजार हाथी उसकी गजशाला मे झूमते थे। अस्सी हजार गौएँ उसकी गोशाला मे रहती थी। सोना-चाँदी, माणिक-मोती और हीरे-जवाहरात उसके यहाँ रात-दिन बरसते रहते। छ करोड स्वर्ण मुद्राएँ उसके भण्डार मे हमेशा रहती थी। अस्सी मन रत्न उसकी पेटिकाओ मे भरे पडे थे। आठ हजार मन चाँदी तो वह जब चाहे तब निकालकर दे सकता था ! * उसकी उपस्थिति मे अकिंचनता का तो लेश भी नही रह जाता था। कल्पतरु की सम्पन्नता और कामधेनु की विपुलता तो जैसे उसके दाएँ-बाएँ चला करती थी। काक उसे आँखें फाडे देखता ही रह गया।

काक कुबेर श्रेष्ठी को आज पहली ही बार देख रहा था। उसने सुन रखा था कि लोग लक्ष्मीनन्दन के चेहरे पर जादू होने की बात कहते है। आज अपनी आँखो

* कुबेर श्रेष्ठी की सम्पन्नता के ये आँकड़े 'मोहपराजय' नाटक से लिये गए है। श्रेष्ठी की इस सम्पन्नता को अतिरजना नहीं कहा जा सकता। अकबर के समय दिल्ली के किसी वणिक के मर जाने पर उसका बयासी मन सोना बादशाही खजाने में जमा किये जाने का उल्लेख जोन्स डि लाइट (Joannes De Laet) नामक इतिहासकार ने किया है।

से देखकर उन्हे इस बात के सत्य होने की प्रतीति हो गई।

तभी वाग्भट्ट ने कहा "काकभट्टराज! अब आपको यहाँ से चलना चाहिए। महाराज ठीक समय पर राजसभा मे पहुँच जाएँगे। कुबेरराज श्रेष्ठी ने जिम्मेवारी ले ली है तो समझ लीजिए कि बेडा पार हो गया।"

"मुझ अकिंचन की सामर्थ्य ही क्या प्रभो।" कुबेरराज ने हाथ जोडकर कहा: "सब भगवान अरिहन्त की कृपा है। हमारे अहोभाग्य कि महाराज के श्रीचरण यहाँ पडे। अब यहाँ से चल देना चाहिए, नही तो विलम्ब हो जाएगा। अभी तो क्षण-क्षण की कीमत है प्रभो!"

और तुरत सब लोग वहाँ से चल पडे। कुबेरराज सबके आगे रास्ता दिखाता चला। वाग्भट्ट उसके पीछे था, कुमारपाल बीच मे और काक अन्त मे। सब चुप थे।

उदयन ने एक गाथा के सहारे पाटन के समूचे जैन समाज को तैयार कर दिया था। यदि पहले से वातावरण निर्मित न किया जाता तो इस अरबपति श्रेष्ठी की कभी हिम्मत ही न होती। आखिर तो यह राजद्रोह ही था। काक उदयन की कार्यप्रणाली के बारे मे जितना ही सोचता था मत्रीश्वर के लिए उसका मान उतना ही बढता जाता था।

वहाँ से वे लोग कुबेर-भवन के परकोटे के उस हिस्से के पास पहुँचे जो राजसभा के पास पड़ता था। परकोटे से लगा हुआ एक छोटा-सा मन्दिर था। मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर एक दीया जल रहा था। कुबेर सेठ ने दीया उठा लिया और नीचे तलघर की सीढियाँ उतरने लगा। सबने उसका अनुसरण किया।

दीये के उजाले में तलघर का प्रयोजन और वहाँ आने का रहस्य उजागर हो गया। मन्दिर के तलघर मे से परकोटे के बाहर निकलने का रास्ता था। परकोटे के उस पार भी ठीक ऐसा ही एक मन्दिर बना हुआ था। परकोटे मे बने एक दरवाजे मे दोनो मन्दिर जुडे हुए थे। उस पारवाले मन्दिर के मुख्य द्वार प्राय बन्द रखे जाते थे। जब वे लोग उस पारवाले तलघर में निकल आए तो श्रेष्ठी ने हाथ के दीपक को एक जगह रख दिया। दीवाल में खोदकर बनाई हुई मडपिका-जैसी इस तलघर की बनावट थी।

यहाँ पहुँचकर काक ने दीये के उजाले मे जो देखा तो चकित ही रह गया।

सव प्रकार की अभिषेक और शृंगार-सामग्री यहाँ पर रखी हुई थी। समीप ही एक आसन भी था, जिस पर एक व्यक्ति आराम से बैठ सकता था। कुबेरराज श्रेष्ठी ने हाथ जोडकर आसन की ओर संकेत करते हुए कहा : "महाराज इस आसन पर सुखपूर्वक विराजें। यहाँ सभी प्रकार की साधन सामग्री प्रस्तुत है। नीचे जलकुंड भी है। वस्त्राभूषण भी तैयार रखे हैं। अधोवस्त्र और उपवस्त्र सभी कुछ है। शृंगार-सामग्री भी है। जरी की पाग है। और यहाँ से वाहर निलकने के लिए केवल इस द्वार को खोलना होगा।"

कुबेरराज ने अपने पासवाली दीवार के एक प्रस्तर द्वार को दवाकर खोल दिया। वाहर से ठण्डी हवा का एक झोंका अन्दर आया ही था कि उसने उस दरवाजे को फिर वन्द कर दिया। कुमारपाल ने दरवाज़ा खोलने का उपाय देखा और ध्यान में रख लिया।

अव वाग्भट्ट ने सारी योजना पर प्रकाश डालते हुए कुमारपाल को समझाना शुरू किया "महाराज, पत्थर का यह दरवाजा आपको वाहर ले जाएगा। लेकिन यह रास्ते पर नहीं खुलता। इसके सामने एक छोटा-सा चौक पडेगा। वहाँ से पच्चीसेक कदम पर राजभवन की पिछली दीवार में एक छोटी-सी खिडकी है। खिडकी तक पहुँचने के लिए चार-पाँच सीढियाँ नीचे उतरना होगा। वह खिडकी हमेशा अरक्षित पड़ी रहती है और कभी खोली नहीं जाती। वहुत पहले महाराज कर्णदेव के समय एक वार खोली गई थी। संकट के समय रनिवास की महिलाओं के भागने के लिए उसे वनाया गया था। महाराज त्रिभुवनपालजी के जमाने का एक वूढा चौकीदार वहाँ हर समय पडा रहता है। मुँहअँधेरे ही सैनिकों की निगाह वचाकर महाराज को उस खिडकी तक पहुँच जाना होगा। आज वह खिडकी खुली मिलेगी। सर्वदेव ने उधर की व्यवस्था कर दी है। अन्दर जाने के वाद कव, क्या और कैसे करना, यह सव वहाँ की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। कृष्णदेवजी ने कीर्तिपाल और महिपाल को वुलवा लिया है और राजसभा में वे अपना दावा पेश करेंगे। वहाँ महाराज अवसर का समुचित उपयोग कर ही लेंगे, ऐसी सवकी धारणा है। जैसी परिस्थिति हो वैसा निश्चय और आचरण आपको करना होगा। अभी तो मुख्य वात राजसभा में प्रवेश करना है।"

कुमारपाल चुप सुनता और मन-ही-मन सोचता रहा। फिर वोला "वाग्भट्टजी,

मेरी आपकी यह पहली ही भेंट है। बताइए, आपको क्या लगता है ?"

"सब-कुछ पका-पकाया रखा है महाराज ! आपको केवल अवसर का उपयोग कर लेना है। हम भी वहाँ रहेंगे ही।"

"अच्छी बात है। अब आप जाइए, और श्रेष्ठीजी, आप भी।"

कुमारपाल उठकर खडा हो गया। उसने पूरे तलघर मे एक चक्कर लगाया। एक क्षण पत्थर के दरवाजे के सामने खडा रहा। उसे खोलनेवाली कल को दबाकर देखा। फिर अपनी लम्बी तलवार की मूठ पर हाथ रखा और आत्मविश्वास से भरे स्वर मे बोला "सब ठीक है। वाग्भट्ट और काकभट्ट, आप जा सकते है और श्रेष्ठीजी, आप भी। अब यहाँ से सब काम योजना के अनुसार ही होगे ..."

कुबेरराज ने जाने से पहले आसन के नीचे से एक रत्नजटित म्यान निकालकर कुमारपाल को देते हुए कहा "यह इसके लिए है प्रभो !" और उसने अँगुली से तलवार की ओर इशारा किया। फिर चारो ओर रखी अभिषेक सामग्री को उसने एक अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। कुमारपाल उसका मतलब समझ गया।

वाग्भट्ट और काकभट्ट ने कुमारपाल को प्रणाम किया और दरवाजे की राह तलघर की सीढियाँ चढकर चले गए। उनके बाद कुबेर श्रेष्ठी भी हाथ जोडकर चलता बना।

सबके चले जाने के बाद कुमारपाल नीचे जलकुण्ड पर गया और तैयार होकर ऊपर आ गया। थोडी देर वह आसन पर बैठा रहा। इस समय उसका हृदय पक्का और सकल्प दृढ था और वह हर बाधा का सामना करके अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के निश्चय से भरा हुआ था। थोडी देर बाद वह उठ बैठा और अपनी लम्बी तलवार की मूठ पर हाथ रखे उसके सहारे-सहारे मन्दिर मे धीरे-धीरे चक्कर लगाने लगा।

जैसे-जैसे वह घूमता गया गुर्जर देश को बचाने का उसका आत्मविश्वास दृढ और सिहासन प्राप्त करने का उसका निश्चय बलवान होता गया। उसकी चाल तेज और कदम अधिक मजबूत होते गए। चेहरा उत्साह और उल्लास से दमकने लगा। आँखो मे अग्नि-स्फुलिग बरसने लगे। वह तलघर के बीचोबीच तलवार की टेक लगाकर खडा हो गया। उसने कान लगाकर सुना तो जैसे कोई नीरव वाणी मे कह रहा था, 'आखिर तो यही है, यह तेरी लम्बी तलवार, तुझे राज दिलाने-

वाली !' वह सिर उठाकर ऊपर के झरोखे की ओर देखने लगा। झरोखे के पार उसे गुजरात का पूरा साम्राज्य दिशाओं तक फैला हुआ दिखाई दे रहा था। वह अपलक नयनों से उस दृश्य को देखता खड़ा रहा, मानो किसी सुन्दर सपने में लीन हो गया हो।

लेकिन दूसरे ही क्षण हड़बड़ाकर जाग पड़ा।

—बाहर जोरों से शंख फूंके जाने की आवाज गूंज उठी थी।

कुमारपाल ने अपनी जरी की पाग को ठीक किया और रत्नजटित उपरिवस्त्र को ढंग से कन्धों पर लिया। फिर तलवार को हाथ में लिये तेजी से चलता हुआ पत्थर के दरवाज़े के पास आ खड़ा हुआ। वहाँ उसने कान लगाकर सुना तो बाहर से शंख, नगारों, भेरी, मृदंग, पखावज, रणसिंगों आदि का समवेत स्वर आसमान को निनादित करता सुनाई दिया।

उसने पूरे आत्मविश्वास के साथ पत्थर के दरवाज़े की कल पर हाथ रखकर दबाया। दीवाल में एक आदमी के निकलने लायक छेद हो गया। वह फौरन उस छेद की राह बाहर निकल गया।

अब उसने अपने-आपको एक चौक में खड़ा पाया। ठीक सामने राजभवन का ऊँचा परकोटा दिखाई दे रहा था। वह चौक के एक खम्भे की आड़ में खड़ा होकर देखने लगा

१८ : राजसभा

कुमारपाल थोड़ी देर वहीं खम्भे की ओट में ठिठका खड़ा रहा। वाग्भट्ट ने जिस खिड़की का उल्लेख किया था वह सामने ही होनी चाहिए। राजमहल का परकोटा तो यही है। खिड़की भी अवश्य यहीं कहीं होनी चाहिए। पूरब में पौ फट रही थी। मुँहसूझना होता जा रहा था। रास्ते पर लोगों का आवागमन अभी आरम्भ नहीं हुआ था। यही दो-चार क्षण उसके अपने थे और इतने-से समय

मे ही उसे सब-कुछ करना था ।

वह चौक खुला हुआ नही था । चार या छह खम्भो के सहारे छत से ढका हुआ था । सामने की ओर छोटे चबूतरे-से बने थे, जिन पर ईंधन का बोझा बेचनेवाले अपना भार रखकर सुस्ता लिया करते थे । कुमारपाल ऐसे ही एक चबूतरे के पास-वाले खम्भे की ओट खडा होकर देखने लगा कि रास्ता साफ तो है और कोई आ-जा तो नही रहा है । तभी दो घुडसवार उसे अपनी ओर आते दिखाई दिये । वह साँस खीचकर खम्भे से सट गया ।

घुडसवार ठीक उसके पास से निकले । वे बातें करते जा रहे थे । कुमारपाल कान लगाकर सुनने लगा । पहचानने देर न लगी । एक तो मल्हारभट्ट था, दूसरा जरूर त्रिलोचनपाल होना चाहिए । अकेले वे ही थे । उनके साथ या पीछे दूसरा कोई भी नही था । ये निकल जाएँ तो वह दौडकर खिडकी के पास पहुँच जाएगा । तभी उसने सुना, उनमे से एक कह रहा था

"यही पास मे एक खिड़की है मल्हारभट्टजी ! लेकिन वह तो कई बरसो से बन्द पड़ी है । वहाँ का चौकीदार देवमल्ल अपने भरोसे का आदमी है । लेकिन फिर भी किसी को वहाँ नियुक्त कर देना चाहिए और जल्दी ही "

कुमारपाल के रोगटे खडे हो गए । जिस खिडकी से उसे जाना था ये उसी की नाकेबन्दी की बात कर रहे थे ।

"यहाँ कहाँ ?" पूछनेवाला मल्हारभट्ट था ।

"यही . " त्रिलोचन ने अपने घोडे की बाग खीचकर कहा । कुमारपाल के जी मे आया कि घोडे और घुडसवार को यही मार गिराए । लेकिन वह दुस्साहस ही होता । इस तरह तो वह फँस जाता । वह कान लगाकर सुनने लगा

"वहाँ, सामने रास्ते पर, तीन-चार सीढियाँ नीचे जाती हैं । वही परकोटे का गुप्त रास्ता है । इसकी हिफाजत का इन्तजाम फौरन कर देना चाहिए । आप जाते ही चार-पाँच तगडे हथियारबन्द भटो को भेज दीजिए । यदि उसने मुख्य द्वार से प्रवेश करने की कोशिश की तो बर्बर " त्रिलोचन ने बात वही अधूरी छोड दी । शायद उसे खयाल आ गया था कि दीवालो के भी कान होते है, जबकि वह बीच रास्ते के चौक मे बोल रहा था । सतर्कता के लिए उसने एक निगाह अपने चारो ओर डाल ली ।

कुमारपाल समझ गया कि अब एक क्षण भी खोना सकट को गा-बजाकर न्यौता देना होगा। इसलिए जैसे ही मल्हारभट्ट और त्रिलोचनपाल वहाँ से आगे वढे उसने सीधे खिडकी का रुख किया। वरसो के अज्ञातवास के कारण वह दवे पाँवो चलने का इतना अभ्यस्त हो गया था कि उसकी पदचाप किसी को सुनाई भी न दी।

वैसे भी उसे अपने पाँवो पर वडा भरोसा था। एक वार चलने लगता तो सारे सकट दूर हो जाते और वह हजारो मे अपने आपको सुरक्षित अनुभव करने लगता था।

पलक झपकते वह रास्ते के छोर पर था। फुर्ती से चारो सीढियाँ उतरकर खिडकी के सामने पहुँचा। अभी दरवाजो पर हाथ रखा भी नही था कि खिडकी खुलती दिखाई दी। वह चौंककर एक कदम पीछे हट गया। छल! विश्वासघात!! वह सोचने लगा, इस समय खिडकी के पीछे कौन होगा—मित्र या शत्रु?

तभी एक परिचित स्वर उसे सुनाई दिया "प्रभो! जल्दी कीजिए, एकदम जल्दी "

"तुम! यहाँ?" कुमारपाल ने वोलनेवाले को पहचान लिया। वह वौसरि था।

"पूछताछ वाद मे कर लीजिएगा प्रभो!" वौसरि ने दरवाज़े के पीछे से ही कहा "अभी तो जल्दी किजिए "

वौसरि का कहना सच था। कुमारपाल खिडकी के अन्दर आया और दरवाजे वन्द हुए ही थे कि उस पार से किसी पहरुए की डपटती हुई आवाज़ सुनाई दी "कौन चल रहा है? कौन है?"

उधर से किसी घुडसवार ने जवाव दिया। कुमारपाल के रोएँ खडे हो गए। यदि एक क्षण की भी देर हो जाती तो महा अनर्थ हो जाता। लेकिन इस तरह की घटनाएँ उसके जीवन मे प्राय होती रही थी, इसलिए उसे ज्यादा घवराहट नही हुई। मन को तुरत स्थिर कर वह अगले कदम के वारे मे सोचने लगा। इस समय यह पूछना कि वौसरि कहाँ रहा और कहाँ से आया वेकार ही था। वाहर के मार्ग पर लोगो का आना-जाना शुरू हो गया था। इधर अन्दर भी कुछ हलचल होने लगी थी। अभी तो हर क्षण का उपयोग कर उसे आगे वढते जाना था। जरा-सी

भूल सारे किये-कराए को चौपट कर सकती थी। फिर यहाँ सलाह-मशविरे के लिए न उदयन था न वाग्भट्ट। सारे निर्णय स्वय उसी को करने थे।

वह क्षण-भर ठिठककर सोचने लगा कि अब किस ओर जाना चाहिए। उसने यो ही वौसरि के कन्धे पर हाथ रखा और एकवारगी चौंक पडा। जाने-पहचाने भिखारी वौसरि के स्थान पर उपाहनकार वौसरि उसके पाँवो के पास झुका हुआ था। इस वौसरि ने उपाहनकार की वेश-भूषा इतनी सही बना रखी थी कि किसी को भी सन्देह नही हो सकता था।

तभी बूढे चौकीदार देवमल्ल ने गद्गद स्वर मे कहा "इस खिडकी की राह एक दिन देवप्रसादजी भी ठीक आपकी ही तरह अन्दर आए थे और इसी खिडकी की राह मैंने त्रिभुवनपालजी को यहाँ से बाहर निकाला था। मेरा अहोभाग्य कि आज आपका स्वागत करने का शुभ अवसर मिला। भगवान की कृपा कि तीसरी पीढी को रास्ता दिखला रहा हूँ।"

"देवमल्लजी, आपके उपकारो को हम कभी भुला नही सकेंगे। अब हमें यहाँ से कहाँ जाना होगा? मन्त्रीश्वर ने इस सम्बन्ध मे कुछ कहा है वौसरि?"

"प्रभो! मैं तो उपाहनकार हूँ। मेरा नाम है मगल मोची। मुझसे मन्त्रीश्वर कुछ कहने भी क्यो लगे! उन्होने कुछ बताया नही।" नीचे झुका हुआ वौसरि कुमारपाल के पाँव में रत्नजटित मोजडी पहना रहा था। अब कुमारपाल को याद आया कि वह नगे पाँव है। कल कुवेर श्रेष्ठी के यहाँ जाते समय उसने पाँवो मे कपडे लपेट लिये थे जिससे चलने में आवाज़ न हो। पाँव मे जूतियाँ पहनने की बात वह भूल ही गया था।

उसने अति स्नेह से वौसरि की पीठ थपथपाते हुए कहा कहा "तुझे मोजडियाँ देकर भेजा किसने वौसरि। काकभट्ट ने या वाग्भट्ट ने? किसे याद रह गया कि मैं नगे पाँवो हूँ?"

"मन्त्रीश्वर उदयन मेहता ने मुझे यहाँ भेजा है प्रभो! देथली (देवस्थली) से एक मोची आया है मोजडियाँ लेकर। ये देवमल्लजी भी मूल रहनेवाले तो देथली के ही हैं।"

"अच्छा! देथली के है?"

"हाँ प्रभो!" देवमल्ल ने कहा "मैं देथली का हूँ, और आज सारा देथली

राजसभा में होगा। मन्त्रीश्वर ने मुद्दाम आदमी भेजकर लोगो को बुलवाया है। हमारे वहाँ का मशहूर गायक सोलाक भी आया है। उसके गाने की क्या तारीफ करूँ! जब भी राग अलापना शुरू करता है तो सूखे ठूंठ में भी कोपलें निकल आती हैं। खैर, अभी तो महाराज मेरी झोपडी में चलकर उसे पवित्र करें। बिलकुल पास ही है। वहाँ पिछवाडे से सीधे राजसभा के मुख्य द्वार पर पहुँचा जा सकता है।"

कुमारपाल चौंक पडा। राजसभा के मुख्य द्वार के बारे में मल्हारभट्ट और त्रिलोचनपाल की बातें उसने अभी-अभी ही तो सुनी थी।

"वौसरि, तुम्हे और तो कुछ नही कहना है? और यहाँ से तुम जाओगे कहाँ?"

"मेरा काम था महाराज को जूतियाँ पहनाना, सो पूरा किया, अब मैं यहाँ से लोगो की भीड-भाड में जा मिलूँगा। लोग आने लगे हैं। जल्दी ही महाराज के नाम का जयघोष होगा और जयध्वनि करनेवालो में एक स्वर आपके सेवक इस वौसरि का भी होगा। महाराज की जय हो!" उसने हाथ जोडकर सिर झुका दिया।

वौसरि के जाने के बाद कुमारपाल देवमल्ल चौकीदार की झोपडी में चला गया।

थोडी देर बाद मगल वाद्य बजने लगे, इसका अर्थ था कि राजसभा का अधिवेशन आरम्भ होने जा रहा है। कुमारपाल ने राजमहल के सामनेवाले आँगन की ओर देखा। दरवाज़े खुले हुए थे और लोगो की भीड-पर-भीड चली आ रही थी। उस विशाल प्रागण में एक ओर हाथी, घोडे, पालकियाँ, सुखासन, तामझाम आदि की कतारें लगी थी। चारो ओर से नदी की धाराओ की तरह जनप्रवाह उमडा चला आता था।

कुमारपाल भी चलने को तैयार हुआ। उसने देवमल्ल से एक सादा कपडा लेकर अपने कीमती वस्त्रो पर लपेट लिया। रत्नजटित म्यान एक फटे कपडे मे लपेटकर बगल मे दबा ली। पगडी पर भी एक मैला-सा चिथडा लपेटा। अब वह अनेक सामान्य राजपूतो-जैसा लग रहा था। दीवार मे लगे काँच मे उसने अपनी शक्ल देखी। रूप-परिवर्तन बिलकुल ठीक हुआ था। राजमहल की चप्पा-

चप्पा धरती उसकी देखी-भाली थी। यहाँ से वह सीधा राजमहल की सीढियो की ओर जाना चाहता था। जैसे ही उस ओर जानेवालो की भीड दिखाई देगी वह उसमे शामिल हो जाएगा।

राजमडप मे तो कोई सामान्य प्रजाजन जा नही सकता था। वह जगह हमेशा विशिष्ट जनो के लिए सुरक्षित रखी जाती थी। इस समय परकोटे के दरवाज़े खोल दिये गए थे। यदि बाहर के मैदान मे भीड समा न सके तो कुछ लोगो को अन्दर लेने के लिए यह योजना की गई थी। कुछ लोगो ने भीतर आना शुरू कर भी दिया था। कुछ द्वारपालो की नजर चुकाकर तो कुछ अपना अधिकार जतलाते हुए अन्दर चले आ रहे थे। बहुत से लोग राजमहल को देखने के लिए इधर-से-उधर घूम रहे थे। कुमारपाल जानता था कि शीघ्र ही प्रजाजन को इस सुविधा से वचित कर दिया जाएगा और लोगो के अन्दर प्रवेश करने और घूमने-घामने पर रोक लगा दी जाएगी। रोक-थाम के पहले ही कुमारपाल वहाँ पहुँच जाना चाहता था, इसलिए जैसे ही राजमहल की ओर जानेवाली भीड दिखाई दी वह उनके पीछे हो लिया और प्रासाद की सीढियो की ओर बढने लगा। वह अपने बैठने के लिए कोई स्थान निश्चित कर लेना चाहता था। कई दर्शक सीढियो पर यहाँ-वहाँ बैठने लगे थे। कुमारपाल को अपने बैठने के लिए सीढियाँ अच्छी लगी और उसने वहीं बैठने का फैसला किया। वहाँ बैठने के दो लाभ थे: एक तो सहसा किसी के द्वारा देखे जाने का अन्देशा नही था और दूसरे, राजसभा का प्रवेश-द्वार समीप था।

जब वह सीढियो के पास पहुँचा तो अधिकाश जगह भर चुकी थी। बीच मे एक पगडण्डी-सी छोड़कर प्राय. सब जगह छोटे ज़मीदारो, राजपूतो, सामान्य स्थिति के श्रेष्ठियो और राजकीय कर्मचारियो द्वारा घेरी जा चुकी थी। केवल सबसे नीचेवाली सीढी पर एक आदमी के बैठने लायक जगह खाली थी। कुमारपाल वही बैठ गया और धीरे-धीरे खिसकता और जगह बनाता हुआ काफी ऊपर तक पहुँच गया। यहाँ से राजमडप का फासला अधिक नही था। लोगो का ध्यान बँटाने के लिए वहाँ और भी बीसियो तरह की बाते थी, इसलिए किसी ने देखकर भी नही देखा कि सामान्य कोटि के ज़मीदार-जैसा यह व्यक्ति कौन है जो उचकता और खिसकता हुआ राजमडप के निकट पहुँचता जा रहा है।

इस तरह कुमारपाल इतने ऊँचे पहुँच गया कि वहाँ से राजमहल की पीठिका केवल दस सीढ़ियाँ ऊपर रह गई। अपने अगम्य आसन पर बैठा वह लोगों की धक्का-मुक्की देखने लगा। भीड़ हर क्षण बढ़ती जा रही थी और शोर-शराबा कानों के पर्दे फाड़ने लगा। सूर्योदय होते-होते तो मैदान खचाखच भर गया और वहाँ तिल रखने को भी जगह नहीं रह गई। राजमहल के मैदान के बाहर बाजारों और सड़कों पर, पेड़ों, अटारियों और छतों पर, झरोखों, दरवाजों, खिड़कियों और बारजों आदि में सब कहीं आदमी-ही-आदमी दिखाई दे रहे थे। यहाँ तक कि खम्भों, मन्दिरों के शिखरों और तोरणों पर भी आदमी टंगे हुए थे। ऐसी कोई जगह नहीं थी जहाँ दो-चार आदमी बैठे न हों। जहाँ तक दृष्टि जाती बस नरमुंड-ही-नरमुंड दिखाई देते थे; और हजारों कण्ठों का समवेत स्वर गरजते समुद्र की तरह प्रतिध्वनित हो रहा था।

राजमहल का मुख्य मंडप मैदान की सतह से पूरी एक सौ सीढ़ियों की ऊँचाई पर सुमेरु पर्वत की तरह शोभा पा रहा था। मंडप पर सोने का एक ऊँचा दण्ड था जिसके सिरे पर महाराज सिद्धराज का गुर्जरी कुक्कुट ध्वज शान से लहरा रहा था। मण्डप में जानेवाले दरवाजे आज पूरी तरह खोल दिये गए थे। उनकी राह पीछेवाली गगनचुम्बी अट्टालिकाओं की पाँतें और मनोहर स्तम्भावलियाँ दिखाई दे रही थीं। मंडप के ठीक बीच में महाराज सिद्धराज का स्वर्ण सिंहासन शोभा पा रहा था। शिल्प-सौन्दर्य और रोब-दाब में वह सिंहासन इन्द्रासन को भी मात करता था। इस समय उस पर महाराज सिद्धराज की स्वर्ण पादुकाएँ रखी हुई थीं। ऊपर तने रत्नजटित छत्र से मोतियों की मालाएँ लटकी हुई थीं। अप्सराओं-जैसी दो अत्यन्त सुकोमल सुन्दरी चामरधारिणियाँ खड़ी चँवर डुला रही थीं। पीछे शिलाखंड-जैसा एक लम्बा-तड़ंग और मोटा-ताजा प्रतिहारी महाराज का राजदंड धारण किये खड़ा था। सिंहासन के चारों ओर बैठे भाट, चारण और वन्दीजन गुर्जर-नरेश सिद्धराज जयसिंह का यश बखान रहे थे। रंग-बिरंगे परिधान पहने वारांगनाओं की पाँतें मधुर मोहक स्वर में काव्य-पाठ कर रही थीं। उनका काव्य-गायन सुनहरे घुँघरुओं की रिणकिण-जैसा निनादित हो रहा था। सिंहासन के ठीक पीछे नारी सैनिक नंगी तलवारें लिये रणदेवियों की भाँति खड़ी सभी प्रेक्षकों का ध्यान आकर्षित कर रही थीं।

भीड क्रमश वढती गई और देखते-देखते दर्शकों ने राजमडप मे भी आसन जमाना शुरू कर दिया। वहाँ जो थोडी-वहुत जगह वची रही वह केवल उच्चाधिकारियो के लिए सुरक्षित रखी गई थी। सहसा एक ऊँचा हाथी झूमता-झामता आता दिखाई दिया। कुमारपाल ने उधर देखा। महामात्य की सवारी चली आ रही थी। भीड ने हाथी के जाने के लिए मैदान मे एक पगडडी-सी वना दी। हाथी राजमहल के चौक मे आकर ठहर गया। महामात्य महादेव दोनो हाथो में उपवस्त्र लिये जनसमूह का अभिवादन स्वीकार करता हुआ राजमडप की ओर वढने लगा। सीढियाँ चढ़कर उसने राजमडप में प्रवेश किया। सिंहासन के समीप पहुँचकर उसने महाराज की स्वर्ण पादुकाओ का स्पर्श किया। उपस्थित जनसमूह ने यह देखा और वडे उच्च स्वर से सिद्धराज महाराज जयसिंहदेव के नाम का जयजयकार किया। वास्तव में यह जयघोषणा महामात्य के पादुका-स्पर्श का अनुमोदन था। महामात्य ने दोनो हाथ जोडकर नमस्कार किया और फिर सिंहासन के समीप एक छोटे-से ऊँचे आसन पर वैठ गया। कवि, वदीजन, पुरोहित, सामन्त, रावराणा, छुटभैया आदि सभी आ गए थे। महामात्य ने उपस्थित जनसमूह पर एक दृष्टि डाली। उसकी उन निगाहो मे किमी भी प्रकार के आग्रह का अतिरेक नहीं था। पाटन के महामात्य के सर्वथा अनुरूप समता का भाव ही उसकी उस दृष्टि में दिखाई दे रहा था। राजा और राज्य के रक्षक के रूप में जनता उसका आदर करती थी, लेकिन साथ ही लोगो को उससे यह शिकायत भी थी कि महामात्य में न तो उत्साह है और न प्रेरणा ही। किसी भी नये काम में हाथ डालने से वह हमेशा कतराता रहता था। न वह ऊधो के लेने मे रहता न माधव के देने मे। किसी के प्रति अपनी पसन्द या नापसद भी वह कभी जाहिर नही करता था। हर स्थिति में शान्तिपूर्वक व्यवस्था वनाये रहता था। लोग उसके इस स्वभाव से पूर्णत परिचित और अभ्यस्त भी हो गए थे। महामात्य के पद के साथ दडदादाक के जमाने का रोवदाव खत्म हो गया था। महादेव के कार्यकाल में सहज शान्त व्यवस्था और पक्ष-विपक्ष से परे अनुशासन की पद्धति प्रचलित हुई और चल रही थी।

महामात्य के आने के वाद दूसरे अधिकारी भी एक-एक कर आने लगे। अव सभाजन आगन्तुको को देखने लगे थे। सवकी आँखें चौक में जमा भीड के

बीच जो पगडडी-सी बन गई थी उस ओर लग गई। हर एक यह जानने को उत्सुक था कि देखें अब कौन आता है।

थोड़ी देर सन्नाटा रहा और फिर सहसा जनसमुदाय इस तरह विक्षुब्ध हो उठा मानो समुद्र तरगित हो रहा हो। बात यह थी कि उदयन मेहता चला आ रहा था, और पानी में पत्थर फेंकने से जिस तरह लहरें उठने लगती है उसी प्रकार राजसभा में उपस्थित जनसमूह हिलोरें लेने लगा था। किसी कोने से उदयन को प्रशस्ति के फूल समर्पित किये गए तो किसी कोने से अपशब्दो के काँटे फेके गए। कुछ लोगो ने उसके केशर तिलक की प्रशसा में दो बोल कहे तो किसी ने गाली देते हुए कहा कि यह पीला टीका सारे देश का सत्यानाश कर देगा। किसी को मत्रीश्वर भयकर लग रहा था तो कइयो को सौम्य और महान। उपेक्षणीय वह किसी को भी नही लगा। निन्दा या स्तुति उसे सभी से सहज भाव से उपलब्ध हुई। लेकिन वह स्वय दोनो हाथ जोडे और सिर झुकाये इस तरह चलता रहा मानो निन्दा-स्तुति और आदर-मान की उसे रचमात्र भी परवाह न हो। चेहरे पर उसके वही सदा की मुस्कराहट थी। लेकिन आँखो मे कही बहुत गहरे यह चिन्ता भी दुबकी हुई थी कि किसी काम में कोई खामी न रह जाए और विरोधी पक्ष अनजाने में वार न कर बैठे। किसी ने उदयन की इस प्रच्छन्न चिन्ता को चाहे न देखा हो, परन्तु भीड में बैठे कुमारपाल से उसकी वह चिन्ता छिपी न रह सकी। उसकी निगाहें उदयन पर गड-सी गईं और अब वह उसकी हर हलचल को बारीकी से देखने लगा।

उदयन सीढियाँ चढकर ऊपर पहुँचा। राजमडप के प्रवेशद्वार में कदम रखते हुए एक क्षण के लिए, बल्कि कहना चाहिए कि क्षण के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अश के लिए वह काँप-सा उठा। लगा जैसे उसकी आँखो ने कोई ऐसी चीज देख ली है जिसे दूसरा कोई देख नही पाया अथवा देखकर भी समझ नही पाया। मत्रीश्वर के उस काम को किसी ने नही देखा। किसी को फुर्सत ही नही थी देखने की। लेकिन कुमारपाल ने सब-कुछ देखा और समझ भी गया। क्षण के उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म अश में कुमारपाल के लिए मृत्यु भी थी और सिंहासन भी था; और इसी लिए वह उदयन के उस कम्प को देख सका था। उसके बाद कुमारपाल ने उदयन से अपनी दृष्टि बिलकुल ही नही हटाई। जब उदयन वहाँ से आगे बढ़ा

तो कुमारपाल को उसकी चाल में तेज़ी और व्यग्रता दिखाई दी। जब उदयन अपने उपरिवस्त्र से हवा करने लगा तो कुमारपाल को उसमें उसकी अधीरता दिखाई दी। और जब उदयन मुस्कराकर महामात्य से बातें करने लगा तो कुमारपाल को उसके चेहरे में चारो ओर सावधानी से देखते रहने की सतर्कता प्रतीत हुई।

कुमारपाल त्रिलोचन की बात सुन चुका था। राजमडप के प्रवेशद्वार मे कदम रखते हुए उसने उदयन का कम्प भी देखा। उसे विश्वास हो गया कि उस द्वार मे उसके लिए साक्षात् मृत्यु ही बैठी हुई है। बर्बरक वहाँ अवश्य होना चाहिए। अपने तई वह एकदम सावधान हो गया। तभी खयाल आया कि मेरी हलचल पर निगाह रखनेवाले लोग भी यहाँ हैं। वह फौरन देवस्थली के सामान्य छुटभैये-जैसा व्यवहार करने लगा। मानो पहली ही बार राजसभा मे आया हो इस तरह आँखें फाडे विस्मय से अपने चारो ओर देखने लग गया।

फिर एक-एक कर काक, केशव सेनापति, दडनायक, मडलेश्वर आदि आये। उनके बाद भीड मे सहसा खलबली मची और जोर का कोलाहल सुनाई दिया। कुमारपाल ने उधर निगाहें घुमाईं तो उसका अपना ही भाई महीपाल आता दिखाई दिया। उसके पीछे-पीछे कीर्तिपाल भी चला आ रहा था। दोनो मूल्यवान वस्त्राभूषण पहने हुए थे। सिर पर जरी की पगडियाँ थी। कमर मे तलवारें लटक रही थी। उनके पीछे-पीछे कृष्णदेव इस तरह चला आ रहा था मानो उनका अगरक्षक ही हो। कृष्णदेव को देखते ही कुमारपाल के आस-पास बैठे कई शस्त्रधारी राजपूत उसकी अभ्यर्थना में उठकर खडे हो गए। कही लोग शका न करें इसलिए कुमारपाल भी सबके साथ खडा हो गया था और फिर तुरत बैठ भी गया। कृष्णदेव के इस सम्मान से कुमारपाल को इस बात का पता लग गया कि शस्त्रधारी राजपूतो मे उसका कितना प्रभाव है और हवा का रुख किधर है। कुमारपाल को ऐसा आभास भी हुआ कि महीपाल और कीर्तिपाल के साथ कृष्णदेव को आया देख उदयन मेहता कुछ चिन्तित हो गया—सम्भव है उसे किसी षड्यन्त्र की आशका हुई हो। लेकिन ऊपर से तो वह शान्त और निराकुल ही बना रहा और तुरंगाध्यक्ष का स्वागत कर उसके बैठने के लिए जगह कर दी। कृष्णदेव महामात्य के ठीक सामने, सिंहासन के दूसरी ओर प्रथम

स्थान पर बैठ गया। महीपाल और कीर्तिपाल राजमडप के छोर पर ही रुक गए थे।

एक बार फिर जनसमूह ने पहले की ही तरह जयघोष किया। इस बार व्यक्ति तो कोई आता दिखाई न दिया। एक बहुत ऊँचा हाथी सूँड उठाकर चला आ रहा था। वह राजमहल के चौक मे आकर झूमने लगा। हाथी के महावत चौलिग ने अपने सोने की मू वाले अकुश का प्रहार कर उसे स्थिर किया और स्वय हाथी के गण्डस्थल पर खडा हो गया। हाथी की पीठ पर सोने का हौदा कसा हुआ था। उस हौदे मे सोमनाथ के पुजारी भावबृहस्पतिजी दोनों हाथ उठाये जनसमूह को आशीर्वाद देते हुए खडे थे। इनके पीछे प्रतापदेवी और उसके साथ महाराज की पादुका को प्रणाम करता हुआ गजविद्या-विशारद युवक त्यागभट्ट खडा था।

पाटन का हर व्यक्ति सोमनाथ का परमभक्त था। इसलिए जब उन्होंने अपनी आँखो के सामने सोमनाथ के पुजारी भावबृहस्पति को देखा तो सब-के-सब भाव-विभोर हो उठे। और फिर प्रतापदेवी और कुमारतिलक त्यागभट्ट की उपस्थिति ने तो उनके भावोन्मेष को जैसे और भी ओप चढा दिया। उस मानव-महासागर में से हजारो शखध्वनियो-जैसा घोष-निर्घोष उठने लगा—'जयसिंहदेव महाराज की जय! जय सोमनाथ!! भावबृहस्पति महाराज की जय!!! कुमारतिलक त्यागभट्ट की जय!!!!'

राजमडप में बैठे अधिकारियो और राजपुरुषो ने इस जयनिनाद को सुना तो चौंक उठे। भावबृहस्पति और प्रतापदेवी के आने की बात तो उन्हें मालूम थी, लेकिन इनके साथ त्यागभट्ट भी आएगा, यह नही जानते थे। उसका इस तरह आना उन्हें सर्वथा अनुचित और अनधिकार चेष्टा प्रतीत हुआ। लेकिन इस समय कुछ किया नही जा सकता था, इसलिए चुप बैठे देखते रहे। वे तीनो राजमहल के चौक में होकर सीढियो की ओर आ रहे थे। कृष्णदेव ने आँखो-ही-आँखो मे महामात्य से बात कर ली। महामात्य की निगाहो ने फौरन त्रिलोचनपाल को खोज निकाला। महादेव अपनी व्यवस्था में रचमात्र व्यवधान नही चाहता था। दूसरे ही क्षण त्रिलोचनपाल राजमडप के प्रवेशद्वार पर दिखाई दिया। जैसे ही भावबृहस्पति और प्रतापदेवी वहाँ पहुँचे उसने सोमनाथ के पुजारी को

सादर नमस्कार किया और भाववृहस्पति को सिंहासन की ओर ले चला। पुजारी बाबा सिंहासन के आगे पहुँचे और दोनों हाथ उठाकर शुद्ध संस्कृत भाषा में चौलुक्य-प्रशस्ति के श्लोक बोलने लगे। सब खडे हो गए। प्रशस्ति-वाचन समाप्त हो जाने पर त्रिलोचन उन्हें सिंहासन के पीछे उनके लिए निर्धारित आसन पर बिठा आया। लेकिन जैसे ही त्यागभट्ट उधर जाने लगा त्रिलोचन ने हाथ जोड़कर उससे कहा "प्रभो! आप यहाँ ." और जहाँ पर महीपाल एवं कीर्तिपाल बैठे थे उधर इशारा किया।

लोगों को यह अच्छा नहीं लगा। कई लोग त्यागभट्ट को महाराज सिद्धराज का उत्तराधिकारी समझते थे। सभा-भवन में उसके बैठने के स्थान को लेकर जब फुसफुसाहट होने लगी तो महामात्य महादेव अपने स्थान से उठकर सिंहासन के सामने आया और ऊँची, गम्भीर आवाज में बोला "सारे सभाजन सुने! आज महाराज सिद्धराज जयसिंह की पादुकाएँ न्यायासन पर विराजमान हैं। दुर्गपालजी, जो भी अपने-आपको गादी का उत्तराधिकारी मानते हों वे राजमंडप के छोर पर बैठें। उनके बैठने की व्यवस्था वहीं की गई है। इस व्यवस्था का पूरी तरह पालन किया जाए। मन्त्रिमंडल हर प्रत्याशी के दावे को एक-एक कर सुनेगा। सभी को अवसर दिया जाएगा। मन्त्रिमंडल का काम होगा सुनना, निर्णय देगी राजसभा।"

तभी सिंहासन के पीछे खडी नारी सेना के सैनिक एक ओर हट गए। सब के सिर अपनी-अपनी तलवारों पर अभिवादन की मुद्रा में झुक गए। अन्त पुर को जानेवाला मार्ग खुल गया था। उसकी राह एक अत्यन्त रूपवती और बडे-बडे मानियों का मान भंग करनेवाली गर्वीष्ठा मानिनी धीरे-धीरे पाँव रखती चली आ रही थी। वह राजमंडप की ओर चार कदम चलने भी नहीं आई थी कि ऐसे अवसरों की अभ्यस्त राजसभा-मंडली आगन्तुक के सम्मानार्थ खडे होने का उपक्रम करती दिखाई दी। महामात्य ने यह देखा और चौंक पडा। कौन आ रहा है, यह जानने के लिए उसने फौरन मुडकर पीछे की ओर देखा।

जयसिंहदेव महाराज की पुत्री, अजमेर की राजरानी कांचनदेवी चली आ रही थी। उसकी अँगुली थामे एक स्वरूपवान तेजस्वी बालक आगे-आगे चल रहा था। उसके आने का कारण सभी को मालूम था। कृष्णदेव ने उसे देखा और

परेशान हो गया। उदयन उस नारी की ओर से किये जानेवाले वार की काट सोचने लगा। इस समय चाल का चूकना या काट का निरर्थक हो जाना जीवन-भर की पराजय का कारण बन सकता था। लेकिन महामात्य महादेव ने एक क्षण का भी विलम्ब किये बिना परिस्थिति पर काबू पा लिया। उदयन को महादेव के प्रभाव, समयसूचकता और निष्पक्षता का लोहा मानना पड़ा।

जब महामात्य ने देखा कि सभाजन खडे होने का उपक्रम कर रहे है तो उसने हाथ के सकेत से उन्हें रोक दिया। फिर कोई उठकर खडा न हुआ। बिन बोले ही महामात्य ने सारी सभा को यह बात समझा दी कि आज यहाँ महाराज की पादुकाएँ ही सर्वोपरि हैं, उनसे अधिक या उनके समकक्ष सम्मान का अधिकारी और कोई भी नही। लोगो ने महामात्य के इस सकेत को समझा और समूची राजसभा पहले की ही तरह शान्त और स्थिर बैठी रही।

परन्तु उदयन के मन का खुटका वैसा ही बना रहा। आखिर तो काचनदेवी राजसभा मे अपने बेटे का दावा पेश करने के लिए आई थी। समय पाकर वह अपना दावा पेश करेगी ही। पता नही, उस समय लोगो की क्या प्रतिक्रिया हो! वह धडकते दिल से बैठा उस अशुभ घडी की प्रतीक्षा करने लगा। तभी उसे सहसा एक बात सुझाई दे गई। वह फुर्ती से उठा, काचनदेवी के पास गया और दोनो हाथ जोडकर सिर नवाकर बोला "महीयसी! आपके हाथो ऐसा कुछ नही होना चाहिए जो जयदेव महराज की कीर्ति को बट्टा लगानेवाला हो!" वह एक बार पहले भी काचनदेवी को समझाने की कोशिश कर चुका था और आज एक बार फिर अन्तिम प्रयत्न कर लेना चाहता था।

"मेरे हाथो बट्टा लगेगा! सो कैसे मेहताजी? बट्टा लगाने का काम तो देख रही हूँ कि आप लोग ही करने जा रहे हैं। महाराज की सारी इच्छाओ और परम्पराओ को घोलकर पी जाने के लिए उतारू हो गए हैं आप लोग। पाटन का राज्य सभी दृष्टियो से मेरे सोमेश्वर का है और मैं आज सभा मे उसी का अधिकार मांगने आई हूँ।" काचनदेवी ने जबाब दिया।

"मना कौन करता है! अधिकार आप जरूर मांगिए! लेकिन पहले एक दृष्टि यहाँ उपस्थित जन-समूह पर भी डाल लीजिए।" उदयन ने कहा : "आप यह क्यो भूलती हैं कि सोमेश्वरदेवजी का हित मैं भी चाहता हूँ। बात अवसर-कुअवसर की

होती है। और मेरा आपसे यही निवेदन है कि समय देखकर काम कीजिए। मेरी क्षुद्र राय मे यह समय अधिकार माँगने का नही है। अभी तो शाकभरी पाटन की आँख की कनी बना हुआ है। आपके अधिकार माँगने से सोमेश्वरजी शाकभरी का अपना राज्य भी गँवा बैठेंगे। कम-से-कम आप तो अपने हाथो ऐसा अनिष्ट मत कीजिए। इतना विश्वास मानकर चलिए कि यहाँ की गादी पर जो भी बैठा होगा वह सोमेश्वरजी को शाकभरी का शासक बना सकेगा। मारवाडवाली हाथ मलती रह जाएगी और पाटन का दौहित्र शाकभरी की गादी पर बैठेगा या बिठाया जाएगा। पाटन मे इतनी शक्ति है और आगे भी रहेगी। लेकिन आज समय-असमय का विचार किये बिना यदि आपने सोमेश्वरजी का दावा पेश कर दिया तो जानती है क्या होगा ?"

"मै तो नही जानती, आप ही बता दीजिए ?"

"जानती तो आप हैं, लेकिन जानते-समझते अनजान बनना चाहें तो बात दूसरी है। मैं आपसे पहले भी कह चुका हूँ। पाटन की यह हजारो-हजार प्रजा, जो आज यहाँ इकट्ठा हुई है, आपके दावे को अस्वीकार कर देगी। आपके पति अर्णोराजजी के कृत्य ही ऐसे है कि पाटन की गादी पर शाकभरी के नन्हे-से बच्चे को भी यहाँ के लोग स्वीकार नही करेंगे और न सह सकेंगे। यह बात आपसे भी छिपी हुई नही है। यदि उत्तराधिकार का प्रश्न अनिर्णीत न होता तो पाटन ने कभी का शाकभरी पर आक्रमण कर दिया होता। मेरा इतना-सा अनुरोध स्वीकार कर लीजिए पुत्र को पिता की तरह लोगो की निन्दा का पात्र मत बनाइए। पाटनवासियो के मन में सोमेश्वरजी के लिए स्नेह और आदर बना रहने दीजिए। फिर तो उन्हें शाकभरी का राजा बनाना पाटन के लिए सरल होगा। मुझे जो ठीक लगा वह मैंने आपसे कह दिया, आगे आप अपनी जानें। ज्यादा सोचने-विचारने और समझाने-बुझाने के लिए समय नही है। घडी-दो घडी मे तो सारी बात का फैसला हुआ जाता है—इस पार या उस पार।"

"लेकिन पाटन के सिंहासन पर आप बिठाएँगे किसे ? उस कोढी कुमारपाल को ?"

"महाराज ने मरते समय जिसका नाम दिया होगा वही गादी पर बिठाया जाएगा। अकेले कृष्णदेवजी को वह बात मालूम है और अभी सब के सामने आ

जाएगी। हमारे लिए तो महाराज की अन्तिम इच्छा ही सब-कुछ है।"

"लेकिन पता तो चले कि महाराज की अन्तिम इच्छा क्या है? यदि वे कुमारपाल के बारे मे कह गए हो?"

"राम का नाम लीजिए! कुमारपाल को वे भला अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करते? असम्भव! और आप यह भी कैसे कह सकती हैं कि सोमेश्वरजी का नाम नही ही होगा?"

"क्यो न कृष्णदेवजी से पूछ लिया जाए?"

"उनसे पूछकर क्या कीजिएगा! आज तक कभी उन्होने सफेद को सफेद और काले को काला कहा है कि इस समय आपको बता देंगे! जो भी कहना-बताना होगा बिलकुल अन्तिम समय पर बताएँगे। ऐसी स्थिति मे आप सोमेश्वरजी का दावा पेश करें यह कितना अनर्थकारी हो जाएगा, इसे सोच लीजिए। और हाँ, एक बात और है, खूब याद आया "

"क्या बात है?"

"एक सन्देशवाहक पडे बते की बात लेकर आया है और यही सभा-भवन मे बैठा है "

"कहाँ मे आया है?"

"शाकभरी से।"

"क्या बात है?" काचनदेवी ने उत्कठित होकर पूछा।

उदयन ने उसके कान के पास मुँह ले जाकर कहा "बात यह है कि अर्णोराज ने देवलदेवी का भी अपमान किया है और उनका अपमान सारे गुजरात का अपमान है। वे लौटकर यही आ रही है। पाटन इसे कभी सहन नही करेगा। बस, सन्देशवाहक के कहने की देर है, आनन-फानन तलवारें खिच जाएँगी। मैं उसे रोके हुए हूँ, यदि आपकी अनुमति हो तो कह दूँ उससे सभा के समक्ष सन्देश-निवेदन करने के लिए "

"नहीं-नही, मेहताजी, अभी तो बिलकुल नहीं. . "

काचनदेवी पर उदयन की इस बात का यथेच्छ प्रभाव पडा था। उदयन ने इसे लक्ष्य किया और पहले से अधिक विनम्रता, शान्ति, पर साथ ही निर्ममता से बोला "मैं तो अपने मुँह से कदापि नही कहूँगा, लेकिन आप किस-किस की

जवान पकडेंगी ! आपके अधिकार माँगने पर, मान लीजिए, किसी ने भरी राजसभा मे अर्णोराज के इस दुष्कृत्य का उल्लेख कर दिया तो क्या होगा ? एकदम सारा वातावरण बदल जाएगा। एक स्वर से यही माँग की जाएगी कि वहाँ पाटन का दडनायक नियुक्त कीजिए, राजा अब वहाँ कोई होना नही चाहिए--सोमेश्वरजी भी नही। ठीक वही स्थिति होगी जो आज अवन्ती की है। 'आधी छोड आखी को जावैं' वाला हाला हो जाएगा। पाटन तो मिलेगा नही और शाकभरी से मुफ्त ही हाथ धोना पड जाएया। आप अच्छी तरह सोच लीजिए, और यह भी सोचिए कि आखिर आप किस पिता की पुत्री हैं ! इस समय थोडा सह लेंगी तो यह सयम सारी जिन्दगी काम आएगा। अभी तो पाटनवासी सोमेश्वरजी के अनुकूल है, उन्हें महाराज जयसिहदेव का नवासा समझकर स्नेह करते हैं। इससे अधिक कुछ कह नही सकता। समय नही है और लोगो की सन्देह-भरी निगाहे हमारी ओर उठने लगी हैं। आप मान जाइए नहीं तो. . ."

उदयन ने वाक्य अधूरा ही छोड दिया। और काचनदेवी को, जो बात कहने से रह गई थी, वही सबसे भयकर लगने लगी। उसे सोमेश्वर के सिर पर दो-दो नगी तलवारें लटकती दिखाई दी। पाटन के स्वामी का इतना प्रताप तो था ही कि वह चाहे तो शाकभरी को बचा ले और चाहे तो गारत कर दे।* वह उसी दमखम में अकडती हुई राजमडप के अन्दर चली गई। उदयन ने उसे राजसिंहासन के समीप बैठते देखा और निश्चिन्त हो गया। लेकिन निचिन्त वह कहाँ हो पाया ? इधर से छुट्टी पाई तो बर्बरक की चिन्ता उसके मन-मस्तिष्क को व्यथित करने लगी। कुमारपाल कहाँ बैठा है यह पता लगाने के लिए वह चारो ओर देखने लगा, लेकिन उसे कुमारपाल कही भी दिखाई नही दिया।

राजसभा में जिन्हे आना था वे सभी आ चुके थे। माडलिक, मडलेश्वर, रावराणा, जमीदार, छूटभैये, सरदार, श्रेष्ठी, सामन्त, सेनापति, प्रतिष्ठित नगरजन आदि सब आ गए थे और अपने-अपने स्थानो पर बैठे हुए थे। तब महामात्य महादेव ने उस दिन की कार्रवाई आरम्भ की। अपने स्थान से उठकर वह सिहा-

* आगे चलकर सोमेश्वर को शाकंभरी का राज्य पाटन की मदद से ही मिला।

सन के सामने आया और पाटनपतियो के अविचलित न्याय-सिद्धान्त का अनुसरण करता हुआ बोला।

"राजमान्य पुरुषो! आप सब यहाँ उपस्थित हैं।" महामात्य ने चारो ओर देखते हुए कहा। सभा मे पूरी तरह सन्नाटा था। यदि सुई भी गिरती तो उसकी आवाज़ सुनाई दे जाती। सुननेवालो की निगाहें महादेव के चेहरे पर गडी हुई थी। वह परम्परा के प्रवल वाहक के गौरव से वोल रहा था और उसके एक-एक शब्द से उसकी निष्पक्षता प्रतिध्वनित हो रही थी। कुमारपाल ने इसे लक्ष्य किया और महादेव के प्रति उसका मन प्रशसा से भर गया।

महादेव कहे जा रहा था "महाराज के न्यायपूर्ण, पक्षपात-रहित सिहासन पर उनकी पादुकाएँ विराजमान हैं। इस सिहासन का उपयुक्त अधिकारी कौन है, आज हम इस वात का निर्णय करेंगे। महाराज की अन्तिम इच्छा क्या थी, इसकी जानकारी कृष्णदेवजी के पास है। आप आज की परिस्थितियो पर भी विचार करें और तव इस वात का निर्णय कि ऐसे समय किसको राज्य सौंपना उचित है। विना राजा का राज्य न कभी टिका है और न कभी टिकेगा। पाटन के कई मित्र हैं, तो शत्रु भी कम नही हैं। हम वलवान हुए तो मित्र मैत्री के लिए लालायित होगे, हमें वलवान देखकर शत्रु भी मैत्री करना चाहेंगे। शक्ति और अक्षुण्ण आत्म गौरव गुर्जर देश के प्राणो का स्पन्दन रहे हैं। प्राण देकर भी गुजरात इन दोनो की रक्षा करता आया है। आज हम यहाँ पाटन के उपयुक्त उत्तराधिकारी का निर्वाचन करने के लिए एकत्रित हुए हैं। अपनी परम्पराओं को वनाये रख न्याय करने का उत्तरदायित्व हमें निभाना है। जो गुर्जर साम्राज्य अर्वुदाचल से सोमनाथ-समुद्र तक और मेदपाट से डाग प्रदेश के भी आगे कोकण तक फैला हुआ है उसकी सुरक्षा और सवर्द्धन वच्चो का खेल नही। उत्तराधिकारी का निर्णय करते समय हमें इस वात पर भी ध्यान देना होगा। वोलिए जय सोमनाथ!"

"जय सोमनाथ!" उपस्थित जन-समूह ने गहन, गम्भीर जयघोष किया।

महामात्य के भाषण का श्रोताओ पर इच्छित परिणाम हुआ। सभी सभाजन गम्भीर हो गए। कौन क्या कहता है यह जानने के लिए लोगो की उत्सुकता वाँध तोडने लगी। केशव सेनापति प्रतापदेवी की ओर देखने लगा। लेकिन उसे

सबसे पहले अपना दावा पेश करना उचित नही लगा। वह अपनी जगह चुप बैठी रही। उदयन को कुमारपाल की चिन्ता व्यथित करने लगी। उधर त्रिलोचनपाल अपनी गीध दृष्टि से एक-एक सभाजन को देख रहा था कि कही कुमारपाल छिपा बैठा हो तो पहचानकर पकड ले। कुमारपाल ने इसे देखा, लेकिन सिर नीचा किये चुपचाप बैठा रहा।

तभी उदयन को सहसा कुछ याद आ गया और उसने महामात्य के पास जाकर धीरे से कहा· "महामात्यजी, शत्रुओ के चरो को आज की राजसभा मे आने से रोकने के लिए हमे कोई उपाय अवश्य और तुरत करना चाहिए। कोई-न-कोई विदेशी चर अथवा मल्ल आए विना रहेगा नही। आज की महत्त्वपूर्ण राजसभा मे घुस आने का सुअवसर कोई भला क्यो छोडेगा? इसलिए मेरा विनम्र सुझाव है कि त्रिलोचनपालजी के आगे-पीछे प्रवेशद्वार पर दो-दो मल्लो को नियुक्त कर देना चाहिए।"

महादेव को यह सुझाव उपयुक्त लगा। और थोडी देर मे त्रिलोचनपाल के आगे-पीछे दो-दो मल्ल आ खडे हुए। पहले तो वह सकपका गया और समझ मे नही आया कि यह सब क्या है और क्यो मल्लो को खडा किया गया है, फिर तुरत बात उसकी समझ मे आ गई—वर्बरक पर नियन्त्रण लगाया गया था।

केशव सेनापति ने उदयन की ओर देखा, लेकिन वह इस तरह शान्त बैठा था मानो कुछ हुआ ही न हो।

अब सेनापति को चिन्ता हुई कि वनिए को कही वर्बरक की भनक तो नही लग गई?

लेकिन उधर उदयन अवश्य निश्चिन्त हो गया था। इस तरह वर्बरक पर रोक लग गई थी और सीधा झपट्टा मारने की सम्भावना यदि समाप्त नही हुई थी तो कम अवश्य हो गई थी। वह कृष्णदेव के खडे होने की प्रतीक्षा करने लगा।

कुछ समय यो ही वीता। जव और कोई खडा होता दिखाई न दिया तो कृष्णदेव ही उठा। उसे सवसे पहले खडे होते देख प्रतापदेवी और भाववृहस्पति जरा चौंके। लेकिन दूसरे ही क्षण वे प्रकृतिस्थ हो गए। त्यागभट्ट भी वहुत उद्विग्न हुआ और अपने स्थान से उठने जा ही रहा था कि फिर जाने क्या सोचकर

वैठा रहा। कृष्णदेव क्या कहता है यह जानने की उत्सुकता सभी को थी। जब वह उठकर खडा हुआ तो सारी सभा आगे खिसक आई और हर आदमी कान लगाकर सुनने को तैयार हो गया।

कृष्णदेव धीरे-धीरे चलता हुआ सिंहासन के पास आया। दोनो हाथ जोडकर उसने वडी ही विनम्रता से महाराज की पादुका को प्रणाम किया। फिर उसने गद्गद कठ से कुछ कहा। उदयन ने विलकुल एकाग्र होकर सुनने का प्रयत्न किया, परन्तु उतनी वात उसे तो क्या किसी को भी सुनाई नहीं दी। फिर तुरत कृष्णदेव ने वोलना आरम्भ कर दिया। उदयन को उस घमण्डी और चतुर राजपूत का यह कृत्य वहुत अच्छा लगा। ठीक वक्त पर वह खडा हुआ था और वोलना शुरू कर रहा था।

कृष्णदेव ने कहा "राजसभासद, नगरजन और यहाँ उपस्थित सभी लोग! आप इस वात को जानते है कि महाराज जयसिंहदेव सिद्धराज मुझ पर कृपालु थे और उनकी वह कृपा अकारण ही थी। महाराज ने मुझे विश्वास के योग्य समझा, यह उनकी कृपा और महानता थी। वैसे मैं वहुत छोटा व्यक्ति हूँ और सदैव छोटा ही वना रहना चाहता हूँ।"

उदयन ने सुना और सोचने लगा कि यदि इस आदमी का अहकार प्रवल न हो तो यह कइयो को तिनगी का नाच नचा सकता है। उधर कृष्णदेव कहे जा रहा था "महाराज सिद्धराजदेव की अन्तिम चिन्ता, अन्तिम अभिलाषा, अन्तिम शव्द और अन्तिम आज्ञा को मैं अव तक अपने हृदय मे सहेजे रहा। आज आप सव उनके उत्तराधिकारी का निर्वाचन करने वैठे है, इसलिए जयसिंहदेव महाराज की अन्तिम आज्ञा आपको सौंपकर मैं ऋण-मुक्त हो जाना चाहता हूँ।"

यह सुनकर सारी सभा 'वाह! वाह!' कर उठी। उदयन सोचने लगा कि यदि कृष्णदेव ने अपने वायदे को निभाया तो कुमारपाल की सफलता असदिग्ध है। उसने एक वार दवी निगाहो से अपने चारो ओर देखा। सामनेवाली आखरी सीढ़ी पर उसे कुमारपाल से मिलता-जुलता एक व्यक्ति वैठा दिखाई दिया। उसने तुरत उधर से दृष्टि हटा ली।

कृष्णदेव ने सारी सभा का दिल जीत लिया था।

"उस समय ऐसा लगता था मानो महाराज भगवान् सोमनाथ के प्रत्यक्ष

दर्शन कर रहे हों " कृष्णदेव का गला भीग गया। क्षण-भर उससे वोला नही गया। उदयन को घवराहट होने लगी। पता नही यह आदमी नाव को किस घाट ले जाएगा! वडा ही अभिनय-कुशल है और ऐसा रग वांधता है कि वडे-वडे चतुर भुलावे मे आ जाते हैं। कही इसको समझने मे भूल तो नही हुई। उधर कृष्णदेव वोले जा रहा था "महाराज के दोनो हाथ छाती पर जुडे हुए थे। आँखें वन्द थी। ओठ भगवान् सोमनाथ का नाम निरन्तर जपे जा रहे थे। आधी रात का समय था। मैं दरवाजे पर अकेला खडा था। नगी तलवार मेरे हाथ मे थी। तभी महाराज ने मुझे पुकारा। उस समय उनके हृदय मे द्वेष-क्लेश नाम को भी नही रह गया था। वहुत धीरे से उन्होने पुकारा—'कानड !' महाराज हमेशा मुझे 'कानड' कहकर वुलाते थे।" कृष्णदेव ने यह वात इतने गद्गद होकर कही कि केशव-जैसे कई भावुको की आँखो में आँसू उभर आए। उदयन चकित होकर सोचने लगा, यह वहुरूपिया महाराज के गुण गा-गाकर कही स्वय ही राजा न वन वैठे! अगर कह ही दे कि सिंहासन पर पादुका रहे और मैं प्रतिनिधि वनकर राज करूँ तो कोई इसका क्या कर लेगा?

उधर कृष्णदेव विना रुके कहता जा रहा था. "महाराज ने मुझे कभी कृष्णदेव नही कहा और न 'कान्हडदेव'। यहाँ तक कि 'कान्हड' भी नही। कहते थे केवल 'कानड'। सो उस समय महाराज ने मेरा नाम लेकर पुकारा—'कानड!' स्वर उनका वहुत धीमा था। मैं वड़ी मुश्किल से उनकी वात सुन सका। महाराज ने कहा—'कानड, मेरा कोई शत्रु नही, कोई विरोधी नही। वश-परम्परा तो ठीक है, लेकिन जो गौरव-परम्परा को निभा सके ऐसा कानड!' वस! उसके वाद महाराज मौन हो गए। फिर उनसे वोला न गया। अन्तिम वार उन्होने मुझे 'कानड' कहा। उनका वह स्नेह भीगा स्वर आज भी मेरे कानो में गूँज रहा है।"

कृष्णदेव की इन बातो का सभा पर वडा गहरा प्रभाव पडा। उसने इसे लक्ष्य किया और एक भी क्षण खोये विना आगे वोला "महाराज की वाणी स्पष्ट थी और उनका आशय भी उतना ही स्पष्ट था। उन्हें अपने अन्त समय मे चिन्ता वश-परम्परा की नही, यश और गौरव की थी। वे गौरव-परम्परा चलाना चाहते थे। उनके मन सच्चा उत्तराधिकारी वह था जो अमरकटक से सोमनाथ-समुद्र तक और कोंकण से मेदपाट तक फैले हुए महान गुर्जर राज्य को अखण्ड, अविभाज्य

ग्रौर शक्ति-सम्पन्न बनाए रख सके । उनकी ग्रन्तिम इच्छा यही थी कि गुजरात महान वने । ग्रौर महाराज जयदेव की इस महती ग्राकाक्षा को सुनने ग्रौर उसका साक्षी वनने का सौभाग्य मिला है मुझे ।"

"आपका यही कहना है न कि जो साम्राज्य को ग्रखड ग्रौर ग्रविभाज्य रख सके वही है उनका सच्चा उत्तराधिकारी ?" मल्हारभट्ट से चुप न रहा गया ।

ग्रौर केशव तो उठकर खडा ही हो गया था "महाराज ने यह वात सोमनाथ का जल लेकर कही थी या यो ही ? तुरगाध्यक्षजी, ग्राप ग्रौर मैं . "

"सुनिए सेनापतिजी !" कृष्णदेव ने फौरन उसकी वात काटी । उसका एक हाथ केशव की वर्जना करता हुग्रा ऊँचा उठ गया था "मैं महाराज जयसिंहदेव का निकट सम्वन्धी ग्रौर क्षत्रिय भी हूँ, जवकि ग्राप नागर हैं । उनकी गौरवशाली परम्परा को ग्रक्षुण्ण रखने की मेरी चिन्ता ग्रापसे कम नही, ग्रधिक ही होगी । लेकिन उस परम्परा को वनाये रखना वच्चो का खेल तो नही है । रुद्रमहल की कर्पूरमजरी का एक स्तम्भ ही कोई वनाकर दिखला दे ! जावा-सुमात्रा तक के व्यापारी उसकी ग्रनुकृति वनवाकर ले गए हैं । यह है महाराज की परम्परा ! इस परम्परा को ग्रक्षुण्ण रखना ग्रौर वह भी ऐसे समय जव एक ग्रोर ग्राबूराज, दूसरी ग्रोर ग्रर्णोराज, तीसरी ग्रोर कोकण का मल्लिकार्जुन, चौथी ग्रोर मालवराज जयवर्मा एव पाँचवी ग्रोर सोरठ का राव तलवार ताने खड़े हो, हँसी-खेल नही है । पाटन के सिंहासन पर वैठनेवाला यदि इन पादुकाग्रो से जरा भी उन्नीस हुग्रा तो ग्रपनी गर्दन नपवाएगा, गुजरात की नाक कटवाएगा ग्रौर हमारे-ग्रापके चेहरो पर ऐसी कालिख पुतवाएगा जो हजार घडो दूध से भी धोई नही जा सकेगी ! ऐसा ग्रादमी महाराज की परम्परा को तीन दिन तो क्या तीन घडी भी ग्रक्षुण्ण नही रख सकता । गुर्जर देश का गौरव यहाँ मेरे हृदय मे समाया हुग्रा है " कृष्णदेव ने ग्रपनी छाती पर हाथ रखते हुए कहा "इसी लिए तो मैं इतना कुछ कह रहा हूँ सेनापतिजी !"

"जव महाराज की ग्रन्तिम इच्छा की चर्चा हो रही हो तो सम्भ्रम के साथ मौन धारण किये रहना ही हमारे लिए उचित ग्रौर शोभा की वात है, सेनापतिजी !" महामात्य महादेव ने केशव का मुँह बन्द करते हुए कहा ।

"विलकुल ठीक कहा ।" उदयन ने महामात्य का समर्थन किया : "ऐसे समय

मुँह खोलना कदापि उचित नही; चुप ही रहना चाहिए ।"

"वात तो सच है भाई !" एक साथ कई राजपूत सरदार वोल उठे : "तुरगाध्यक्षजी ठीक ही कह रहे हैं । उन्हें अन्त तक वोलने दो और पहले पूरी बात सुन लो ।"

"मुझे और कुछ नही कहना ।" कृष्णदेव ने आगे वोलना शुरू किया "अन्त समय महाराज के मन मे जो वात थी उसे मैं जानता हूँ ।" वह राजपूत सरदारो को जोश दिलाना चाहता था, क्योकि अव इसी मे उसका लाभ था · "और वह वात थी असिधारा-व्रत की, कृपाण भवानी की पूजा-अर्चना की । राजसिंहासन पर वे ऐसा पुरुष चाहते थे जिसकी तलवार का पानी हमेशा तत्ता रहे, जो गुजरात के गौरव को खडित न होने दे और जिसे गुर्जर देश के रणवाँकुरे हमेशा घेरे रहें । हमारे महाराज की यही अन्तिम अभिलाषा थी । आप तो जानते ही हैं कि हमारे महाराज युद्ध के रसिया थे और हमेशा मनाया करते थे कि जो अवसर महाराज भीमदेव को सोमनाथ के युद्ध मे मिला वह उन्हें भी प्राप्त हो । रुद्रमहल मे इसीलिए उन्होने अपनी वीर-वेशधारी प्रतिमा स्थापित करवाई । मतलव यह कि हमारे महाराज वहादुर राजपूतो की एक ऐसी सगठित सेना चाहते थे जो गुर्जर नरेश के पराक्रम की पोषक वन सके ।"

"महाराज सिद्धराज के रणवाँकुरे राजपूतो की जय !" राजसभा में चारो ओर जयजयकार होने लगा । कृष्णदेव राजपूत सरदारो को जोश दिलाने में पूरी तरह सफल हुआ था ।

केशव सेनापति कृष्णदेव की चाल समझ गया । उदयन परेशान हो उठा । लेकिन कोई यह नही वता सकता था कि कृष्णदेव आगे क्या कहने जा रहा है । महामात्य को यह सव सुनकर वडा दु ख होने लगा था ।

कृष्णदेव उन लोगो मे था जो तपे लोहे को पीटते जाते हैं, इसलिए उसने आगे कहा "राजपूत तो सभी वीर-धर्म को माननेवाले होते हैं । देवप्रसादजी के वीर कृत्यो की स्मृति से कौन क्षत्रिय पुत्र है जो अनुप्राणित नही होता ? महाराज त्रिभुवनपालजी के आत्मोत्सर्ग से किसे प्रेरणा नही मिलती ? पाटन के दूधमुंहे वच्चे इन वीरगाथाओ को माँ के दूध के साथ पीते और परिपुष्ट होते है । इन वीरवरो ने अपने प्राण देकर भी पाटन के महाराज की रक्षा और सहायता की है । उनके

वीर कृत्यो का वर्णन करने के लिए शामल-जैसे कवि के पास भी शब्दो की कमी पड जाती है---ऐसी अवर्णनीय रही है उन लोगो की वीरता और उनका स्वार्थत्याग। त्रिभुवनपालजी और जगदेव परमार को तो महाराज जयदेव अन्त समय तक याद करते रहे; और कहते थे कि अव उन वीरो से वहाँ स्वर्ग में भेंट होगी। आज वे तीनो स्वर्ग में अवश्य साथ-साथ विचरण कर रहे होगे।" कृष्णदेव गद्गद हो उठा "त्रिभुवनपालजी का कोई वशज हो और वह योग्य भी हो तो मै उसे पहला स्थान दूंगा—मुझे तो महाराज की यही अन्तिम इच्छा प्रतीत हुई. . ." अपनी वात को इस तरह पूरी कर वह चुप हो गया।

"इच्छा या शब्द ? और आपने सुना या आपको प्रतीत हुआ ? महाराज ने कहा था या आपका अनुमान है ? कृष्णदेवजी, हम महाराज की पादुकाओ के समक्ष खड़े हैं, इसे याद रखिएगा।"

"महामात्यजी !" कृष्णदेव ने उतने ही अधिकार और गर्व से कहा . "महाराज जयसिंहदेव क्षमा के सागर थे। उन्हें आत्म-साक्षात्कार हो चुका था। उनके सारे राग-द्वेष शान्त हो गए थे। वे वारहवें रुद्र थे। उनकी इच्छा ही हमारे लिए आदेश है। उनके शब्द हमारा वह सकल्प है जिसका हम प्राण देकर भी पालन करेंगे। त्रिभुवनपालजी के वशजो का इस गादी पर अधिकार तो है ही। क्या आप ऐसा समझते हैं कि महाराज को इसकी जानकारी नही थी ? फिर भी महाराज के रणवांकुरे सरदारो से पूछ लिया जाए उनकी इस सम्वन्ध मे क्या राय है ?"

"त्रिभुवनपाल महाराज की जय !" राजसभा मे उपस्थित सभी क्षत्रिय एक स्वर मे पुकार उठे। उदयन ने वाहर मैदान की ओर देखा। वहाँ सैकडो घुडसवार खडे थे। सरदारो के साथ वे भी जयजयकार करने लगे।

उदयन समझ गया कि इस तरह कृष्णदेव कुमारपाल को राजा वनाकर सत्ता अपने हाथ मे रखना चाहता है। आगे चलकर उसे इसमें खतरा ही दिखाई दे रहा था, लेकिन अभी तो कुछ कर नहीं सकता था। कृष्णदेव की वोली-वानी और व्यवहार ऐसे लग रहे थे मानो वह चक्रवर्ती सम्राट् हो।

उदयन ने घटना-क्रम को इच्छित मोड़ देने के अभिप्राय से कहा . "तो कृष्णदेवजी, एक काम क्यो किया न जाए। देवस्थली के राजकुमार यहाँ उपस्थित हैं। उन्हें समक्ष लाया और राजसभा को उनके वारे में निर्णय करने दिया जाए।

"ठीक है, बिलकुल ठीक है। मंत्रीश्वर के सुझाव पर अमल होना चाहिए।" सभासदो में से कुछ लोगो ने कहा।

कृष्णदेव का संकेत पाकर राजसभा के छोर से एक लम्बा, छरहरा, गोरा युवक उठकर सामने आता दिखाई दिया।

"महीपालजी, यहाँ आइए; इधर, महाराज के सिंहासन के पास।"

कृष्णदेव ने उसे राजकुमारोचित सम्मान के साथ आगे आने के लिए कहा। दूरी तो उसे कुल मिलाकर डेढ सौ कदम ही पूरी करनी थी, लेकिन इतने में ही पचास बार तो वह लडखडाया, और उसका पूरा ध्यान अपने साज-सिंगार को सँभालने की ओर लगा रहा। न उसकी चाल और न उसके व्यवहार मे किसी तरह का गौरव था। घबराया हुआ आया और सिंहासन पर बैठ गया। और जब देखा कि सारी सभा उसी को देख रही है तो इस तरह सकपकाया कि सिर उठाने की हिम्मत न हुई। आँखें झुकाये, सिर नवाये बिलकुल चुप बैठा रहा।

"महीपालजी!" महामात्य महादेव ने उसके पास आकर ऊँची आवाज़ में पूछा "यदि आपको यह राज्य सौंपा गया तो बताइए आप इसे किस तरह चलाएँगे? महाराज जयसिंहदेव के इस सिंहासन की प्रतिष्ठा से तो आप परिचित होंगे ही। उस प्रतिष्ठा का आप ..."

सिंहासन शब्द सुनते ही महीपाल चौंक पडा और मारे घबराहट के उस पर हाथ फेरने लगा। जवाब उससे दिया न गया। मिट्टी के माधो की तरह चुप बैठा सिंहासन पर हाथ फेरता रहा।

तब कृष्णदेव आगे आया और महीपाल का हाथ पकडकर उसे सिंहासन से नीचे उतारते हुए अधिकारपूर्ण स्वर मे बोला "महीपालजी, आपका स्थान यहाँ नही देवस्थली के दरबार गढ़ में है। महाराज के गौरव की रक्षा आपके बूते की बात नहीं। नीचे उतर जाइए और वहाँ जाकर बैठिए। कीर्तिपाल जी कहाँ हैं? यहाँ आइए कीर्तिपालजी!"

बडे भाई के यह हाल देखे तो बेचारे कीर्तिपाल के पाँवो तले की जमीन खिसक गई। भाई को बैठने के साथ ही सिंहासन से नीचे उतरते देख वह हक्का-बक्का रह गया। फिर भी अपना नाम पुकारे जाने पर उठकर खडा हो गया।

लेकिन हडबडाहट में उसका दुपट्टा नीचे गिर पडा। उसे उठाने गया तो सिर से पगडी खिसकने लगी। उसे थामने को एक हाथ माथे पर रखा तो वहीं रखा रह गया और इसी तरह वह सिंहासन की ओर चला।

उसकी इस हास्यास्पद स्थिति को देख लोग मुंह छिपाकर हँसने लगे। बिन कहे ही सारी सभा समझ गई कि ये राजकुमार इस सिंहासन पर एक क्षण भी नही टिक सकते।

तभी कृष्णदेव ने कहा "महाराज की अन्तिम इच्छा का मान रखने के ही लिए मैंने यहाँ सबको बुलाया है। जो इस सिंहासन के उपयुक्त होगा वह आप ही इस पर प्रतिष्ठित हो जाएगा। हमारा काम तो सिर्फ यह देखना है कि सोलकियो की परम्परा और उनका गौरव अक्षुण्ण बना रहे। महाराज की इस अन्तिम इच्छा को हम कभी न भूलें। कीर्तिपालजी, यहाँ आइए, इधर "

कीर्तिपाल आकर सिंहासन पर बैठ गया और सपना देखने लगा कि अब राजमुकुट उसे पहनाया ही जानेवाला है।

तभी महादेव के निम्न वाक्य ने उसे जैसे सोते से जगा दिया. "कीर्तिपाल-जी, यदि आपको गुजरात का राजा बनाया गया तो बताइए आप राज-काज कैसे चलाएँगे ?"

"जैसे आप कहेगे!" कीर्तिपाल ने फौरन जवाब दिया।

सारी सभा कहकहा लगाकर हँस पडी।

कीर्तिपाल समझा कि मैंने बडे भाई महीपाल की अपेक्षा अधिक चतुराई से काम लिया है इसलिए सभाजन प्रसन्न होकर हँस रहे है। वह और अकडकर बैठ गया और पुतलियाँ नचाता हुआ लोगो को देखने लगा।

लेकिन उसे सिंहासन पर ज्यादा समय बैठना नसीब नही हुआ। कृष्णदेव ने एक बार फिर अपने अधिकार का उपयोग किया: "कीर्तिपालजी, आप उतर-कर जरा नीचे बैठिए। किसी तीसरे के लिए जगह खाली करना है। आपकी योग्यता और सामर्थ्य का पता हमें चल गया।"

"तुम कहते हो तो उठ जाता हूँ। पर आखिर तो मैं ही बैठूंगा न ?" कीर्ति-पाल ने बौडमपने की हद कर दी "जैसा तुम कहोगे मैं बिलकुल वैसा ही करूँगा। फिर तो तुम्हें कोई एतराज नही होना चाहिए।"

"नही, कोई एतराज़ नही। लेकिन अभी तो आप यहाँ, नीचे बैठ जाइए।"

कीर्तिपाल सिंहासन से उतरकर वही नीचे बैठ गया और लोग तीसरे दावेदार की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे।

अब कुमारतिलक त्यागभट्ट उठकर खडा हुआ। गोरा, ऊँचा और सशक्त वह राजसभा में एक राजा की तरह शोभित हो उठा। विद्वत्ता में भी वह किसी से कम नही था। वह जहाँ बैठा था वही खडा रहा, अपनी जगह से आगे नही आया।

"कुमारतिलकजी, आगे आ जाइए. " कृष्णदेव ने कहा "आपको यदि गुजरात का यह राज्य . ."

"कृष्णदेवजी, लगता है आपकी स्मृति दुर्बल है।" कुमारतिलक की स्वाभिमान-भरी गम्भीर आवाज़ सुनाई दी। श्रोताओ को लगा कि राजरीति का सच्चा जानकार तो अब खडा हुआ है। कुमारतिलक ने आगे कहा "कृष्णदेवजी, अपनी स्मृति पर पडी हुई धूल को जरा झटक डालिए। आप किसे राज्य दे रहे हैं? मुझे! और राज्य देनेवाले आप होते कौन है? जिस राज्य पर मेरा जन्म से अधिकार है उसे कोई मुझे क्या देगा! शायद आप भूल रहे है कि मैं महाराज का प्रपन्न पुत्र हूं। और उनका पुत्र होने के नाते मेरा इस सिंहासन पर अधिकार है। इसके लिए मुझे किसी की सहायता की आवश्यकता नही। इस सम्बन्ध में मैं न किसी का कोई प्रश्न सुनना पसन्द करता हूं और न जवाब देना ही। सिर्फ इतना याद दिला देना चाहता हूँ कि मालवा के मैदान मे आप भी और सब लोगो के साथ उपस्थित थे। स्तम्भतीर्थ के ये मन्त्री महोदय, दडदादाक और आज के महामात्य महादेव नागर भी उस समय वही थे। और सबके सामने केशव सेनापति ने सोमनाथ का जल लेकर प्रतिज्ञा की थी। बताइए सच कह रहा हूँ या नही?"

"महाराज त्यागभट्टजी!" केशव एकदम उठकर खडा हो गया। वह बहुत उत्तेजित लग रहा था। कृष्णदेव की चाल वह समझ गया था। उसने फुर्ती से कहा "मेरी वह प्रतिज्ञा अटल है। केशव नाम के इस सेनापति की जो तलवार महाराज जयसिंहदेव के लिए थी वह अब महाराज कुमारतिलक त्यागभट्ट को समर्पित है। मैं यही खडा हूँ।"

"सेनापति केशव !" महादेव महामात्य का आदेशात्मक स्वर सुनाई दिया। यह रणभूमि नही राजसभा हैं। मैं यहाँ युद्ध का गर्जन-तर्जन सुनना नही चाहता, न उसकी अनुमति दे सकता हूँ। आप अभी बैठ जाइए। त्यागभट्टजी ! आपको और कुछ कहना है ?"

"महामात्यजी, मुझे तो कुछ नही कहना। हाँ, आपको कुछ कहना हो मैं तो सुन सकता हूँ और सुनूँगा। आप यह तो नही कहना चाहते कि मेरा कोई अधिकार नही ?" त्यागभट्ट की वाणी मे जैसे लोहा खनक रहा था।

"नही !" महादेव ने कहा।

"तो मेरा अधिकार है ?"

"यह निर्णय तो राजसभा ही कर सकती है, मैं नही। मैं तो केवल राजसभा का निर्णय आप तक पहुँचा सकता हूँ।"

"अच्छी वात है। राजसभा को जो भी निर्णय देना हो आपके द्वारा हमे दे। हम सुनने को तैयार हैं।"

"वह हो जाएगा। आप शान्त रहिए। आपको और तो कुछ नही कहना है ?"

"मुझे कहना है " पीछे से प्रतापदेवी की आवाज सुनाई दी। वह धीर-मन्थर गति से आगे चली आ रही थी। रूप उसका साक्षात् लक्ष्मी के-जैसा था। स्वर इतना सस्कृत कि मुँह से निकला हर एक शब्द काव्य वन जाता था। उदयन घवराया। उसकी प्रभावोत्पादक वाणी के वारे मे वह जानता था। जिस वाणी ने महाराज जयसिहदेव-जैसे लोकोत्तर पुरुष को परास्त कर दिया वह किसे मुग्ध, मोहित और पराजित नही कर देगी ! उसने तत्काल निश्चय किया कि वह प्रतापदेवी को वोलने नही देगा। लेकिन इस वीच प्रतापदेवी एकदम सामने आकर खडी हो गई थी। लगता था जैसे प्रत्यक्ष सरस्वती ही खडी हो।

उसने राजरानी की गरिमा से एक वार सारी सभा को देखा। वोलने से पहले वह इस वात का पता लगा लेना चाहती थी कि कुमारपाल तो सभासदो के वीच कही छिपा नही वैठा है।

फिर वह दो कदम आगे वढी। उदयन उसकी प्रत्येक हलचल को चिन्तातुर नेत्रो से देख रहा था। जैसे ही वह अपना मुँह खोलने को उद्यत हुई उदयन सहसा

खडा हो गया और बोला : "महामात्यजी, मुझे एक निवेदन करना है। गगाजल-जैसी इनकी निर्मल, मधुर वाणी तो हम बाद में निश्चिन्त होकर सुनते रहेंगे। अहा, कितना मधुर और उद्‌बोधक बोलती है, मानो देववाणी ही हो। लेकिन अभी जो काम हो रहा है उसे पूरा हो लेने दिया जाए। यदि और भी कोई दावेदार हो तो उसे सामने आने का अवसर देना चाहिए। सबके सामने आ जाने पर तुलना करने और निर्णय देने मे सुविधा होगी। यदि अब कोई बचा न हो तो केवल निर्णय करने का काम शेष रह जाता है। यदि कुमारपालजी भी आ जाते तो अच्छा रहता। हमे कहने को हो जाता कि तीनो भाइयो को बुलवाया था। उनका कही कोई पता है सेनापतिजी ?" उसने केशव की ओर देखकर पूछा। केशव कुछ बोला नही। "किसी को मालूम हो तो बताए। कृष्णदेवजी, आपको कुछ पता है ? कहने को हो जाता कि हमने सबको बुलाकर और सबके दावे सुन-कर निर्णय किया। आखिर निर्णय तो सर्वसम्मति से ही होना है। यहाँ कृष्णदेव-जी हैं, महामात्यजी हैं, सेनापति है, काकभट्ट और मल्हारभट्ट हैं और अन्यान्य निणयकर्ता भी हैं लेकिन मेरा निवेदन है कि किसी निर्णय पर पहुँचने के पहले यदि कोई दावेदार रह गया हो उसे आकर अपना दावा पेश करने की अनुमति दी जानी चाहिए। प्रभो, आप इस आशय की घोषणा करवा दीजिए "

ठीक उसी समय, जहाँ त्रिलोचन खडा था, वहाँ से कुछ ही दूर एक जबर्दस्त मल्ल सीढियाँ चढकर आता दिखाई दिया। वेश-भूषा से वह राजकुमार प्रतीत होता था। अपनी सुनहरी पगड़ी मे वह कई कलगियाँ खोसे था। उसकी छाती पर अनेक विजयपत्र टँके हुए थे। एक हाथ में वह बडी भारी गदा लिये हुए था। लोग आँखें फाड़े उसे देखते रहे। कोई भी नही जानता था कि वह कौन है। लोग कुतूहल से देखते रहे और वह निरन्तर आगे बढता रहा।

इस नवागन्तुक को देखकर उदयन को भी बडा आश्चर्य हुआ। इस समय यह कौन, कहाँ से निकल आया ? उसे लगा कि जरूर किसी शत्रु राजा का कोई मल्ल है, जो मौका पाकर अन्दर आ घुसा है। महामात्य के समक्ष उसने जो शका व्यक्त की थी कही वह सच तो नही हो रही है ? विघ्न पडने और अमगल होने की आशका से वह अपने वक्तव्य को अधूरा ही छोडकर चुपका खडा रह गया। उधर प्रतापदेवी ने यह समझा कि कोई नया दावेदार अपना

दावा पेश करना चाहता है, इसलिए वह चुपचाप पीछे खिसक गई। और सामने से वह मल्ल-जैसा पुरुष बढता ही चला आ रहा था।

त्रिलोचनपाल के आगे-पीछे, दरवाजे पर दो-दो मल्लो को खडा कर दिया गया था। नवागन्तुक को देखकर वे सन्नद्ध हो गए। उदयन ने यह पता लगाने के लिए कि शायद कृष्णदेव को इस नवागन्तुक के बारे मे कुछ मालूम हो, उसकी ओर देखा। लेकिन कृष्णदेव को भी उसके बारे मे कुछ पता नही था। उदयन को इससे बडा आश्चर्य हुआ। तभी उसने नवागन्तुक मल्ल को पहचान लिया। अरे, यह तो आनकराज का विश्वस्त मल्ल कर्णाटमल्ल है। आखिर आनकराज अपनी कुचाल से बाज नही आया ! अब कही जाकर उदयन निश्चिन्त हुआ। वह मल्ल पहले भी राजसभा मे दो-एक बार विजयपत्र लेने के लिए आ चुका था। इस बार उसे अवश्य अर्णोराज ने ही उकसावा देकर और सिखा-पढाकर भेजा होगा। उसने काचनदेवी की ओर देखा तो वह नजर बचा गई और सिर झुकाकर धरती की ओर देखने लगी।

द्वार पर खडे मल्ल कर्णाटमल्ल को रोकने के लिए तैयार खडे थे और कर्णाटमल्ल कदम बढाता पहलवानी चाल से चला आ रहा था। तभी लोगो ने देखा कि मल्ल अकेला नही है। एक और लम्बा, तगडा और ताकतवर व्यक्ति उसके कदमो से कदम मिलाता चला आ रहा था।

सारी राजसभा टक लगाये देखने लगी कि ये आगन्तुक कौन हैं ? मल्ल के पीछेवाला आदमी साफ दिखाई नही देता था, इसलिए बहुतो को यही लग रहा था कि सिर्फ एक आदमी आ रहा है। लेकिन उदयन और कृष्णादेव-जैसे तेज निगाहोवालो को दोनो आदमी दीख रहे थे। पीछेवाले के सिर पर सुनहरी पगडी थी, जो रह-रहकर सूरज की किरणो मे जगमगा उठती थी। वह हाथ मे सुनहरी मूठवाली लम्बी तलवार लिये था और उसके सहारे सीढियाँ चढ रहा था। उदयन ने कृष्णदेव की ओर देखा। वह भी उदयन की ही तरह दोनो आगन्तुको को देख रहा था। उदयन समझ गया कि जो मल्ल के पीछे-पीछे उसकी छाया की तरह लगा चला आ रहा है वह और कोई नही कुमारपाल ही है। जैसे ही वे दोनो त्रिलोचन के पास पहुँचे उदयन का कलेजा काँप उठा। दरवाजे की ओट मे बर्बरक खडा प्रतीक्षा कर रहा था। जैसे ही कुमारपाल वहाँ से गुजरेगा वह उसे

झपट्टा मारकर गायब कर देगा। शायद कुमारपाल को इस खतरे की कोई जानकारी नही है। वर्वरक का वार कभी खाली नही जाता। ऐसे मे क्या करे ? दौडकर दरवाजे पर पहुँच जाए। और तो कोई उपाय उसकी समझ में आ नही रहा था। उसने काकभट्ट की ओर देखा। वह भी इसी चिन्ता मे निमग्न था। उदयन का कलेजा मुँह को आने लगा। अब ने दोनो आदमी दरवाजे के ठीक बीच मे पहुँच गए थे। हे भगवान! अब क्या होगा ? उदयन ने इतना निस्सहाय अपने को कभी अनुभव नही किया था।

तभी उसने देखा कि कर्णाटमल्ल उस दरवाजे की ओर धकेला जा रहा है, जिसके पीछे वर्वरक खड़ा था। मारे डर के उदयन की आँखें मुंद गईं। और जब आँखें खुली तो वहाँ कर्णाटमल्ल था ही नही। उदयन आँखें फाड-फाडकर देखने लगा। हाथी-जैसे चौडे-चकले शरीरवाला कर्णाटमल्ल कहाँ गायब हो गया ? क्या धरती उसे निगल गई या हवा ने अलोप कर दिया ? न कोई आवाज़ हुई, न छीना-झपटी; न धक्का-मुक्की और न किसी तरह की खीच-तान, और कर्णाटमल्ल-जैसा पहलवान गायब हो गया था। मानो किसी विशाल सरोवर मे एक ककड पड़ा और अलोप हो गया।

वह डरा कि कही कर्णाटमल्ल के पीछे चला आता कुमारपाल भी तो उसके साथ गायब नही हो गया! लेकिन नहीं, कुमारपाल गायब नही हुआ था। वह दरवाजा पार करके राजसभा के अन्दर प्रवेश कर चुका था। यह देखकर उदयन के जी-मे-जी आया। असल मे हुआ यह कि दरवाजे मे पहुँचकर कुमारपाल ने आगे-आगे चल रहे कर्णाटमल्ल को कन्धे से जोर की टक्कर मारकर उस दरवाज़े की ओर धकेल दिया जिसके पीछे वर्वरक खडा था। वर्वरक ने फौरन उसे दबोच लिया और इस बीच कुमारपाल दरवाजा पारकर राजसभा में पहुँचगया।

उदयन ने कृष्णदेव की ओर देखा। उसने भी अर्णोराज के कर्णाटमल्ल को पहचान लिया था और कुमारपाल को भी, लेकिन इस तरह शान्त बैठा था मानो देखकर भी न देखा और पहचानकर भी न पहचान पाया हो!

सारी राजसभा भी विस्मित देखती रह गई। लोगो की समझ मे नही आ रहा था कि आने वाला एक ही आदमी था या दो थे और उनमे से एक सहमा कैसे गायब हो गया!

लोग विस्मय करते रहें, आँखे फाड-फाडकर देखते रहें, लेकिन कृष्णदेव वैसा नही कर सकता था। उसके लिए तो एक-एक क्षण मूल्यवान था। वह फौरन उठकर खडा हो गया और कुमारपाल का स्वागत करता हुआ बोला: "आइए कुमारपालजी, पधारिए! आपकी तो प्रतीक्षा ही की जा रही थी! बहुत अच्छा हुआ कि आप पधार गए।"

और राजसभा के छोर पर अचल अर्बुदशिखर-जैसा, अपनी पूरी ऊँचाई मे कुमारपाल का लम्बा-चौडा शरीर राजसी गौरव और गरिमा मे खडा दिखाई दिया।

१९ : अभिषेक-महोत्सव

कुमारपाल के वहाँ दिखाई देते ही पूरी राजसभा मे सन्नाटा छा गया। वातावरण पहले से कुछ विक्षुब्ध भी हो गया। कइयो के दिलो मे एक दहशत-सी बैठ गई। लोग असमजस में पड गए कि वह अकेला ही चला आ रहा था या कोई उसके आगे भी था। केशव ने उसे वहाँ खडा देखा और सनाका खा गया। उसे विश्वास ही नही होता था कि कुमारपाल राजसभा मे आ गया है। यही आश्चर्य होता था कि इतने चौकी-पहरे के बावजूद वह अन्दर चला कैसे आया! और न यह भेद त्रिलोचनपाल की समझ मे आ रहा था। मल्हारभट्ट ने अपनी आँखो उसे बर्बरक के झपट्टे मे पडते देखा था। लेकिन वही कुमारपाल अब सही-सलामत सामने खडा था। ऐसे मे मल्हारभट्ट क्या कोई भी सुभट चकित हो सकता था। अन्दाज जरा-सा चूका और असली दुश्मन बच गया, बदले मे कर्णाटमल्ल गायब हो गया। इसका यह मतलब हुआ कि बर्बरक ने कोई गलती नही की, उसका झपट्टा बराबर था। केवल कुमारपाल किसी तरह बच गया। बर्बरक के काम की और साथ ही कुमारपाल की होशियारी की भी तारीफ करनी पडेगी। लेकिन मल्हारभट्टजी, अपने तो चेहरे पर कालिख पुत गई, आई बाजी हाथ से निकल गई और

सारा दाव ही बिगड़ गया।

इधर कुमारपाल ने किसी को कुछ सोचने और करने का मौका ही नही दिया। दनदनाता हुआ आगे वढता रहा। वहाँ उपस्थित सब-के-सब टक लगाए उसे देख रहे थे। कृष्णदेव को उसका इस तरह दवग होकर वढते जाना जरा भी न सुहाया। जिसे वह सत्ता-विहीन राजा वनाना चाहता था उसका ऐसा प्रताप और मनस्विता उसकी योजना से जरा भी मेल नही खाते थे। लेकिन कृष्णदेव के लिए इस समय पीछे हटना भी उतना ही कठिन वल्कि असम्भव हो गया था। इसलिए उसने कुमारपाल का स्वागत करते हुए उसे आगे आने का निमन्त्रण दे दिया। यह देख उदयन निश्चिन्त हुआ। वैसे उसने अपनी ओर से पूरी तैयारियाँ कर रखी थी। यदि कृष्णदेव जरा भी हिचकिचाता या निर्धारित योजना से विमुख होता दिखाई देता तो उदयन अपने लोगो को जयकारा लगाने का सकेत कर देता। इसके लिए उसने सभासदो मे यहाँ-वहाँ अपने खास आदमी पहले से विठा दिये थे। कृष्णदेव इस वात को जानता था, इसी लिए उसने फौरन कुमारपाल का स्वागत किया।

सारी सभा टक लगाए कुमारपाल को देख रही थी। उसके राजसी ठाठ-वाट ने तो सभी की आँखें चौंधिया दी थी। लोगो ने सुन रखा था कि वह भगोडा है, यहाँ-वहाँ मारा-मारा फिरा करता है। ऐसा आदमी फटेहाल, दरिद्र भिखारी के ही वेश मे हो सकता था। लेकिन जो दनदनाता हुआ राजसिंहासन की ओर वढा चला आ रहा था वह भिखारी नही राजाधिराज लगता था। उसके रत्न-जटित मूल्यवान कपडो पर लोगो की आँखें ठहर नही पाती थी। माथे पर जरी की कीमती पगड़ी थी और उससे लका के मोतियो की लडियाँ लटक रही थीं। गले मे लाख द्रम्म मूल्य का कठहार पडा था। अनेक कीमती माणिक, नीलम, पन्ने और पुखराज उसके वस्त्रो मे टँके हुए थे। दोनो हाथो की दसो उँगलियो मे वह सोने की मुद्रिकाएँ पहने था। एक अँगूठी का सफेद हीरा शुक्र तारे की तरह जगमगा रहा था। पाँव मे वह सोने का तोडा धारण किये था। मोतियो के वडे-वडे कुंडल उसके दोनो कानो से लटक रहे थे। एक स्वर्ण मेखला वह वस्त्रो के ऊपर जनेऊ की तरह पहने था और उससे रत्नजटित म्यान लटक रही थी। एक हाथ से वह अपने रत्नजटित दुपट्टे से हवा करता जाता था और उसके दूसरे हाथ में लम्वी तलवार थी।

चेहरे पर महाराज जयदेव का प्रताप उभरता प्रतीत हुआ । उसे लगा जैसे पांवो तले की धरती खिसकती जा रही है । उसने क्या सोचा था और क्या हो गया ! इतनी मेहनत से जिस बाजी को जमाया था वह हाथ से निकली जा रही थी ।

उधर कुमारपाल पूरे आत्मविश्वास से कहे जा रहा था : "कृष्णदेवजी, कृपाण का धर्म कभी बदलता नही, वह अटल और स्थायी होता है । तलवार सदा से धर्म की रक्षा, राज्य का सवर्धन, प्रजा का पालन, दुष्टो का दलन और शत्रुओ का दमन करती आई है । तलवार निर्बलो की रक्षा और सबलो को वश मे करती रही है । शत्रुओ का इसने सदा सहार किया है । महाराज जयसिंहदेव ने सदैव इसी नीति का पालन किया । हमारी भी यही नीति हो । तलवार हमेशा हमारे साथ और हमारी सहायक रहे । यह राजनीति हर मुसीबत में हमारा साथ देगी और हर मुश्किल को आसान कर देगी ।"

कुमारपाल के शब्द किसी चक्रवर्ती सम्राट की घोषणा की तरह राजसभा भवन में गूंज उठे । लोग उसके तेज और प्रताप से अभिभूत हो गए । वह इस तरह बोल रहा था मानो अपने-आपको राजपद पर स्थापित कर चुका हो । उसने आगे कहा : "महादेवजी, आप महाराज जयसिंहदेव की सेवा कर चुके हैं । आप उनके सचिव और सलाहकार रहे हैं । आगे भी राजतन्त्र की इस नौका को खेने का भार आपको ही उठाना होगा । गुजरात के महामात्य का पद आपके पास रहेगा, मेरे पास सिर्फ यह रहेगी " उसने तलवार दिखलाते हुए जयदेव महाराज की पादुकाओ की ओर सकेत किया और आगे बोला : "और ये पादुकाएँ आपके पास रहेंगी । महामात्य के रूप में गुर्जर देश की न्याय-धुरी को आप धारण करेंगे और राज्य-धुरी को मैं । इस समय हमारे घर में भी दुश्मन हैं और बाहर भी । हम चारो ओर शत्रुओ से घिरे हुए हैं । ऐसे समय शक्ति और क्षात्र-धर्म का वरण ही हमारा उद्धार कर सकता है ।"

उदयन ने सुना और चौंक पडा । महामात्य-पद का जो सपना वह बरसो से देखता आ रहा था वह आज दूसरी बार छिन्न-भिन्न हो गया । कुमारपाल ने महादेव को महामात्य-पद पर नियुक्त कर दिया था । लेकिन विरोध अथवा अप्रसन्नता व्यक्त करने का यह समय नही था । निजी पद-प्रतिष्ठा से भी बडा उसके लिए अपना धर्म—अरिहत धर्म था और उसे विश्वास था कि अन्त में उसके धर्म की जय

होगी। मन में इस विचार के आते ही वह पूरे आत्मविश्वास के साथ उठकर खडा हो गया और कुमारपाल का वक्तव्य जैसे ही समाप्त हुआ उसने आगे बढकर अपनी तलवार उसके चरणो मे रख दी। तलवार कुमारपाल के पाँवो मे रखकर उसने अभी हाथ जोडे ही थे कि राजसभा और बाहर उपस्थित जन-समुदाय में से निम्न गाथा सुनाई देने लगी :

पुन्ने वास सहस्से सयमि वरिसाण नवनवट्ट अहिए।

और वहाँ उपस्थित कुवेरराज आदि श्रेष्ठी जनो ने इस गाथा के उत्तर पद को दसो दिशाओ में गुंजा दिया :

होही कुम्मर नरिन्दो तुह विक्कमराय सारिच्छो।

उदयन को अपने मनश्चक्षुओ के समक्ष जैन धर्म का विजयी ध्वज सारे गुजरात और उससे भी आगे सारे भारतवर्ष पर लहराता दिखाई दिया। वह एक क्षण आँखें मूंदे भावविभोर होकर सुनता रहा।

कृष्णदेव भी समझ गया कि अब जीत जल्दी करने में है। ऊहापोह के लिए समय नही था। कदम पीछे हटाना अपनी पराजय को न्यौता देना था। इसलिए उसने भी उदयन का अनुसरण किया और अपनी तलवार खोलकर कुमारपाल के पाँवो में रख दी। फिर उसने हाथ जोडकर उच्चस्वर में जयकारा लगाया :

"महाराज गुर्जरेश्वर की "

"जय हो! जय हो!" कृष्णदेव के तुरग सैनिको और वहाँ उपस्थित सभी राजपूतो ने जयजयकार किया। फिर तो एक-एक कर सभी भटो, सामन्तो और माडलिको ने अपनी-अपनी तलवारें समर्पित करना आरम्भ कर दिया। कृष्णदेव ने किसी को कुछ बोलने या विरोध करने का मौका ही नही दिया।

इधर तलवारें समर्पित की जा रही थी उधर चारणो और वन्दीजनो ने प्रशस्ति पाठ आरम्भ कर दिया। कविजन और पडित चौलुक्य-प्रशस्ति के श्लोक पढने लगे। और लोगो के देखते-ही-देखते इन्द्रलोक की अप्सराओ-जैसी वारागनाओ ने मगल नृत्य आरम्भ कर दिया। पाटन की सुप्रसिद्ध नृत्यागना नीलमणि उनका नेतृत्व कर रही थी। तवले पर थाप पडी, ततुवाद्य वजने लगे, पायल झनकने लगे और अभिषेक महोत्सव का समाँ वँध गया।

उदयन ने सारा प्रवन्ध पहले से कर रखा था। एक के वाद एक इस तरह

आगे बढते हुए उसने अपनी लम्बी विकराल तलवार को थोडा-सा हवा मे भाँजा तो लोगो को लगा, जैसे बिजली कौंध गई। उसके डील-डौल ने पूरी राजसभा को आकर्षित और स्तम्भित कर दिया था। लोगो पर उसका कुछ ऐसा रोब गालिब हुआ कि सब देखते ही रह गए। उन्होने सोच रखा था कि कुमारपाल फटेहाल भिखारी के वेश मे होगा और यहाँ तो वह राजाधिराज की सज-धज और दमखम से चला आ रहा था। सबको यही लगा मानो त्रिभुवनपालजी स्वय ही चले आ रहे हो।

कुमारपाल के इस वीर वेश को देखकर वहाँ उपस्थित अधिकाश क्षत्रिय उत्साहित हो गए। उसके वस्त्राभूषणो और डीलडौल ने ही आधी सभा का मन जीत लिया।

लेकिन कृष्णदेव की चिन्ता का पार न था। जिसे वह सत्ता-विहीन राजा बनाना चाहता था उसका ऐसा रोब-दाब उसके लिए भय का कारण बन गया। परन्तु कृष्णदेव आसानी से हार माननेवाला जीव नही था। अपने वर्चस्व की स्थापना मे वह एक क्षण की भी देर नही करेगा। उसने झुककर महामात्य महादेव के कान मे कुछ कहा। महादेव अपने स्थान से उठा और फुर्ती मे आगे बढा। लेकिन इस बीच कुमारपाल सिह गति से चलता हुआ सिहासन के पास पहुँच गया था और कोई कुछ कहे उसके पहले तो वह महाराज जयसिहदेव की तरह वीरासन लगाकर सिहासन पर बैठ भी गया। उसकी लम्बी तलवार राज-रानी की तरह उसकी बगल मे शोभित हो रही थी।

लोग अभी तक आश्चर्य से आँखे फाडे कुमारपाल की ओर देख रहे थे। उसके सिहासन पर बैठ जाने के बाद कई आँखो मे यह प्रश्न नाच गया कि यह स्थायी रूप से बैठ गया है या इससे पूछनेवाला भी कोई है!

निश्चय ही प्रश्न पूछनेवाला था। महामात्य महादेव को उसका इस तरह सिहासन पर बैठना जरा भी अच्छा नही लगा। उसकी दृष्टि मे कुमारपाल का यह कृत्य राजसभा की मर्यादा को भग करनेवाला था। वह सिहासन के समीप आ खडा हुआ और गुजरात के महामत्री की अधिकारपूर्ण वाणी मे राजसभा [illegible]बोधित करता हुआ बोला "सभासदो, कुमारपालजी भी आ गए हैं। अब [illegible]र्णय करना है।"

फिर उसने कुमारपाल को सम्बोधित किया। इस बार उसका स्वर पहले से अधिक अधिकारपूर्ण हो गया था। "कुमारपालजी, महाराज जयसिंहदेव की राजसत्ता का प्रतिनिधित्व इस समय ये कर रही हैं।" उसने महाराज की पादुकाओं की ओर संकेत किया : "आपको उत्तर इन्हें देना होगा। अभी हमें कृष्णदेवजी बता रहे थे कि अपने अन्त समय महाराज जयसिंहदेव पूरी तरह क्षमाशील और उदार हो गए थे। न उनका कोई प्रिय रह गया था और न कोई अप्रिय। समत्व प्राप्त करके वे बारहवें रुद्र बन गए थे। इसी लिए हम आपको यहाँ आमन्त्रित कर सके। बाकी तो महाराज का शब्द हमारे लिए अटल था, है और रहेगा। लेकिन परिस्थितियों और महाराज की अन्तिम अभिलाषा पर हमें विचार करना ही होगा। इसलिए आपसे एक प्रश्न किया जाता है। मान लिजिए कि आज की परिस्थिति में आपको गुजरात का राज्य सौंपा जाए तो आपके शासन का ढंग क्या होगा? आपकी राजनीति और कार्य-पद्धति क्या होगी? गुजरात के गौरव की अभिवृद्धि आप कैसे करेंगे? पाटन की वर्तमान स्थिति से आप परिचित हैं। अब बताइए कि आप इन सारी उलझनों को कैसे सुलझाएँगे?"

"हाँ, कुमारपालजी!" अब कृष्णदेव भी उठ खड़ा हुआ। वह बड़ी देर से अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए व्यग्र हो रहा था। उसने महामात्य के स्वर-में-स्वर मिलाते हुए कहा : "गुजरात का राज्य तो एक विशाल साम्राज्य से भी बड़ा है। क्या आप इसे अखण्ड और अविभाज्य रख सकेंगे? हम यह जानने के लिए उत्सुक हैं कि आपके राजकाज का ढंग क्या होगा? यदि आपको राज्य सौंपा गया तो आप किस नीति का अवलम्बन करेंगे? अपनी राजनीति के बारे में आपने कुछ सोचा-विचारा है?"

"मेरी तो सिर्फ एक ही राजनीति है कृष्णदेवजी, और वह यह. . ." इतना कहकर कुमारपाल ने अपने पास रखी लम्बी विकराल तलवार को उठा लिया। क्षण-भर के लिए जैसे बिजली-सी कौंध गई। तलवार लिये हुए कुमारपाल का वह हाथ इन्द्र के वज्रदण्ड की तरह लग रहा था। उसके चेहरे का तेज सौ गुना अधिक हो गया था।

लोगों को उसके शब्दों में गजब की दृढ़ता दिखाई दी। कृष्णदेव को उसके

कार्यक्रमो का मारा शुरू हुआ कि लोगो को सोचने-विचारने का मौका ही नही मिला। सारे सभासद देखने-सुनने में तल्लीन हो गए। यहाँ तक कि स्वय महामात्य के ममझ में नही आ रहा था कि क्या कहे और क्या करें। सारे कार्यक्रम इतने पूर्व-नियोजित थे कि कृष्णदेव भी एक वार तो घवरा गया। सभा-सचालन के जिस सूत्र को वह अपने हाथ में रखे था वह एक ही झटके मे उसके हाथ से निकला जा रहा था। लेकिन सत्ता को छोडनेवाला जीव वह था नही। उसने एक वार फिर जोर मारा। चारो ओर से 'कुमारपाल की जय' और 'भगवान सोमनाथ की जय' के नारे लगने लगे। इन जयकारो ने सारे नगर को गुंजा डाला और हर नागरिक के मन में इस वात को मजबूती से विठा दिया कि कुमारपाल महाराज जयसिहदेव के उत्तराधिकारी पद पर प्रतिष्ठित हो गया है। और इन जयकारो ने यह भी घोपित कर दिया कि अव विरोध करने का मतलव सशस्त्र सघर्ष करना होगा और विना शस्त्र एव सैनिक वल के इस तरह का सघर्ष हो नही सकेगा।

केशव सेनापति, त्रिलोचन और मल्हारभट्ट खडे देखते रह गए। किसी भी निश्चय पर पहुँचना उनके लिए सम्भव न हुआ। यहाँ तक कि प्रतापदेवी और भाववृहस्पति भी स्तम्भित रह गए। घटनाएँ एक-एक कर विद्युत्गति से घटती जा रही थी। नृत्य के साथ जयजयकार, जयजयकार के वाद मगलवाद्य। सहसा एक साथ कई शख वज उठे। मृदगिये मृदग वजाने लगे। ढोल, नगाडे, शहनाई, पखावज, भेरी आदि वाजे वजाने लगे। सुहागिनें मगलगीत गाने लगी। कुबेरराज श्रेष्ठी दोनो हाथो से सोने-चाँदी के द्रम्म उछालने लगा। इस गडवडी में त्यागभट्ट सिहासन की ओर लपका। कुमारपाल पर चँवर ढोले जा रहे थे। उसके दोनो भाई महिपाल और कीर्तिपाल पास ही खडे थे। चारो ओर से कुमारपाल पर पुष्प-वर्षा हो रही थी। राजमहल की वाँदियो-दासियो से घिरी कुमारपाल की वहिन प्रेमलदेवी अपने भैया को वधाई देने राजसभा मे आ पहुँची। अन्त पुर में भी हर्पध्वनि और कुमारपाल का जयजयकार होने लगा था।

त्यागभट्ट एक क्षण के लिए ठिठक गया। इस समय कुमारपाल से जूझने के वदले क्यो न वह गजदल को अपने अधिकार में कर विद्रोह का झण्डा ऊँचा कर दे! गजसेना तो सारी त्यागभट्ट के ही हाथ मे थी। तभी कुमारपाल की निगाह

उस पर पड़ गई और वह दहाड उठा . "कृष्णदेवजी ! काकभट्ट कहाँ है ? सारे दरवाज़े तुरत वन्द करवा दीजिए । वाहर निकलकर जो उत्पात मचाना चाहते हैं उन सवको यही रोक लीजिए ।"

अव कुमारपाल के पक्षधरो ने भी त्यागभट्ट को देखा । वाग्भट्ट और काकभट्ट आदि कई सुभट फुर्ती से सिंहासन के पास आ खडे हुए । किसी भी ओर से हमला किये जाने के पहले ही वे वचाव के लिए तैयार हो गए थे ।

इधर कुमारपाल ने सीधे-सीधे त्यागभट्ट को ललकारा "आओ त्यागभट्ट, इधर आओ ! मल्ल-युद्ध नही कर सकते तो यह लो "

कुमारपाल ने एक तलवार उसकी ओर फेंकी । "लो, उठा लो ।" और खुद सिंहासन से एक कदम नीचे उतर आया । तभी वाहर ज़ोर का कोलाहल सुनाई दिया । त्यागभट्ट ने मुडकर देखा तो तीन-चार घुडसवार तेज़ी से भागे जा रहे थे । वे तोनो त्रिलोचन, केशव और मल्हारभट्ट से मिलते-जुलते थे । लोग उन्हे रास्ता देने के लिए चिल्ल-पौं मचा रहे थे और वे तीनो घोड़ो पर चावुक बरसाते अन्धा-धुन्ध भाग रहे थे । राजसभा-भवन के दरवाज़े पर त्रिलोचन खडा था । त्यागभट्ट को वह इस समय वहाँ दिखाई नही दिया । वह समझ गया कि तीनो आदमी भाग गए हैं । उसने सोचा कि क्यो न वह भी उनका अनुसरण करे । अभी कुमारपाल का सितारा चढती पर था । द्वन्द्व-युद्ध से मामले का निपटारा हो नही सकता था; उलटे वह वन्धन मे पड जाता । राजसभा मे उसके समर्थक भी थे अवश्य, पर कौन कहाँ है इसका पता लगाना असम्भव नही तो कठिन अवश्य था । उन समर्थको का अभी तो कोई उपयोग नही किया जा सकता, लेकिन भविष्य मे अवश्य किया जा सकेगा । यहाँ रुका रहा तो पकड लिया जाएगा । वाहर निकल गया तो विद्रोह का झण्डा वुलन्द कर सकेगा । अभी तो समय है और निकलकर जा सकेगा; दरवाज़ा सूना पडा था । वह फुर्ती से लौट पडा और झपटता हुआ सीढियाँ उतर गया । कोई कुछ कहे उसके पहले तो वह मैदान मे पहुँच गया और हवा से वातें करता हुआ अपने हाथी की ओर भागा जा रहा था ।

त्यागभट्ट के दरवाज़े मे से वाहर निकलते ही काकभट्ट का आदेशात्मक स्वर सुनाई दिया "वोसरि, तुम जाकर खडे हो जाओ त्रिलोचन की जगह । द्वारभट्ट कहाँ है ? अव किसी को भी दरवाज़े से वाहर मत निकलने दो "

और काकभट्ट फुर्ती से त्यागभट्ट के पीछे लपका।

लेकिन तब तक वह अपने हाथी के पास पहुँच गया था। इशारा पाकर हाथी ने सूँड की सीढी बना दी और त्यागभट्ट उसके गण्डस्थल पर पहुँचकर बोला "चौलिग, चल पडो।" पलक झपकते ही उसका हाथी वहाँ से भागा और देखते-देखते आँखो से ओझल हो गया। केवल दूर जाती हुई उसकी घटियो की आवाज सुनाई दे रही थी। इस भाग-दौड के कारण राजसभा के नृत्य-वादन के कार्यक्रम में थोडा विक्षेप जरूर पड गया था। जब त्यागभट्ट का हाथी आँखो से ओझल हो गया तो नाचना-वजाना फिर जोरो से चल पडा। लोग भी सब भूल-भालकर नृत्य देखने लगे।

फिर 'जय सोमनाथ!' के गगनभेदी घोष-निर्घोष के साथ पडित सर्वदेव कुमारपाल के कपाल पर चन्दन का तिलक लगाने के लिए आगे वढा।

लेकिन ठीक उसी समय भाववृहस्पति अपने स्थान पर उठकर खडा हो गया। सोमनाथ के इस पुजारी महन्त की लोगो में बडी प्रतिष्ठा थी और जबर्दस्त प्रभाव भी। मान-सम्मान उसका राजा के ही समकक्ष किया जाता था। इसलिए जैसे ही वह उठकर खडा हुआ, चार कदम चलकर आगे आया, सिहासन के पास पहुँचा और उसका एक हाथ उठता दिखाई दिया कि राजसभा और वाहर के मैदान में भी शान्ति छा गई। उसका ऊँचा गोरा शरीर मूर्तिमान धर्म की तरह लग रहा था। तूफान के निकल जाने के वाद जिस तरह क्रम-क्रम से शान्ति होती जाती है उसी तरह एक-एककर वाजे वन्द होते गए, कोलाहल शान्त होने लगा, जयध्वनि मन्द होती गई, नाचनेवालियाँ, रुक गईं, मगलगीत गानेवालियाँ चुप हो गईं और शान्ति स्थापित होने लगी। महामात्य महादेव ने दोनो हाथ उठाकर लोगो को एकदम चुप हो जाने का सकेत किया।

भाववृहस्पति दो क्षण चुप खडा रहा।

थोडी देर मे एकदम शान्ति हो गई। भाववृहस्पति के इस प्रभाव से कुछ लोगो को ईर्ष्या और चिन्ता भी अवश्य हुई।

भाववृहस्पति ने सारी सभा पर दाएँ से वाएँ एक दृष्टि डाली। लोगो को आशीर्वाद देने के लिए उसके दोनो हाथ ऊँचे उठे। श्वेत दाढी-मूछो और जटाजूट से मडित उसके भव्य मुखमडल पर लोगो के नेत्र चिपक-से गए। दोनो हाथ जोडे

सबके सिर झुकते दिखाई दिए।

उदयन, काकभट्ट, कृष्णदेव और कुमारपाल आदि सभी क्षण-भर के लिए चिन्तित हो गए। त्यागभट्ट के प्रति महन्त के प्रेम और पक्षपात की बात सभी को मालूम थी। उदयन की योजना का पूरा पता न होने के कारण ही महन्त अपनी बात कहने में पिछड गया था। अब यदि उसने त्यागभट्ट का दावा पेश कर दिया तो क्या होगा? लेकिन उदयन उसकी एक न चलने देगा। महन्त की इस चाल का प्रतिकार तो करना ही होगा। उसने फौरन वौसरि को इशारे से अपने पास बुलाया और उसके कान में कुछ कहा। दूसरे ही क्षण वौसरि बाहर जाता दिखाई दिया। और काकभट्ट भी उसके पीछे-पीछे बाहर निकल गया।

इधर भावबृहस्पति अपनी सस्कृतनिष्ठ मधुर भाषा मे कह रहा था "कुमारपाल, मंत्रियो और सभासदो! चौलुक्यो का यह सिहासन भगवान् सोमनाथ की महती कृपा से अब तक स्थिर रहा है। कई झझावात आए, अनेक तरह की उथल-पुथल हुई, लेकिन यह सिहासन अपनी जगह बना रहा। धर्म का पालनकर्ता और पवित्र होने के कारण यह हर विपत्ति में सुरक्षित रह सका। गजनवी ने आक्रमण किया, मालवा चढ दौडा, तेलगणो ने हमले किये, शाकभरी घुस आया, लेकिन कोई इसका बाल भी बाँका नही कर सका। गुर्जरेश्वरो का यह सिहासन अटल और अविचल है। हमें इसको स्थिर और अटल बनाए रखना है। भगवान सोमनाथ के सकेतो को जानने-समझने का यत्किंचित् अधिकार मेरे-जैसे क्षुद्रातिक्षुद्रजन को भी प्राप्त है। इसे ईश्वर का वरदान ही समझिए। मैं तो भगवान सोमनाथ का सामान्य भक्त ही हूँ। महाराज जयसिहदेव को भगवान सोमनाथ के प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे। इसका भी एक गहरा अर्थ है। क्या आप इस अर्थ को जानना चाहते हैं?"

"जी हाँ! बताइए, अवश्य बताइए।" चारो ओर से उत्सुक स्वर सुनाई दिए।

भावबृहस्पति सामूहिक मनोविज्ञान का पडित था। अपनी बात लोगो के गले उतारने से पहले कृष्णदेव के प्रभाव को मिटाना उसके लिए नितान्त आवश्यक हो गया था। कृष्णदेव की शृखलाबद्ध त्वरितगामी योजनाओ ने उसके सामने कई कठिनाइयाँ उपस्थित कर दी थी। लोगो के ध्यान को बँटाकर ही वह अपनी बात कह और लोगो को प्रभावित कर सकता था। इसलिए उसने कहा "पाटन के

सिंहासन को टिकाये रखने का अब केवल एक ही मार्ग रह गया है। मुझे वह मार्ग ज्ञात है और मैं आपको वह उपाय बताता हूँ।"

कृष्णदेव और उदयन भावबृहस्पति की वाक्शक्ति से खूब परिचित थे। उसकी बोली का जादू लोगों के सिर पर चढ़कर बोलता था। दोनों चिन्तित हो उठे, क्योंकि उन्होंने साफ देख लिया कि सारी राजसभा उसकी वाणी के प्रभाव में मन्त्र-मुग्ध खिंची जा रही थी। उदयन को लगा कि अब तक का सब किया-कराया मिट्टी हो जाएगा। कृष्णदेव को भी यही डर सताने लगा। जो कौर मुँह को आ रहा था, उसके छिन जाने की स्थिति बनती जा रही थी। लेकिन दोनों चुप लगाए सुनते रहे।

जन-सामान्य में भावबृहस्पति की अलौकिक शक्तियों की बड़ी धूम थी। अनेक रावराणा, माडलिक और छुटभैये उसे भविष्यवक्ता मानते थे और उसकी कही हर छोटी-बड़ी बात पर श्रद्धापूर्वक विश्वास करते थे। कृष्णदेव के निकट साथियों में भी कई भावबृहस्पति के भक्त थे। बहुत-से तो उसे पाटन के राजा का समकक्ष ही समझते थे। ऐसी स्थिति में कृष्णदेव के लिए न तो उसका विरोध करना सम्भव था और न उपेक्षा ही। बिलकुल साँप-छछूँदर की-सी गति हो गई थी उस समय कृष्णदेव की।

और इधर भावबृहस्पति अस्खलित वाणी में कहे जा रहा था : "अब पाटन का सिंहासन एक ही शर्त पर टिका रह सकता है और वह है उस पर किसी भी राजा का न होना।"

"राजा न रहे, यह क्या बात हुई ?" कई लोग साश्चर्य पूछ उठे। कृष्णदेव सुनता रहा। महामात्य सुनते रहे। कुमारपाल चुप बैठा प्रतीक्षा करता रहा।

"राजा न रहे तो फिर सिंहासन पर कौन बैठे ?" महादेव ने पूछा।

"महामात्यजी, अब यह राज्य गुर्जरेश्वर का नहीं भगवान सोमनाथ का है। इस सिंहासन पर बैठनेवाला भगवान सोमनाथ के प्रतिनिधि के रूप में राज्य करे, सिंहासन पर बैठते ही वह गुजरात का सारा राज्य भगवान सोमनाथ को अर्पित कर दे। महाराज जयदेव के सोमनाथ-साक्षात्कार का मुझे तो यही रहस्य समझ में आता है। महाराज की चरण-पादुकाओं का सिंहासन पर स्थापित किया जाना भी मेरी समझ में यही दर्शाता है। महाराज जयसिंहदेव के साथ चौलुक्य

राजवंश का समाप्त हो जाना मेरे मन तो इस वश के लिए गर्व और गौरव की बात है। महाराज जयसिंहदेव के साथ यह वश प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा के शिखर पर पहुँच गया है। जिस राजा ने देवादिदेव महादेव के प्रत्यक्ष दर्शन कर लिये उसके सिंहासन पर भला कोई मानवी बैठ सकता है! नही, कदापि नही बैठ सकता।"

"फिर राज्य क्यो कर चलेगा प्रभो?" कृष्णदेव ने पूछा "पाटन तो चारों ओर शत्रुओ से घिरा हुआ है, उसका क्या होगा?"

"डरने की कोई बात नही कृष्णदेव! अब पाटन का राजा होगा भगवान सोमनाथ का प्रतिनिधि। वह भगवान के नाम पर और भगवान की ओर से शासन करेगा। ऐसा देव-प्रतिनिधि राजा होगा अतुल बल-वीर्यधारी। उसका राज्य भगवान को समर्पित होगा। आप उत्सर्गित कर दीजिए गुर्जर देश को भगवान सोमनाथ के प्रति। फिर देखिए कि वह राजा किस तरह सारी प्रजा को एक धर्म, एक ध्वजा, एक रणहुकार और एक सस्कृति के तले सगठित करता है! ऐसा किया गया तभी गुर्जर देश टिक सकेगा। आपको केवल पास-पडोस के शत्रु दिखाई देते हैं, मुझे टिड्डियो की भाँति उमडकर आता विदेशी दस्युदल दिखाई दे रहा है।"

"दिखेगा ही प्रभो! आपकी दृष्टि सोमनाथ के समुद्र पर लगी है और हमारी अर्बुदगिरि पर। उधर का समुद्र तो अभी शान्त है, परन्तु यहाँ धरती सुलग रही है। खैर! देव-प्रतिनिधि ही सही। आवश्यकता तो एक शासक की है ही। बताइए कौन होगा वह देव-प्रतिनिधि?" उदयन ने एक दम सीधा सवाल किया।

"मन्त्रीश्वर, भगवान सोमनाथ ने महाराज को प्रपन्न पुत्र गोद लेने के लिए क्यो प्रेरित किया? केवल इसी लिए। महाराज का वह प्रपन्न पुत्र ही देव-प्रतिनिधि है।" भावबृहस्पति ने बडी शालीनता के साथ कहा और आगे बोले "त्यागभट्ट महाराज का प्रपन्न पुत्र है। महाराज उसे मानते भी थे। उसके रहते यदि आप कोई और व्यवस्था करना चाहें तो खुशी से कीजिए। लेकिन तब मैं भगवान सोमनाथ के नाम पर आपको सचेत कर देना चाहता हूँ कि ऐसा कोई भी कृत्य अनुचित और अधर्म होगा। मै ऐसे अनुचित कार्य मे न सहयोग दूंगा और न उसे स्वीकार

करूँगा। मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि यदि इस सिंहासन पर देव-प्रतिनिधि हुआ तो राज्य टिकेगा अन्यथा नष्ट हो जाएगा, और त्यागभट्ट ही देव-प्रतिनिधि हो सकता है, दूसरा कोई भी नही। धर्म, लोकहित और महाराज की अन्तिम इच्छा—तीनो दृष्टियो से केवल त्यागभट्ट ही देव-प्रतिनिधि हो सकता है। फिर यह भी परम्परा चली आती है कि सिंहासन पर ऐसे पुरुष को विठाना चाहिए जो किसी भी दृष्टि से निन्द्य न हो। कुमारपालजी को चर्मरोग है। उन्हें शारीरिक दृष्टि से अनिन्द्य नही कहा जा सकता और दूसरा कोई है नही, जिसे सिंहासन पर विठाया जा सके।"

भाववृहस्पति का स्वर अधिक ऊँचा और गम्भीर होता गया। उनके एक-एक शब्द मे सच्चाई की गूँज भरी थी। इस सारी योजना का कर्ता और नियामक उदयन था, इसलिए उसकी ओर टकटकी वाँधकर उन्होने कहा "मत्रीजी, आपने वहुत जल्दवाजी कर डाली।" फिर उनकी दृष्टि मैदान के पार एक जगह स्थिर हो गई, नेत्रो से प्रकाश किरणें विकीरित होने लगी। स्वर और भी तेज़, और भी स्पष्ट और दृढ हो गया। एक-एक शब्द आनेवाले दिनो की स्पष्ट सूचना देने लगा।

"आपने जिसे स्थापित किया है उसे विस्थापित करने से यदि देश मे सघर्ष छिडने की सम्भावना हो तो उसे वना रहने दीजिए। लेकिन वह सवके विनाश का कारण होगा, क्योकि अधर्म है। धर्म की सामर्थ्य और रक्षा करने की उसकी महती शक्ति का आपको ज्ञान नही है। धर्मच्युत हो जाने से जैसा विनाश होता है उसे भी आप नही जानते। मै सोमनाथ के समुद्र-तट पर अकेला वैठा-वैठा सागर के उस पार से आती 'अल्लाहो अकवर' की ध्वनि सुनता हूँ। पहले एक वार यवनो की यह रण-पुकार सोमनाथ के पावन तट को रौद चुकी है। महाराज भीमदेव-जैसे वीरवर भी उन्हें परास्त न कर सके। यवनो का वही दस्युदल फिर आएगा और तुम्हें पददलित और पगु करके रख देगा। धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता से प्रेरित होकर तुम यह सव कर रहे हो, लेकिन भूले जा रहे हो कि सकट की घडी मे तुम्हारा सिर्फ एक ही धर्म है और वह है एक होकर विजातीय और विधर्मी शत्रु से युद्ध करना। मत भूलो कि 'हर हर महादेव' का रणघोष ही आज तुम्हारा मूलमत्र है। केवल वही तुम्हें वचा सकता है।

"देवता का प्रतिनिधि देश ही देवता की महिमा और माहात्म्य को धारण कर सकता है। ऐसा देश युद्ध से कभी पराङ्मुख नही होता। उदाहरण के लिए मदेपाट को लो। वहाँ का राणा देव-प्रतिनिधि है। दक्षिण की ओर दृष्टि डालो। वहाँ भी यही स्थिति है। शासन और सिहासन देवता को समर्पित किये विना देश की जनता मे धर्मवल को जगाया नही जा सकता। जब देश और देवता एकरूप हो जाते हैं तो उस देश का हर युद्ध धर्म-युद्ध वन जाता है, और धर्म-युद्ध मे कोई पराजित नही होता। सहारक वर्वरता का सामना भी केवल धर्म-वल से ही किया जा सकता है।

"लेकिन यह बात आपके गले उतरेगी नही। उतरने भी क्यों लगी ? आपको अपने सम्प्रदाय का मोह है। साम्प्रदायिक पक्षपात से प्रेरित होकर आप कार्य कर रहे हैं। इसलिए आपकी दृष्टि दूषित हो गई है। सहस्रो वर्षों से चली आती इस देश की अविच्छिन्न परम्परा को नूतन शक्ति से मडित करने और नये कल्याणकारी विचारो से अभिप्रेरित करने के वदले आप सकुचित स्वार्थ से प्रेरित अपना अलग ही घरौंदा वनाने मे लगे है। इसी लिए आपको समुद्र पार से आने-वाले यवन आक्रान्ताओ का भीम गर्जन सुनाई नही पड़ता। वे आएँगे और तुम्हें, तुम्हारी सन्तान और तुम्हारे घर-द्वार को नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। उनसे लडने और उनके दुर्धर्ष प्रहारो के सामने टिके रहने का केवल एक ही मार्ग है—धर्म के वल से युक्त होकर, राज्य को देवापर्ण करके नये ढग का चक्रवर्तीत्व स्थापित करो। देश यह तभी वचेगा जव यहाँ राजा नही, देव-प्रतिनिधि स्थापित होगा।

"तुम्हारी दृष्टि पहाड की चोटियो पर और तलहटियो मे है। इसी लिए तुम्हे समतल मैदान दिखाई नही देता। तुम सोचते हो कि पहाड और घाटियाँ तुम्हारी रक्षा करेंगे, शायद कर सकें। लेकिन मै तो वही कहूँगा जो मुझे दिखाई देता है। तुमने अधर्म किया है और चाहते हो कि अधर्म फूले और फले ! लेकिन अधर्म फूला-फला नही करता मुझे गुजरात का यह पवित्र सिहासन लहूलुहान होता दिखाई दे रहा है। महाराज जयसिहदेव के इस सिहासन से मुझे शोणित की धारे वहती नजर आ रही है ."

भाववृहस्पति का लम्वा गौरवर्ण पुष्ट शरीर सीधा तन गया था। अव वे एक भविष्यवक्ता के अन्दाज मे वोल रहे थे · "अव यह सिहासन किसी को

उत्तराधिकार में नहीं मिला करेगा। चौलुक्यों का वंश-वृक्ष कुम्हला गया है। चौलुक्य पारिजात का रघुवंशी परिमल उड़ गया है। आज से यह पवित्र सिंहासन सत्ता हथियाने की घृण्य संघर्ष-स्थली बन गया है। अब इस सिंहासन के लिए पुत्र पिता का और भाई भाई का वध करते भी नहीं हिचकेंगे। आप लोग मेरी बात न मानना चाहें तो न सही। यह राजसभा आपके अनुचित कार्यों का समर्थन करती हो तो करे! आज विजय चाहे आपकी ही हो मन्त्रीश्वर! लेकिन मुझे तो इस सबका परिणाम विनाश और पतन और रक्तरंजित गृह-युद्ध और परिवारमेध ही दिखाई दे रहा है! इससे अधिक कुछ कहना व्यर्थ ही होगा।"

भावबृहस्पति समझ गए थे कि बिना संघर्ष के कोई भी अपना अधिकार छोड़ने को राजी न होगा। और संघर्ष वे चाहते नहीं थे। उदयन का जल्दबाजी-वाला मार्ग अपनाना भी उनको अभीष्ट नहीं था। इसलिए अन्त में उन्होंने कुमार-पाल को सम्बोधित किया "कुमारपालजी, जब आप क्लान्त हो जाएँ, निराशा का अनुभव करने लगें, निरुपाय हो उठें तो भगवान सोमनाथ की छत्रछाया में चले आइएगा। प्रतापदेवी, आओ, हम चलें। इससे अधिक न हम कुछ कर सकते हैं और न कह ही सकते हैं। हमारे लिए जो करणीय था वह हमने किया, अपने धर्म का पालन किया, राजसभा को जितना समझा सकते थे समझाया। मन्त्रीश्वर से भी जो कहना था कहा। अब यदि धर्म इनको प्रिय हुआ तो हमें बुलाएँगे; अप्रिय हुआ तो इनका भार भगवान सोमनाथ पर रहा। हम तो चलते हैं और जाते-जाते एक बार फिर आपसे कहे जाते हैं कि राजा को स्थापित करने के बदले यदि देव-प्रतिनिधि त्यागभट्ट को शासन का भार सौंपा गया तो देश का कल्याण होगा। आगे जैसी आपकी इच्छा। आओ प्रतापदेवी, चलें! त्यागभट्ट कहाँ है?"

"मैं बताता हूँ प्रभो, त्यागभट्ट कहाँ है?" उदयन हाथ जोड़े खड़ा हो गया और सारी राजसभा सुन सके इस तरह बोला "यदि आप जानना ही चाहते हैं कि त्यागभट्ट कहाँ है तो मैं बताता हूँ।"

"हाँ-हाँ, जरूर बताओ, कहाँ है?"

वोसरि और काकभट्ट लौट आए थे और सामने ही खड़े थे। काकभट्ट ने पास आकर उदयन के कान में कुछ कहा। उसने काकभट्ट को ही सामने कर

दिया और बोला · "यही आपको बताएँगे प्रभो! मैं नही बताऊँगा। आपके विश्वास को मैं डिगाना नही चाहता। मुझसे इतना बडा पाप हो नही सकेगा।"

भावबृहस्पति के चलने के लिए उद्यत पाँव रुक गए और उन्होने पूछा · "बोलो, बोलो, काकभट्ट! कुमारतिलक कहाँ है ?"

काक ने हाथ जोडकर ऊँची आवाज़ मे कहा "महाराज, त्यागभट्ट जहाँ जा रहे है उसे न बताना ही अच्छा है। उनके इरादो को जानना हमारे गौरव की बात नही।"

"भला, ऐसी क्या बात है ? जो भी हो आप जरूर बताइए।"

काकभट्ट थोडी देर चुप खड़ा रहा। फिर उसने हाथ जोडकर भावबृहस्पति को शिरसा प्रणाम किया और ऊँची आवाज़ मे बोला · "सभासदगण, आप लोग भी सुनिए। त्यागभट्ट ने ऐसा काम किया है जो हम सब को कुपित करनेवाला है। वह यहाँ से सीधा शाकभरी की ओर जा रहा है। जो उसके इस कृत्य से डरते हो वे भले ही उसे लौटा लाने की बात करें। बाकी महाराज जयदेव तो देवता स्वरूप थे। उन्होने सोच-विचार कर ही अपनी अन्तिम इच्छा कृष्णदेवजी को बताई थी।"

भावबृहस्पति का मन तर्क-वितर्क करने लगा। उन्होने आशकित होकर पूछा "शाकभरी की ओर ? आपको कैसे मालूम हुआ त्यागभट्टजी ? वहाँ क्या है ? और वह वहाँ क्यों जा रहा ?"

"क्यो जा रहा है, यह मैं बतलाता हूँ महाराज! आपने यह कहावत तो सुनी ही होगी कि दिलजला सारे गाँव को जलाकर शान्त होता है।" उदयन ने जोर से कहा और फिर हाथ जोडकर काचनदेवी की ओर देखते हुए बोला . "काचन-देवी अर्णोराज की पत्नी है लेकिन जब पति ने गुजरात का अपमान किया तो इनसे सहा न गया और राज-पाट तो ठीक पति को भी छोडकर ये यहाँ चली आईं और अपने पुत्र सोमेश्वर को साथ ले आईं; क्योकि ये बेटी गुजरात की हैं और इन्होनें पानी सरस्वती नदी का पिया है। गुजरात को ये प्रेम करती है, और गुजरात पर ये निछावर हैं। पट्टनी को तो स्वर्ग मे भी अपने पाटन की याद आती है। अर्णोराज का गुजरात-द्वेष इनसे सहा न गया। एक ये है और एक है त्यागभट्ट, जो जरा-सी बात पर गुजरात को छोड़कर शाकभरी की ओर चला

जा रहा है। जानते हैं क्यो ?" उदयन बात का बतगड बनाना खूब जानता था। भावबृहस्पति के प्रभाव को मिटाने का मनचाहा अवसर अनायास ही हाथ लग गया था। वह इससे लाभ क्यो न उठाता!

"आप ही बताइए मेहताजी, कि वे वहाँ क्यो जा रहे हैं ?" प्रश्न पूछा कृष्णदेव ने।

"क्या आप जानते नही कृष्णदेवजी, कि अर्णोराज गुजरात पर किस कदर नाराज़ है ? गुजरात के शत्रु उसी अर्णोराज से सहायता लेने वह वहाँ जा रहा है। वह शाकभरी को गुजरात पर आक्रमण के लिए तैयार करने गया है।"

सुनते ही राजसभा मे सनसनी फैल गई। तभी काचनदेवी उठकर खडी हो गई। उदयन के आनन्द की सीमा न रही।

"क्या कह रहे हैं मेहताजी आप ? शाकभरी को गुजरात पर चढा लाना चाहता है वह ?" काचनदेवी समझ गई थी कि कुमारपाल तो राजा बन ही गया है। बिना लडे कोई इसे विस्थापित नही कर सकता। तो क्यो न वह इस अवसर पर पट्टनियो के दिलो में अपने सोमेश्वर के लिए स्थान बना ले !

उसने ऊँची आवाज़ मे बडे रोब के साथ कहा · "मेहताजी, यदि शाकभरी ने पाटन पर आक्रमण किया तो मेरा सोमेश्वर प्रतिरोध करनेवालो की पाँत में सबसे पहला होगा। मैं पहले पुत्री पाटन की हूँ, शाकभरी की बहू बाद में। बेटा बाप का सामना करे, यह क्षत्रियो के लिए कोई नई बात नही। बभ्रुवाहन ने अर्जुन का सामना किया था। यदि शाकभरी आक्रमण कर रहा हो तो पहले उसी के प्रतिरोध का उपाय कीजिए। बाकी बातें तो बाद मे भी होती रहेगी। क्यो कृष्णदेवजी, महामात्यजी, आप लोगो की क्या राय है ?"

"लेकिन अब बछडा कूदेगा खूँटे के बल। अर्णोराज को घर का भेदी त्यागभट्ट जो मिल गया है!" उदयन ने मर्म प्रहार किया।

"बस कूद चुका ! क्या खूँटा और क्या बछडा! उसे कूदने का अवसर ही क्यो दिया जाए। पहले हमी क्यो न चढ दौडें उस पर ? क्यो मन्त्रीश्वरजी ?" रागरग के स्थान पर तत्काल रणरग का वातावरण हो गया।

लेकिन उदयन तो यह चाहता नही था। उसने फौरन हस्तक्षेप किया 'गुरुवर्य, इस सम्बन्ध में जो भी निर्णय करना होगा, महाराज सक्षम हैं और वही

करेंगे ! आप आशीर्वाद दीजिए। इस सिंहासन को आप सदैव आशीर्वाद देते आए हैं, आज भी देते जाइए। महाराज जयसिंह देवपुरुष थे। भविष्य उनसे छिपा नहीं था। इसी लिए वे कृष्णदेवजी को अपनी अन्तिम इच्छा वतलाते गए। हमें अब जल्दी करनी होगी। युद्ध हमारे सिर पर मँडरा रहा है। आप आशीर्वाद दीजिए कि हमारी विजय हो!"

भावबृहस्पति और प्रतापदेवी त्यागभट्ट की जल्दवाजी के कारण खासे सकट मे पड गए थे। उदयन ने उनके निस्तार का मार्ग सुझा दिया। उन्होंने तुरत हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। कुमारपाल ने फौरन झुक्कर प्रणाम किया।

उन्होंने जैसे ही जाने के लिए पाँव वढाया उदयन के इशारे पर पुनः मगल-वाद्य वजने लगे। विरोध का वातावरण अभी तो शान्त हो गया था। कृष्णदेव भी यही चाहता था। फिर वारागनाएँ नाचने लगी। चारण और वन्दीजन विरुदा-वली वखानने लगे। महाराज कुमारपाल के जयजयकार से आसमान गूंजने लगा। चारो ओर अभिषेक महोत्सव की धूम मच गई। स्वर्ण-रजत पुष्पो से कुमारपाल को वधाई देने के लिए सुहागिनो का समूह मगल गीत गाता हुआ आगे वढने लगा।

तभी सर्वदेव पडित चन्दन, अक्षत, धूप-दीप और अभिषेक सामग्री लिये हुए सिंहासन की ओर आता दिखाई दिया।

२० : शाकंभरी के रास्ते

काकभट्ट ने तो केवल गप्प मार दी थी, लेकिन वह सच सिद्ध हो गई। केशव, त्रिलोचन अथवा मल्हारभट्ट मे से किसी ने यह सोचा भी नही था कि विरोधी पक्ष इतनी जल्दी करेगा। उदयन ने सारे कार्यक्रम इस तरह आयो-जित किये थे कि किसी को सोचने का मौका ही नही मिला। इसलिए जैसे ही दरवाजे वन्द करने की घोषणा हुई वे तीनो वाहर निकल आए और अपने-अपने

घोडो पर सवार होकर भाग चले। हवा से वातें करते हुए वे पाटन के मुख्य प्रवेशद्वार में से वाहर निकले और घोडो को सरपट दौडाते हुए चलते चले गए। कुछ दूर निकल जाने पर उन्हें लगा जैसे किसी का हाथी पीछे लगा चला आ रहा हो। उन्होने सोचा, त्यागभट्ट ही होना चाहिए। वह भी इन्ही की तरह भागा चला आ रहा था। वे उससे मिलने के लिए रुक गए। सोचने लगे, चलो तीन से चार हो जाएँगे। और भी कोई आ मिले तो अच्छा। सारी सभा तो उदयन और कृष्णदेव से सहमत नही होगी। थोडे-बहुत विरोधी जरूर होगे, परन्तु उदयन की जल्दवाजी के कारण किसी को कुछ कहने या करने का मौका नही मिला था। अब सब इकट्ठा होकर विरोध का झण्डा खडा करेंगे। इतने मे त्यागभट्ट आ पहुँचा। वे सब एक वरगद के नीचे रुककर मन्त्रणा करने लगे।

त्यागभट्ट को काक कुछ दूर अपने पीछे आता दिखाई दिया था। फिर वह शायद लौट गया। लेकिन वे जानते थे कि पाटन से पीछा करनेवाले आएँगे जरूर। चुपचाप तो उन्हे भागने दिया नही जाएगा। भागने पर उन्हें मजबूर होना पडा था। यदि भागे न होते तो पकड़े जाते और इस समय वन्दीगृह मे होते। इतनी-सी वात के कारण वे पाटन के शत्रु घोषित कर दिये गए थे। और यह वात केशव के लिए मर्मान्तिक दु ख का कारण हो गई थी। जो पाटन मे जन्मा, छोटे-से-वडा हुआ, सरस्वती की धारा मे जिसने स्वर्ग-सुख को भी तुच्छ समझा वही आज पाटन से भागने को मजबूर हुआ और पाटन का शत्रु कहलाया! हाय, विधि की कैसी विडम्वना! या क्यो न इसे मनुष्य की असहिष्णुता कहा जाए!

उन्होने वहाँ से तुरत चल देने का फैसला किया। लेकिन वहुत सोचने-विचारने के वाद भी यह तय न हो सका कि किस ओर जाना ठीक रहेगा। त्यागभट्ट को विन्ध्य-वन मे पाँचेक सौ हाथी मिल जाने की आशा थी। यदि इतने हाथी मिल जाएँ तो वह उन्हे सिखा-पढाकर पाटन की सारी अकड ढीली कर सकता था। हस्ति-विद्या और गज-युद्ध मे कोई उसे पा नही सकता था। एक वार गज-सेना खडी हो जाए फिर तो मैदान उसके हाथ रहेगा और आज जो लोभ अथवा भय के वशीभूत उदयन एव कृष्णदेव के साथ हैं वे सब उसके पक्ष मे आ मिलेंगे। उसकी नीति हाथियों की सहायता और कुमारपाल के विरोधियो से अपना

भविष्य बनाने की थी। त्रिलोचन ने उत्साहपूर्वक उसकी इस योजना का समर्थन किया। मल्हारभट्ट को भी इस योजना मे आशा की किरण दिखाई दी। केवल केशव ने कोई उत्साह प्रकट नही किया। उसका दिल टूट चुका था, इसलिए चुपचाप सुनता रहा।

वे रात-दिन बराबर चलते रहे। जल्दी-से-जल्दी पाटन से दूर निकल जाना चाहते थे। दूसरे ही दिन उन्होने गोध्रक-पन्थ को पार कर लिया। वहाँ से आगे अवन्ती का जनपथ शुरू होता था। यहाँ पहचाने जाने का भय था इसलिए रात-रात में चलने लगे। अवन्ती के बाद दक्षिण की ओर मुडे। आगे चलकर नर्मदा नदी पडी। इसके घने जगलो में हाथी मिलने की पूरी आशा थी। त्यागभट्ट यहाँ के कुछ वनरक्षको को जानता भी था। पाटन से चलते समय उसने कई कीमती रत्न अपने साथ ले लिये थे।... इस तरह चलते हुए वे लोग विन्ध्या के घने जगलो में पहुँच गए।

यहाँ नर्मदा किनारे सगमरमर की चट्टानो को देखकर केशव को पाटन नगरी याद आ जाती और उसके कलेजे में हूक-सी उठने लगती। वह महाराज जयसिंहदेव का सेवक ही नही मित्र भी था। उसने त्यागभट्ट को पाटन की गादी पर बिठाने की प्रतिज्ञा की थी। महाराज जयसिंहदेव त्यागभट्ट का हाथ उसे पकडा गए थे। लेकिन जब पाटन पर सेना लेकर चढाई करने की बात सामने आई तो उसका मन विद्रोह कर बैठा। पाटन पर हमला हो और वह हमलावरो के साथ हो, ये दोनो बातें उसके लिए असह्य थी। पिछले अनेक वर्षो से पाटन की रक्षा का भार उस पर था। अपने काले घोडे पर सवार वह कई बरसो से पाटन नगरी के प्रवेशद्वार की रक्षा करता रहा था। अब वही पाटन पर हमला करेगा? असम्भव! लेकिन इसके सिवा और कोई रास्ता भी उसे दिखाई नही देता था।

कुछ समय उन्होंने उस जगल में ही बिताया। लेकिन यहाँ पाटन के कोई समाचार पहुँच नही पाते थे। एक भील को गोध्रक-पथ में भेजा गया। उसने लौट आकर बताया. 'लगता है कि अवन्ती ने पाटन पर आक्रमण कर दिया है। मालवा की सेना गोध्रक-पन्थ की राह पाटन की ओर बढ रही है।' केशव को पुराने दिन याद आ गए। किसी समय उसने गोध्रक-पन्थ में ही मालवा के मोरचे पर पाटन की सेना का सचालन किया था।

उधर त्यागभट्ट जोर-शोर से काम में लगा था। वह न दिन को दिन समझता और न रात को रात। वह ऐसा मदोन्मत्त गन्धहस्ती पा लेना चाहता था जिसकी गन्ध पाते ही शत्रु-पक्ष के सारे हाथी दुम दबाकर भाग खड़े हों। वह युवक था, उग्र और उतावला था, कल्पनाशील और आशावादी भी कम नहीं था। उसे विश्वास था कि देर-अबेर ऐसा हाथी मिल ही जाएगा।

उसने एक साथ कई रक्षको को काम पर लगा दिया। हांका करनेवाले जमा किये गए और खेदा होने लगा। कई हाथी पकड़े गए। कुछ उसने नये भी खरीदे। वह जल्दी-से-जल्दी एक जोरदार हस्ति-सेना खड़ी कर लेना चाहता था। जहाँ गज-सेना तैयार हुई कि वह अर्णोराज से जा मिलेगा और तब आगे की योजना बनाएगा। लेकिन यहाँ काम बहुत धीमा चल रहा था। पाटन के समाचार भी नहीं मिल पाते थे। पाटन से इतना दूर रहना उन्हें ठीक न लगा। अन्त मे हाथियो के प्रशिक्षण का कार्य कुछ विश्वस्त भील राजाओ के हवाले कर वे तीनो वहाँ से चल पड़े। कुछ दिनो इधर-उधर घूम लें। जब हाथियो के तैयार हो जाने की खबर मिलेगी तो फिर लौट आएँगे।

घूमते-घामते वे चन्द्रावती पहुँचे। कुछ दिन उन्होने वही रहने का निश्चय किया। यह जगह पाटन के करीब थी। इस टोह में रहने लगे कि कुमारपाल के विरुद्ध लोगो के असन्तोष के समाचार मिलें और वे उससे लाभ उठाएँ। यहाँ के शासक विक्रमसिंह के बारे मे निश्चयपूर्वक कुछ कहा नही जा सकता था कि वह पाटन का मित्र है अथवा शत्रु। केशव, त्रिलोचन, त्यागभट्ट और मल्हारभट्ट यहाँ भेष बदलकर रहने लगे। वे मन्दिर के रास्ते पर बैठे हाथ के बने खिलोने बेचा करते और आने-जानेवालो के मुँह से नये-नये समाचार सुना करते।

एक दिन उन्होंने सुना कि 'कृष्णदेव का घमण्ड बहुत बढ गया है और उसके और महाराज कुमारपाल के बीच ठन गई है।' दूसरे किसी दिन केशव ने एक आदमी को यह कहते सुना कि भावबृहस्पतिजी ने राजसभा में कहा था कि 'अब इस सिंहासन पर चौलुक्यो का कोई उत्तराधिकारी नही बैठेगा और यह सिंहासन रक्त-रंजित हो जाएगा।' दोनो बातें सुनकर केशव व्यथित हो गया। लगा जैसे उसपर गाज ही गिर गई हो।

एक दिन वे इसी तरह बैठे खिलौने बेच रहे थे कि केशव को एक वनवासी

दिखाई दिया और वह चौंक पड़ा। उसने यह वात त्रिलोचन को वताई तो वह भी चौंका। केशव ने उसे चन्द्रावती के संगमरमर के महल के पासवाली झाड़ी मे गुम होते देखा था।

दूसरे दिन वह आदमी फिर दिखाई दिया। केशव ने आज उसका पीछा किया। वह घने जगल की राह सगमरमरवाले महल के पीछे की ओर जा रहा था। कुछ दूर जाने के वाद केशव ने पुकारा "तुझे जयदेव महाराज की सौगन्ध, ओ जानेवाले भूत, रुक जा!"

जगल की उस पगडडी पर एक काला-कलूटा वनवासी चलता-चलता रुक गया। केशव ने पास पहुँचकर आँखो मे आँखें डालकर देखा और चौक पडा: "अरे वर्बरक, तू है! यहाँ कैसे?"

लेकिन सामने जो हाथजोडे, नाक पर उँगली रखे खडा था वह वर्बरक नही था। वह था वर्बरक का कोई भाई-बन्धु, विलकुल वर्बरक से मिलता-जुलता। जव कोई महत्वपूर्ण काम करना होता तो वर्बरक इसे बुला लिया करता था। इसे यहाँ शायद वर्बरक ने ही भेजा था।

"तू यहाँ क्या कर रहा है?"

"आगमहल वना रहा हूँ।"

"आगमहल! किसके लिए? कौन वनवा रहा है?"

"विक्रमसिहजी!"

केशव चिन्तित हो उठा। पूरी वात अभी उसकी समझ में नही आई थी। उसने अधिक जानकारी के लिए फिर उस आदमी की ओर देखा, लेकिन वह तो जगल में गायव हो गया था।

केशव को उस रात नीद नही आई। तालाव के किनारे एक कच्चे मकान में वे चारो रहते थे। उस शाम जव वे अपने बिना विके खिलौने लेकर घर लौटे तो केशव ने त्यागभट्ट को किसी गुनताडे में पडा पाया। कारण वह जान न मका। अपनी ही चिन्ता में व्यस्त वह जागता पडा रहा। रात आधी वीत गई, पर उसे नीद नही आई। जव रात दो पहर वीत गई तो उसने त्यागभट्ट को विस्तर से उठकर दवे पाँवों वाहर जाते देखा। उसका कुतूहल जाग पडा। उठकर देखा तो मल्हारभट्ट गहरी नीद सोया था। त्रिलोचन के भी खर्राटे सुनाई दे रहे थे। केशव

ने निःशब्द त्यागभट्ट का अनुसरण किया। वह समझा कि वर्वरक आया होगा और जरूर कोई महत्वपूर्ण सन्देशा लाया होगा।

थोडी देर वाद केशव ने एक आदमी को आते देखा।

"कौन, चौलिग ?" त्यागभट्ट ने धीरे से पूछा।

"हाँ प्रभो।" आगन्तुक ने जवाव दिया।

केशव कान लगाकर सुनने लगा। वह जान लेना चाहता था कि त्यागभट्ट चौलिग से क्या कहता है।

"चौलिग, कल सवेरे तू यहाँ से पाटन भाग जाएगा। मैं तुझे मार-पीटकर निकाल दूंगा।" त्यागभट्ट ने कहा।

"मार-पीटकर निकाल देंगे ?"

"हाँ, मार-पीटकर। सवके सामने तुझ पर विश्वासघात का आरोप लगाकर पिटाई करूँगा और भगा दूंगा। सवेरे सवसे पहला काम यही किया जाएगा। हमारे साथ केशव मेनापति भी है, वह कुछ ज्यादा नैतिक वनता है। लेकिन मैं तो तुझे निकाल रहा हूँ। तू यहाँ से सीधे पाटन चले जाना। कुमारपाल देर-अवेर आनक पर आक्रमण करेगा ही। उस समय वह कलहपचानन नामक हाथी पर सवारी कर लडाई के मैदान में उतरेगा। मैं उस हाथी को जानता हूँ। तेरे सिवाय दूसरा कोई भी महावत उसे अकुश में रख नही सकता। उस समय तेरी ढूंढ होगी। अभी से तू यह प्रचारित कर देना कि मैंने तुझे मारकर भगाया है। इससे तेरे उस समय महावत वनाये जाने का रास्ता साफ हो जाएगा। फिर लडाई के मैदान में मैं और कुमारपाल आमने-सामने होगे और तुझे अपनी कला दिखानी होगी।"

केशव ने सुना तो सन्नाटे मे आ गया। यह त्यागभट्ट तो पाटन का सर्वनाश ही करने पर तुला था। उसका दिल टूट गया।

"तू सारी वात समझ गया न ? और वह कहाँ तक पहुँचा ?"

"काफी वन गया है। किसी को कानोकान खवर नहीं। वडी अद्भुत वनावट है। वर्वरक का कोई भाई-भतीजा काम कर रहा है।

केशव को लगा जैसे छाती फट जाएगी। वह योद्धा था, षड्यन्त्रकारी नही। शत्रु से लडाई के मैदान में दो-दो हाथ कर सकता था, यो धोखे से मारना उसकी

नीति के प्रतिकूल था। और यहाँ साफ छल-कपट की वात हो रही थी, पहले चौलिग दगा देगा और यदि उससे काम नही वना तो आगमहल का सहारा लिया जाएगा। केशव को इतनी वात मालूम हो गई।

उधर त्यागभट्ट चौलिग को विदा करता हुआ कह रहा था : "देख, अपना वानक पूरा वनाना, कपटचाल में कही कसर न आने पाए। उधर धूर्त-शिरोमणि उदयन मेहता से पाला पडेगा। जरा-सी भी चूक हो गई तो इधर मेरी पूरी योजना खटाई में पड जाएगी।"

"आप फिकर न करें मालिक। मैं उदयन के वेटे आम्रभट्ट को ही साधूँगा। वह वडा लडवैया है। उस एक को साधने से सव सध जाएँगे और हमारा वेडा पार उतर जाएगा। उदयन उससे वहुत स्नेह करता है और उसकी किसी वात को टालता नही। वाकी तो वहाँ जाने पर जैसा होगा करूँगा।"

"ठीक है। सवेरे पिटने और नौ-दो-ग्यारह होने के लिए तैयार होकर आ जाना।"

चौलिग वहाँ से जाता दिखाई दिया। कही त्यागभट्ट देख न ले इसलिए केशव भी चुपचाप खिसक आया।

२१ : कृष्णदेव की मगरूरी

विजय का नशा विजया के नशे से कही तेज और भयकर होता है। भग का नशा घडी-आधी घडी के लिए काल्पनिक स्वर्ग की सैर करा देता है जवकि विजय का नशा घड़ी-आधी घड़ी मे ही ऐसे नर्क मे गिरा देता है जहाँ से उवरना असम्भव हो जाता है। भाँग पीने पर नशा आता है और आदमी अपने होश-हवास खो देता है। जीत के यह हाल हैं कि होने से पहले ही आदमी का आपा भुला देती है। भाँग को छोड़नेवाला लाख रुपए का आदमी वन जाता है; विजय को छोडनेवाले की कीमत फूटी कौडी की भी नही रह जाती। विजया का सेवक

चाहे और कुछ न करे भगवान शकर के नाम पर दो छीटे तो डाल ही देता
विजयी को अपने सिवा और कोई नही दीखता ! वह किसी से हिस्सा नही
सकता ।

राजसभा मे अपनी विजय का भान होते ही कृष्णदेव की आधी अकल बौरा ग
थी। और जो थोडी बची रह गई थी वह उदयन मत्री की मीठी बाते सुनकर हिरा गई
राजसभा के समापन पर उदयन ने मीठी चुटकी लेते हुए कहा था "प्रभो!
कुमारपालजी राजा जरूर बने हैं, लेकिन हुकूमत तो आपके हाथ मे है। अब
आपको हाकिम की तरह रहना-बरतना चाहिए।"

कृष्णदेव उदयन की इस बात पर लट्टू हो गया। यह बात उसके दिल मे घर कर
गई कि कुमारपाल को राज्य उसी की बदौलत मिला है। और अहकार का यह
बिरवा फूल-फैलकर विशाल वृक्ष बन गया। वह यहाँ तक सोचने लगा कि पाटन
मेरी बदौलत टिका हुआ है और सारी दुनिया मेरे ही बल-बूते पर चल रही है।
फिर तो वह उठते-बैठते अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने और अपने काम की डींगें
हाँकने लगा। सुननेवालो ने उसमे अपनी ओर से मिर्च-मसाला लगाकर एक की
जगह चार जडना शुरू कर दिया। अब बात का यह कायदा है कि मन मे रहने
पर मजा, दो जनो के पास जाने पर रस और एक की जगह चार जडी जाने पर
सर्वनाश कर देती है। और इधर कृष्णदेव के यह हाल कि उसकी बात चलने के
बजाए दौडने लगी थी। जब तक एक-एक बात को हजार बार न कह लेता उसका
पेट ही नही भरता था।

उसकी मगरूरी पहले ही दिन से सीग निकालने लगी थी। अभी कुमारपाल
का अभिषेक पूरा भी नही हुआ था कि कृष्णदेव का अहकार बाँध तोडने लगा।
बात यो हुई।

अभिषेक-महोत्सव समाप्त हुआ। उपस्थित जन-समुदाय ने महाराज कुमार-
पाल के जयजयकार से धरती और आसमान को गुंजा दिया।

कल्हपचानन हाथी आज खूब सिगारा गया था। वह बाहर मैदान मे खडा
महाराज की प्रतीक्षा में झूम रहा था। कुमारपाल को आते देख उसने सूँड उठाकर
नमस्कार किया, फिर महावत के अकुश का इशारा पाकर वह थोडा झुक गया
और सामने के दोनो पांव लम्बे कर दिये।

वगल मे सीढी लगा दी गई। आगे-आगे कृष्णदेव और पीछे-पीछे महाराज कुमारपाल चले आ रहे थे। सोने-चाँदी के फूलो की वर्षा अव भी हो रही थी। कुवेरराज श्रेष्ठी द्रम्म उछालता चला आ रहा था।

कुमारपाल ने सीढी पर पाँव रखा ही था कि कृष्णदेव ने कहा : "प्रभो ! आप समझते नही, पहले मुझे जाने दीजिए।"

कुमारपाल रुक गए। सोचा, शत्रुओ ने कोई चाल न चली हो, इनका ऊपर जाकर देख-भाल कर लेना अच्छा ही है। इस वीच कृष्णदेव ऊपर जाकर सुनहरे हौदे मे वैठ भी गया। और वैठा था वह दाहिने हाथवाली पहली वैठक पर, ठीक छत्र के नीचे। महीपाल और कीर्तिपाल पीछे खडे चँवर डुला रहे थे। जव कुमारपाल ऊपर आए तो कृष्णदेव थोडा-सा परे इस तरह खिसका मानो कृपा कर रहा हो; और वडे वुजुर्गाना ढग से वोला . "आओ, आओ, महाराज! यहाँ आ जाओ!"

उदयन ने यह देखा और कृष्णदेव का घमण्ड काँटे की तरह उसके दिल मे चुभ गया। लेकिन अभी तो कुछ किया नही जा सकता था। कई वार मूर्खो और घमण्डियो को भी सह लेना पडता है। इतनी कुशल हुई कि देवस्थली से महारानी भोपलदे आई नही थी। यदि वे इस समय होती तो इस मूर्ख की यह चाल खुद उसी के लिए उलटी पड जाती।

हाथी आगे वढ़ा। जनसमूह महाराज कुमारपाल का जयजयकार करने लगा। लेकिन लोगो को आश्चर्य भी हो रहा था—छत्र के नीचे महाराज के साथ कृष्णदेव भी वैठा था। देखनेवालो को वात कुछ अजीव-सी लगी।

महामात्य महादेव ने इसे देखा तो समाधान पाने के लिए उदयन का मुँह जोहने लगे। उस वेचारे से जवाव देते न वना। आँखे झुकाए जमीन की ओर देखता रह गया। मानो कह रहा हो कि अभी धीरज से काम लेना चाहिए, या शायद यह कि कृष्णदेव का पतन हुआ ही समझो।

लेकिन कृष्णदेव फूलकर कुप्पा हुआ जा रहा था। उसने इसे अपनी जीत ही समझा। उस क्षण से वह अपने-आपको सत्ताविहीन राजा का स्वामी और सरक्षक समझने लगा। विजय का नशा दिनोदिन गहरा होता गया। सैनिको मे उसका हुकुम वजा लाने की होड मची रहती। सामन्त उसका मुँह जोहा करते। रण-

बाँकुरे राजपूत यह मान बैठे कि उनके बिना राजा कैसा ? कृष्णदेव के घमण्ड का बुलबुला फूलता ही चला गया। उसके सगी-साथियो का हाल तो और भी बुरा—करेला और सो भी नीम चढा-जैसा हो रहा था। हर जगह कृष्णदेव की तूती बोलने लगी। उसके आदेश के बिना पत्ता भी नही खडक सकता था। राजमहल का सारा प्रबन्ध उसकी मुट्ठी मे था। कौन चौकीदार किस दरवाजे पर खडा रहेगा और कौन-से हथियार बाँधेगा, यह आदेश भी कृष्णदेव देता था।

कुमारपाल देखते और कटकर रह जाते थे। वे काफी कष्ट उठा चुके थे। जल्दबाजी वे करना नही चाहते थे। हर बार तरह दे जाते, हर मौके पर कतराकर निकल जाते।

और इस तरह कृष्णदेव का घमण्ड बढता और असह्य होता गया।

२२ : राजाधिराज

चौलिग जब पाटन पहुँचा तो वहाँ की यही स्थिति थी। उसे अपना काम बनाना बहुत मुश्किल लगा। एकदम प्रकट हो जाना भी उचित नही था। तब तो कोई उस पर विश्वास ही नही करता। उलटे यह भी सम्भव था कि पकडकर बन्दीगृह मे डाल दिया जाता। आम्रभट्ट को अनुकूल करना भी उतना ही कठिन लग रहा था। हर कदम पर खतरा लगा हुआ था। इसलिए उसने सबसे पहले महाराज का विश्वास प्राप्त करने का निश्चय किया। यह भी पता चला कि महाराज को कलहपचानन के लिए एक अनुभवी और योग्य महावत की आवश्यकता है। कई महावत बुलाये गए लेकिन उस हाथी को कोई अपने वश मे नही कर सका। बिना महावत के वह हाथी दो कौडी का था, अगर योग्य महावत मिल जाए तो वही हाथी हजार हाथियो पर भारी था। महाराज इस बारे मे चिन्तित और अच्छे महावत की खोज में भी थे। लेकिन महाराज से मिलना आसान नही था। राजमहल के चारो ओर सशस्त्र पहरा लगा हुआ

था। महल के हर फाटक की दुर्ग-द्वार की तरह रक्षा की जा रही थी। वहाँ का सारा प्रवन्ध कृष्णदेव के हाथ मे था। उसकी अनुमति के विना पत्ता भी नही खडक सकता था। इसलिए चौलिग कुछ दिनो पाटन के रग-ढग देखता रहा। दिनोदिन उसका विस्मय वढता गया। जिस पाटन को वह छोड गया था उसमे और आज के पाटन मे जरा भी साम्य नही था। आज सर्वत्र कृष्णदेव के नाम की तूती वोल रही थी। सव कृष्णदेव के नाम से काँपते थे। सेना, सामन्त, रावराणा और छुटभैये तो उसी को राजा मानते थे। महाराज कुमारपाल किससे मिलें और किससे नही, यह फैसला भी वही करता था। उसकी मर्जी के विना कोई भी आदमी कुछ भी नही कर सकता। जनसाधारण के लिए तो कृष्णदेव का नाम डर का पर्यायवाची ही वन गया था। लोग तो छुपे-छुपे यहाँ तक कहने लगे थे कि महाराज केवल नाम के है, वास्तविक सत्ता तो कृष्णदेव के ही हाथ मे है। उदयन को भी चौलिग ने शान्त और चुप पाया। फिर भी उसे यही लगा कि वह अपना काम वना लेगा।

एक दिन उसे पता चला कि जव महाराज जन-सम्पर्क के लिए निकलते हैं तो उनसे मिला जा सकता है। एक वार उसने उन्हें इसी तरह सरस्वती के तट पर देखा था। यद्यपि कृष्णदेव उस समय भी साथ था, परन्तु मिलनेवालो पर कोई खास रोक-टोक नही थी और लोग आजादी से मिल-जुल रहे थे। उस दिन से वह अवसर की ताक मे रहने लगा। रोज सवेरा होते ही सरस्वती नदी के किनारे पहुँच जाता था। और तो कोई रास्ता उसे दिखाई नही देता था।

एक दिन नियमानुसार नदी किनारे सवेरे-सवेरे पहुँचा तो उसने पाटन के प्रवेशद्वार को खुला पाया। उसे आश्चर्य हुआ, क्योकि आज दरवाजा रोज की अपेक्षा जल्दी खुल गया था। पूछने पर पता चला कि महाराज जन-सम्पर्क के लिए इधर आनेवाले हैं। वह दर्शनार्थियो और मिलनार्थियो के साथ खडा हो गया और प्रतीक्षा करने लगा।

सूर्योदय होते-होते लोगो की खासी भीड वहाँ जमा हो गई। आने-जानेवालो की सख्या में भी काफी वृद्धि होती जा रही थी। नदी के उस पार से छोटी-वडी कई नावें इस पार आती दिखाई देने लगी। जो लोग नगर-प्रवेश के लिए द्वार खुलने का रात-भर रास्ता देखते रहे थे उन्होने छुटकारे की साँस ली। उस पार से

आनेवाली नावें देश-विदेश के कलाकारो, कारीगरो, जौहरियो, अश्व-विक्रेताओ, राजपुरुपो, पडितो, मल्लो, वारागनाओ, योद्धाओ, अधिकारी व्यक्तियो, गुप्तचरो, प्रपचियो, धनुर्धारियो, जादूगरो, नटो, विटो, सुभटो आदि से भरी हुई थी। नगर में प्रवेश करने से पहले उन सवको द्वारपाल के सामने जाना होता था, इसलिए हर नौका के किनारे लगने के साथ प्रवेशद्वार पर भीड वढती जाती थी। सीधे प्रवेश करना तो किसी के लिए सम्भव नही था। चौलिग वहां खडा यह सब देखता रहा।

इतने में घोडो की टापो की आवाज़ सुनाई दी। कई घोडे हिनहिनाते चले आ रहे थे। उनके पीछे हाथी की झूल में बँधी घटियो की आवाज़ आ रही थी। लोग समझ गए कि महाराज कुमारपाल की सवारी चली आ रही है। लोगो का कुतूहल बढा और हलचल में भी वृद्धि हुई। महाराज के हाथी को रास्ता देने के लिए लोग इधर-उधर हो गए। द्वारपाल ने सवको विनयपूर्वक खडे हो जाने का आदेश दिया। थोडी देर बाद महाराज का हाथी आता दिखाई दिया।

सुनहरे राजछत्र के नीचे महाराज के ही पास, चौलिग ने कृष्णदेव को भी बैठे देखा। अभी तक उसने कृष्णदेव की मगरूरी के किस्से सुने थे। आज अपनी आँखो से प्रत्यक्ष देख भी लिया। सवारी में पीछे दो सशस्त्र अगरक्षक भी थे। कलहपचानन सूँड उछालता हुआ वहाँ आकर खडा हो गया। सभी उपस्थित लोगो ने हाथ जोडकर अभ्यर्थना में सिर झुका दिये।

कलहपचानन हाथी वहुत वडा और काफी तगडा था। वह काले रग की छोटी-मोटी पहाडी-जैसा ही लगता था। उसे वस में रखना मामूली महावत के वूते की वात नही थी। इस समय जो महावत उसके गडस्थल पर अकुश लिये वैठा था उसके चेहरे से यह वात साफ जाहिर हो रही थी। वह वहुत घबराया हुआ लग रहा था और यह आशका उसे रह-रहकर व्यथित कर रही थी कि उसका हाथी कही वेकावू न हो जाए। चौलिग इस महावत से परिचित नही था। यह कोई नया आदमी मालूम पडता था। सभी जानते हैं कि हाथी सिर्फ एक महावत के वस मे रहता और उसी की वात मानता है। चौलिग उसे शुरू से ही हँकारता आया था और उसका एक शब्द ही हाथी को वश मे करने के लिए वस होता था। लेकिन चौलिग जाने कहाँ चला गया था, इसलिए कलहपचानन की रण-

कुशलता मे खामी आ गई थी। धीरे-धीरे वह दूसरे महावत का अभ्यस्त होता जाता था। लेकिन कभी-कभी विगड उठता तो किसी भी तरह वस मे नही आता था। हाथी भी जानता था कि महावत अभी नया है। चौलिग ने ये सब वातें वहाँ सुनी और प्रसन्न हो गया। लेकिन यह भी नही चाहता था कि पहचान लिया जाए इसलिए एक ओर दुवका खड़ा रहा।

महाराज ने जब देखा कि द्वारपाल ने उनके कारण काम वन्द कर दिया है और लोगो को असुविधा हो रही है तो उन्होंने सकेत से काम शुरू करने का आदेश दे दिया। हाथी एक ओर खडा हो गया और जाँच-पडताल का काम पूर्ववत होने लगा। यह देख चौलिग के आस-पास खडे लोग 'वाह-वाह' कर उठे और एक ने मुँह पर हाथ रखकर कहा · "राजा तो अद्भुत है, लेकिन इसके चगुल से छूटे तव जानो!" सुननेवाले ने उसका हाथ दवाकर कान मे कहा "चुप-चुप! कोई सुन लेगा तो सीधे शूली टँगना पड़ेगा!"

इतने मे कृष्णदेव ने ऊँची आवाज़ मे जो-कुछ कहा उसे सुनकर आस-पास खडे घुडसवार चुप-चुप मुस्कराने लगे।

कृष्णदेव कह रहा था · "द्वारपालजी, अपना काम रोकिए मत। महाराज जहाँ पचास वरस इन्तजार करते रहे वहाँ घड़ी-दो घडी की कोई वात नही।"

"कृष्णदेवजी, हमारे कारण काम रुकना नही चाहिए। ये लोग सारी रात उस पार पडे रहे। हमें इस वात को भूलना नही चाहिए . ."

"मैं भूला नही हूँ।" कृष्णदेव ने परिहास के स्वर मे कहा : "और तुम भी तो नही भूले हो! हजारो वार तुम्हें इन लोगो की तरह नदी के उस पार रातें वितानी पडी है, इसलिए भूल नही सकते। जनने की पीडा माँ ही जानती है, वाँझ प्रसव की पीडा क्या जाने! हमारे महाराज जानते है। और क्यो न जानेंगे? पचास वरस पत्थर तोडते रहे हैं। महाराज ने जितनी टाँगे तोडी है दूसरा कोई क्या तोड़ेगा!"

लोग मुँह मोड-मोडकर हँसने लगे। कुमारपाल खिन्न वदन हो गए, लेकिन फिर भी शान्त वने रहे।

इतने मे एक विदेशी नवयुवक सामने आता दिखाई दिया। उसके हाथ मे

रत्नजटित म्यानवाली एक लम्बी तलवार थी। हाथी के पास आकर उसने वह तलवार महाराज को देने के लिए एक हाथ ऊँचा किया। ठीक उसी समय हाथी जाने क्यो विगड गया। उसने सूंड का झपट्टा मारकर उस युवक को पकडा और तलवार सहित ऊँचा उठा दिया। वह बेचारा अधर में लटका छटपटाने लगा। लोगों मे शोर मच गया। घुडसवार अदबदाकर पीछे हट गए। कृष्णदेव और कुमारपाल हौदे में खडे होकर 'अरे! अरे!' करने लगे। पचानन विफर गया था और उसकी आँखें क्रोध से लाल होती जा रही थी। लोग-बाग अनिष्ट आशका से थर-थर कांपने लगे। लग रहा था कि हाथी उस अभागे युवक को अभी उछालकर फेंक देगा और उसकी वोटी-वोटी विखर जाएगी। महावत ने हाथी को शान्त हो जाने के लिए वहुत पुचकारा, लेकिन जव कोई लाभ होता दिखाई न दिया तो उसने अकुश उठाया। तभी महाराज कुमारपाल ने उसका हाथ पकड लिया और डाँट वताई "मूर्ख, क्या करता है! इस तरह तो पचानन उसे उछाल ही देगा।"

उधर कृष्णदेव ने तलवार खीच ली। वह हाथी की सूंड ही काटने जा रहा था। महाराज न दूसरे हाथ से उसे रोकते हुए कहा "कृष्णदेवजी, यह क्या करते हो! गुजरात को खोने का इरादा है? कलहपचानन पर तलवार भाँजोगे?"

ऊपर यह सव हो रहा था और नीचे हाथी के पास खडा एक आदमी प्रेम भरी धीमी आवाज में कलहपचानन को समझा रहा था· "पचानन! वेटा, यह क्या? वह महाराज पर आक्रमण करने नही आया था। छोड दे, छोड दे वेटा! उसे नीचे उतार दे। मल्ल .मल्ल! मेरी वात भी नही सुनोगे! वहुत हुआ, अव छोड दो! पचानन, छोड दो! नीचू, नीचू नीचू!"

सव लोग चित्रलिखित-से देखते रह गए। कलहपचानन की उठी हुई सूंड धीरे-धीरे नीचे आती गई और उसने उस युवक को आहिस्ते से जमीन पर उतार दिया। उस वेचारे के तो प्राण ही निकल गए थे। पाँव जमीन पर रखे जाते ही वह भागा और दूर जाकर खडा हो गया।

"कौन हो तुम?" महाराज कुमारपाल ने चौलिग की ओर देखकर पूछा। कलहपचानन पर काबू पानेवाले इस आदमी को वे पहचान नही पाये थे; इसलिए फिर पूछा "कहाँ के रहनेवाले हो?"

तभी कृष्णदेव का उग्र स्वर सुनाई दिया: "यह वाद मे पूछिएगा महाराज!

तेजपालजी, अभी तो इस आदमी को वन्दी वना लीजिए। मेरे खयाल मे तो यह चौलिग ही होना चाहिए। उसके बिना कोई भी कलहपचानन पर इतनी जल्दी क़ाबू नही पा सकता।"

"लेकिन उसे वन्दी क्यो वना रहे है ?"

"आप इस वात को समझ नही सकेंगे महाराज !" कृष्णदेव ने उपेक्षा भरे स्वर मे कहा : "जो आदमी पचास वरस मारा-मारा फिरता रहा वह दो दिन मे राज-काज की वारीकियाँ समझ नही सकता ! तेजपाल, दोनो को वन्दी वना लो।" कृष्णदेव ने उस विदेशी युवक की ओर देखते हुए अधिकारपूर्ण स्वर मे पूछा : "तुम कौन हो ? कहाँ से आते हो ? और यह तलवार लेकर क्यो आये हो ? इस तलवार मे क्या खासियत है ? तेजपाल, इसे भी वन्दी वना लो। और फिर वाद मे इन दोनो को उपस्थित किया जाए।"

"महाराज ! अपराध क्षमा हो ! मै यह तलवार लाया था महाराज कुमार-पाल को भेंट देने।" उस युवक ने हाथ वाँधकर निवेदन किया "महाराज की वीरता और रणकीर्ति की ख्याति सुनकर मैं यह तलवार भेंट करने के लिए लाया हूँ।"

"क्या है इस तलवार मे ? सोना-चाँदी भरा है क्या ?" कृष्णदेव ने उपेक्षा से पूछा : "क्या यहाँ किसी ने तलवार देखी ही नही कि तू दिखाने ले आया ? अभी नाहक मारा जाता न !"

"कृष्णदेवजी !" कुमारपाल ने कहा · "आपको यह तो याद होगा ही कि कोई भी वात बिन सोचे नही वोलनी चाहिए। शायद इस तलवार मे कोई विशेषता हो।"

"शायद नही महाराज !" अव उस युवक ने पास आकर कहा "निश्चित रूप से विशेषता है। यह तलवार लोहे के खम्भे को भी काट सकती है। यदि वात झूठ हुई तो महाराज की तलवार और मेरी गर्दन !"

"अरे मूर्ख, यहाँ लोहे के खम्भे काटना ही किसे है ! हमे तो सोने के खम्भो से मतलव है। महाराज पिछले पचास वरसो से लोहा ही तो घिसते रहे हैं। अव कुछ दिन सोने मे भी तो रच-पच लें ! महाराज को अव लोहा नही चाहिए।" कृष्णदेव का स्वर वहुत ही तीखा और कडवा हो गया था।

कुमारपाल को यह मूर्खता की पराकाष्ठा लगी। उन्होंने बात खुटाने के विचार से कहा "कृष्णदेवजी, इन दोनो को रात मे वहाँ आने के लिए कहिए।"

"कहाँ ?"

"राजमहल मे। हम इनकी बातें सुनेंगे।"

"भई तेजपालजी! महाराज इन दोनो की बातें सुनना चाहते है।" कृष्णदेव ने कहा। उसका एक-एक शब्द चोट करनेवाला था। "औरतो को बातें अच्छी लगती हैं, बूढो को भी बातें अच्छी लगती है। हमारे महाराज को भी बातें सुनने का शौक है। भले ही सुनें। ले आना भई, इनको रात होने पर महल मे।" कृष्णदेव ने एक मुद्रा तेजपाल की ओर फेंक दी और महावत से बोला "चलो, पचानन को हकारो। आज तो तुम कलक का टीका ही लगवा देते।"

पचानन चल पडा।

सहसा कुमारपाल ने कहा "कृष्णदेवजी, आप भी आ जाइएगा। मुझे आपसे भी दो-एक बाते कहनी हैं।"

"मुझसे कुछ कहना है ?" कृष्णदेव को हठात् विश्वास नही हुआ। वह एक क्षण कुमारपाल के मुँह की ओर देखता रहा और फिर बोला "दो बातें कहनी हैं या एक ?" उसके स्वर मे व्यग की धार थी।

"एक।" कुमारपाल के स्वर मे शान्ति और शालीनता की पुट थी।

"एक या आधी ?" कृष्णदेव सारी बात को हँसी मे उडा देना चाहता था।

"सुनिए कृष्णदेवजी!" कुमारपाल ने सयम को फिर भी हाथ से जाने नही दिया। कृष्णदेव मन-ही-मन हँसा और जोर से बोला "कही रो मत देना।"

कुमारपाल ने मानो सुना ही नही। बोले "कृष्णदेवजी, विवेक को शास्त्रो मे दसवी निधि कहा गया है।"

"हम बनिए नही कि उस निधि को सँभालकर रखने की जुगत करें। सँभालने को यह छत्र ही क्या कम है! पहले इसी की फिक्र कर लें ..."

"इसकी फिक्र तो आप कर ही रहे है बहनोईजी! लेकिन इस बात का भी तो खयाल रखना चाहिए कि हम कब कहाँ रहते हैं—राजसभा मे हैं, राज-सवारी मे हैं या एकान्त मे है। एकान्त में विनोद अच्छा लगता है। लेकिन सभा या सवारी में बेकार की बातें क्यो करनी चाहिए! लोग सुनते जो हैं।"

"सुनते हैं तो सुनें; हमें इससे क्या ?" कृष्णदेव उच्छृंखल होता जा रहा था "और कौन नही जानता ? सभी को तो मालूम है।"

"हाँ, मालूम है; लेकिन यह भी मालूम है कि वह समय अव नही रहा।"

'आखिर किसकी वदौलत ?"

"वेशक आपकी वदौलत। मैं कव इनकार करता हूँ। आपके प्रयत्नो से ही आज का दिन देखने को मिला। लेकिन वर्तमान भी तो देखना चाहिए।"

"सो तो देख ही रहा हूँ। क्या मैं समय को नही पहचानता ? तुम्हे कुछ भी नही मालूम। हालत वहुत वुरी है और कभी भी उपद्रव हो सकता है। स्थिति को सँभाले रखने में जितना परिश्रम मुझे करना पड रहा है, मैं ही जानता हूँ। मैं दो घडी हँस-वोल लूं तो वुराई क्या है ! लोग तुम्हारी मजाक उडाते है, पर तुम्हें दिखाई नही देता। हँसी न आए तो क्या हो ? जो उम्र-भर मुट्ठी चनों के लिए तलवार भाँजता रहा उससे वह मूर्ख तलवार की परीक्षा करवाना चाहता था। वलिहारी है उसकी समझ की ! तुम्ही वताओ, हँसी नही आएगी ?"

कुमारपाल समझ गए कि इस पर प्रभुता का नशा चढा हुआ है। इस समय समझाना-वुझाना वेकार ही होगा। जोर से वोले "वेशक हँसने की तो वात ही है। क्या समय था और क्या समय हो गया "

"आखिर किसकी वदौलत ?"

कुमारपाल चुप रहे।

"वुरा मान गए ? वहुत जल्दी वुरा मान जाते हो ! विलकुल अपनी वहिन के-जैसा स्वाभाव है तुम्हारा। मै तो थक गया तुमसे भी और तुम्हारी उस निर्वुद्धि वहिन से भी।"

"कृष्णदेवजी !" कुमारपाल एक वार फिर गम खा गए और विषय-परिवर्तन करते हुए वोले "उस वर्वरक का फिर पता ही नही चला। भाग गया या क्या हुआ ? यहाँ नो दिखाई नही दिया। जाकर भी कहाँ गया होगा ?"

"सोरठ के सिवा उसे ठौर ही कहाँ है ? वहाँ के राव से हमारी पुश्तैनी लडाई है। वही गया होगा।"

कुमारपाल कृष्णदेव के मुँह की ओर देखने लगे। इस उत्तर से पता चल गया कि उसे वर्वरक के वारे में कुछ भी नही मालूम। फिर वोले "इस चौलिग का

क्या करे ? न सेवा में रख सकते हैं और न वन्दी वना सकते हैं और न लौटकर जाने दे सकते है । और उसके विना हमारा रणकेसरी गजराज किसी काम का नही। अब करें तो क्या करें ?"

"क्यो दुनिया-भर की मुसीवतें अपने सिर ओढ रहे हो ? चुपचाप देखते चलो। मैं तो हूँ ही ओखली में सिर देने के लिए। सब यो चुटकियाँ वजाते ठीक-ठाक कर दूंगा। तुमने वीच में टाँग अडा दी तो वेकार वात का वतगड वन जाएगा। चौलिग है, ववंरक है, केशव सेनापति है, त्यागभट्ट है, अर्णोराज है, सोरठ का राव है, विक्रमसिंह है—तुम किस-किससे निपटोगे ? और फिर तुम्हें कोई समझता ही क्या है ? सच पूछा जाए तो राज-काज तुम्हारे वस का रोग नही। राज-रीत की गहराई को तुम समझ नही सकते। आनन-फानन वुद्धू बना दिये जाओगे। इसलिए उचित यही है कि मुझ पर निर्भर करो और शान्ति रखो, मैं सब ठीक कर दूंगा।"

"अच्छा ?" कुमारपाल के प्रत्युत्तर मे व्यग और उपहास दोनो ही थे लेकिन कृष्णदेव को ध्यान देने की फुर्सत कहाँ थी। इस समय वह उसको पूरं तरह पद-दलित करने के जोश मे था। चोट के साथ इस तरह धकिया देना चाहता था कि फिर कभी उठ ही न सके।

"हाँ, कुमारपालजी! टाँग अडाने की कोशिश नही करोगे तो राजा वने रहोगे। लेकिन राजाधिराज रहूँगा मैं। कलहपचानन को अपनी सवारी के लिए रख सकोगे। लेकिन इतना समझ लो कि यदि गडवड की तो हाथ मे केवल गजघटा रह जाएगी। राजकाज के मामले ठहरे। भेष वदलकर भागते फिरना नही है।"

कुमारपाल के सिर से पाँव तक आग लग गई। हाथ कुलमुलाने लगे। लेकिन जब्त कर लिया और वोले "कृष्णदेवजी, आपके होते मैं राजकाज की ओर से विलकुल निश्चिन्त हूँ। और सारे काम आपको ही करने हैं।"

कृष्णदेव ने सोचा, मार लिया मैदान, आ गई कुमारपाल की बुद्धि ठिकाने। वह मूर्ख अपने साले के शब्दो की काट को देख ही न सका। सच ही कहा है, प्रभुता पाइ काहि मद मद नाही! वोला "चपत पडी तो अकल आई! खैर, आई तो सही। तुम्हारा अपना हूँ इसलिए कडी और कडवी दोनो तरह की वातें

कहता हूँ। दूसरे किसी को क्या पड़ी है ? जो दर्द मुझे होगा वह किसी गैर को क्यो होने लगा ? और कोई होता तो यह सोचकर चुप रह जाता कि भिखारी था, फिर भीख माँग लेगा। वह सिखावन के बोल क्यो कहे ! अच्छा, तुमने यहाँ उन सब लोगो की भीड लगाना तो नही शुरू कर दिया है ?"

"किन लोगो की ?"

"जिन्होने तुम्हारी मदद की है !"

"उनमे सिरमौर तो आप ही हैं बहनोईजी। और सबसे अधिक कदर भी मैं आपकी ही करता हूँ। करना मेरा फर्ज भी है। दूसरो का क्या !"

"मेरी कदर ठीक ही कर रहे हो। इसी लिए तो राजा बने बैठे हो। बने रहो राजा। जब तक देख-भाल करने के लिए मैं राजाधिराज बैठा हूँ कोई तुम्हारा बाल बांका नही कर सकता।"

कुमारपाल कृष्णदेव के चेहरे की ओर देखते रहे, बोले कुछ नही। आत्मश्लाघा मे तल्लीन कृष्णदेव अपनी बात का समर्थन चाहता था, इसलिए पूछ बैठा. "आपने कोई जवाब नही दिया साले साहब ?"

"जवाब क्या देता बहनोईजी ? आपकी समझ का लोहा मानता हूँ और सोचता हूँ कि यदि आप न होते तो इतनी सारी समस्याओ से कैसे पार पाया जा सकता था !"

"चलो, इतनी समझ तो आई, मगर देर से। भाई और बहिन दोनो की अकल ज़रा मोटी है।" कृष्णदेव ने इतने ज़ोर से यह बात कही कि आस-पास के लोगों ने भी सुन ली और हँसने लगे।

कुमारपाल ने अपने-आप पर गजब का सयम रखा था। वे सोचने लगे कि इस मूर्ख मे थोडी-बहुत भी अकल है या सब-की-सब बेच खाई है ? लेकिन अक्ल उसमे नाम को भी नही थी। वह बेवकूफ तो दिल और दिमाग दोनो ही गँवा बैठा था। कुमारपाल को बहुत दु ख हुआ और उन्हें विवश होकर अपने पहले दिन के निश्चय को दुहराना पडा 'मूर्ख आप तो मरता है, दूसरो की मौत का कारण भी बन जाता है। इसलिए मूर्ख को कभी पास रखना नही चाहिए।'

२३ : राजाधिराज का अन्त

उदयन इसी दिन की चुपचाप प्रतीक्षा कर रहा था। कृष्णदेव प्रतिदिन बलवान, बल्कि कहना चाहिए कि उद्धत होता जा रहा था। राजमहल में भी वही बिना छत्र का राजा था।

उस दिन उदयन सदा की भांति शाम को महल में गया तो उसने कुमारपाल को एक बड़े प्रकोष्ठ में व्यग्र भाव से चक्कर काटते देखा। चेहरा बता रहा था कि राजा के मन में किसी प्रश्न को लेकर गहरा मन्थन चल रहा है। उदयन समझ गया कि मामला क्या है। लेकिन बिना संघर्ष के समस्या को सुलझाने का कोई उपाय न मंत्री को दिखाई देता था, न किसी और को। संघर्ष को टालने के विचार से सभी चुप बैठे थे, इसलिए कृष्णदेव के हौसले बहुत बढ़ गए थे।

"मेहताजी !" उदयन को देखते ही कुमारपाल ने कहा। मंत्रीश्वर हाथ बांधकर खड़ा हो गया। तभी एक अनुचर दीपों में तेल पूरने के लिए आता दिखाई दिया। कुमारपाल उसके लौट जाने की प्रतीक्षा करते रहे। जब वह चला गया तो उन्होंने नाक पर अँगुली रखकर उदयन से कहा "मेहताजी, जो कहना हो धीरे कहिए। यहां हम पर निगाह रखनेवाले बहुत हैं। यह जो आदमी अभी आया था, क्या आप समझते हैं कि दीपों में तेल पूरने के लिए आया था? नहीं, वह तो केवल बहाना था। अभी तुरत कृष्णदेव के पास खबर पहुँच गई होगी कि आप कहां और कैसे खड़े थे। आप मैदान की ओर से ही आ रहे हैं न?"

"जी हां ! क्यों?"

"वहां कितने शस्त्रधारियों का पड़ाव आपने देखा?"

"यही छह सौ-सात सौ के लगभग। लेकिन वे तो वहां सदा से पड़ाव किये रहते हैं।"

"पड़ाव किये रहनेवाले दूसरे हैं और ये दूसरे। इन्हें बहनोईजी ने गोध्रक-पन्थ से बुलाया है। उनकी नीयत बदल गई है। अभी जितनी सत्ता उनके हाथ में है

उतने से वे सन्तुष्ट नही। उनका विचार कल सवेरे राजमहल से एक सवारी निकालने का है।"

"सवारी तो रोज निकलती है प्रभो!"

"यह सवारी रोज की सवारी से अलग होगी। कल सवेरे जो सवारी निकलेगी उसके वाद यहाँ राजमहल मे हमारा कुछ भी नहीं रह जाएगा। वह सवारी घूमती हुई सरस्वती के किनारे तक जाएगी, कहा तो यहाँ तक जाता है कि वह सरस्वती के पार भी जाएगी। मतलव यह कि उसे शुद्ध सवारी वना दिया जाएगा। फिर वह लौटकर राजमहल आ न सकेगी। वहनोईजी का कुछ ऐसा ही विचार मालूम पड़ता है।"

उदयन के काटो तो खून नही। उसने सपने में भी नही सोचा था कि मामला यहाँ तक पहुँच जाएगा। कृष्णदेव दिन दूना और रात चौगुना विफरता जा रहा था। सघर्ष टालने के लिए उनका शान्ति की नीति को अपनाना व्यर्थ ही हुआ। वडी गलती कर वैठे जो उसे वर्वरक के हाथो सौंप नही दिया। वह गायव कर देता और सारी परेशानी से छुट्टी मिल जाती। लेकिन वर्वरक का तो पता ही नही चला। न मालूम कहाँ चला गया।

उसने धीरे से पूछा· "आपको किसने वताया?"

कुमारपाल ने धीरे से ताली वजाई। एक खम्भे की ओट से राजपूत वेशधारी एक व्यक्ति वाहर निकलकर खडा हो गया। वह सादे कपडे पहने हुए था।

'इन्हें आप पहचानते हैं?" कुमारपाल ने पूछा।

"कौन हैं और कहाँ के रहनेवाले हैं?"

"मैंने इन्हें वुलाया था अपना अंगरक्षक नियुक्त करने के लिए। भीमसिंह नाम है। वहुत पहले झरवेरी की झाडी में छिपाकर इन्होने राजकर्मचारियो से मेरी रक्षा की थी।"

"प्रभो!" भीमसिंह ने हाथ जोडकर कहा· "पहले भी निवेदन कर चुका हूँ कि महाराज उस घटना का उल्लेख कभी न करें। मैं इसी शर्त पर यहाँ रहने को तैयार हुआ हूँ "

"पूरी वात तो कह लेने दो। सीधी जानकारी भीमसिंह को भी न हो सकी। गोध्रक-पन्थवालो में इसका एक दोस्त है; उससे पता चला। यदि वह न वताता

तो हमें कुछ भी मालूम न होता और अँधेरे में ही पडे रहते। कृष्णदेव आते ही होंगे आज निपटारा हो ही जाए "

"निपटारा आप करेंगे प्रभो! नही, नही। वह हमारे लिए "

"मेहताजी, आप सुनिए तो। अव आप. "

"जी नही। मेरा मतलव यह है कि . यह काम बर्वरक के द्वारा . क्या ऐसा करना ठीक न होगा ?"

तभी उदयन को अपने पीछेवाले खम्भे की ओट से कुछ आवाज सी सुनाई दी। मुडकर देखा तो एक लाठी का सिरा कुछ निकला हुआ था। मत्री को वह लाठी परिचित लगी। सोचने लगा कि क्या बर्वरक यहाँ आ पहुँचा। राजसभा के वाद तो वह दिखाई नही दिया था, न उसके वारे में कुछ जानने को मिला था। मालूम पडता है कि महाराज कुमारपाल ने उसे अपने अनुकूल कर लिया है। या वही तो कही जयसिहदेव के विरोधियो को मारने का अवसर पाने के लिए चला नही आया है ? कारण जो भी हो वर्वरक इस समय यही था।

"वर्वरक यही है।" कुमारपाल ने कहा : "मैंने कृष्णदेवजी को वुलवाया है। आते ही होंगे। चौलिग को हमें अपने साथ लेना होगा।"

"नही प्रभो! उसे नही।"

"क्यो नही ? उनके विना ये जो सात-आठ सौ मैदान में पडाव डाले हुए हैं उन्हें भगाएगा कौन ? सवेरे कलहपचानन जब सवारी के लिए आए तो चौलिग उन पर हाथी हूल दे। तुरत भगदड पड जाएगी और वे सव जान बचाने के लिए आप ही फाटक के पासवाले तलघर में घुस जाएँगे। फिर तो ऊपर केवल एक खम्भाती ताला लगाना रह जाएगा। ताले की व्यवस्था आपके जिम्मे रही। जहाँ तलघर में पहुँचे कि सव की अकल ठिकाने आ जाएगी। और राज-सवारी तो रोज की तरह निकलेगी ही।"

'सुनो, नगरजनो! सुनो!' वाहर से डोडिए की आवाज सुनाई दी और दोनो चौंक पडे, क्योंकि डोडिया कह रहा था : 'कल सवेरे महाराज की सवारी सरस्वती के पार भी जाएगी। जिसे मिलना हो, अपनी वात कहनी हो, समय पर पहुँच जाए। सुनो, नगरजनो! सुनो!'

कुमारपाल को विश्वास हो गया कि भीमसिह जो खवर लाया था वह सच

है। गोधक-पथियो के जमघट का कारण भी अब साफ हो गया।

उदयन ने तुरत फैसला किया कि अब चाहे कृष्णदेव से लडना ही क्यो न पडे, इस वखेडे को साफ कर ही डालना चाहिए। आज भी ठीक वही सकट सामने था जो राज्यारोहण के समय उपस्थित हो गया था। अभी तो फौरन महामात्य से मिलना चाहिए, और वडे सवेरे यहाँ पहुँच ही जाना होगा। उसने यह भी अनुभव किया कि कि शासन-तत्र काफी शिथिल हो गया है, अगर ऐसी ही अन्धाधुन्धी चलती रही तो पाटन तवाह हो जाएगा। खैर, अभी तो चलकर महामात्य से मिला जाए।

और उसने हाथ जोडकर कहा "महाराज! मै यहाँ दिन निकलने के पहले ही आ जाऊँगा।"

कुमारपाल ने हँसकर कहा "मेहताजी, आप सम्भवत सुनियोजित सामने की वात सोच रहे हैं। ऐसे अवसरो पर पूर्व-नियोजित प्रतिरोध अथवा प्रत्याक्रमण से काम वनता नही है। अभी तो आप भी किसी खम्भे के पीछे खडे हो जाइए। कृष्णदेवजी आते ही होगे। जरा उनसे वात कर ली जाए "

"लेकिन क्या कृष्णदेव मान जाएंगे ? कही वात विगड गई ?"

"विगडकर भी क्या विगडेगी ? और समझाने के दूसरे रास्ते भी वहुत से हैं। अव यह सव ज्यादा दिन चलाया नहीं जा सकता।"

तभी वाहर से किसी के आने की आवाज़ सुनाई दी। कुमारपाल ने उदयन की ओर देखा। इस समय उसका वाहर जाना सन्देहास्पद हो जाता। वह फुर्ती से एक खम्भे के पीछे जा खडा हुआ। वहाँ से उसने देखा तो दूसरे खम्भे की ओट से वर्वरक उसे आँखे निकाले देख रहा था। उसकी वह क्रूर दृष्टि मानो पुकार-पुकारकर कह रही थी कि जयदेव महाराज के समस्त विरोधियो का नाश करके ही दम लूंगा। लेकिन तभी उदयन का ध्यान वट गया। कोई चला आ रहा था। उसने चोरी से देखा तो चौलिग था।

चौलिग हाथ जोडे कुमारपाल के सामने खडा हो गया। उन्होने पूछा "क्या कृष्णदेवजी ने भेजा है ?"

"जी प्रभो!"

"जानता है, क्यो भेजा है ?"

"जी नही।"

"हम तुझे कालकोठरी मे मूँद रखना चाहते है।" कुमारपाल का यह कथन इतना आकस्मिक था कि चौलिग हक्का-बक्का रह गया। कृष्णदेव ने तो ऐसी कोई बात उससे कही नही थी।

"प्रभो! स्वामी!"

"कलहपचानन तुझसे परचा हुआ है। तू उसे जानता है। और जिस चन्द्रावती नगरी से तू आ रहा है वहाँ सभी पाटन के शत्रु है, हितु कोई भी नही। इसलिए तेरी जगह सिर्फ कालकोठरी मे हो सकती है। बोल, वहाँ जाने को तैयार है?"

कुमारपाल ने धीरे से एक सकेत किया। एक खम्भे की ओट से वर्वरक बाहर निकल आया। उसकी क्रूर, हिंस्र दृष्टि देखकर चौलिग काँप उठा।

"और यह होगा तेरा रखवाला.." कुमारपाल ने वर्वरक को दिखलाते हुए कहा: "ठीक है न?"

इतना कहकर कुमारपाल ने वर्वरक की ओर देखा। वर्वरक उस दिन सकल्प करके खडा था कि कुमारपाल को गायब कर देगा। लेकिन सफल न हो सका। भागने का विचार कर ही रहा था कि महाराज कुमारपाल ने उसे कालकोठरी मे बन्द करवा दिया। धीरे-धीरे वे उसे अपने अनुकूल करने लगे। वे उसका उपयोग उन्ही लोगो के खिलाफ करते थे जो महाराज जयदेव सिद्धराज के विरोधी थे। और वर्वरक तो यह चाहता ही था। अभी उसने कुमारपाल की बात सुनी और चुपचाप अपने हाथ की लाठी पर सिर झुका दिया। किसी भी बात के लिए स्वीकृति देने का उसका यही ढग था।

"क्यो रे, तुझे भी अपने इष्टदेव तुलसीश्याम* के धाम मे बैठना है न? या नही बैठना चाहता?"

वर्वरक चुपचाप महाराज के सामने देखता रहा। उदयन को लगा कि महाराज कुमारपाल ने वर्वरक को बहुत-कुछ अपने अनुकूल कर लिया है। लेकिन

* श्री भगवानलालजी इन्द्र के कथनानुसार तुलसीश्याम वर्वरको के इष्ट-देवता थे।

अभी थोड़ी देर पहले वह उसकी क्रूर, हिंस्र दृष्टि भी देख चुका था इसलिए उसका मन कहता था कि यह जयदेव महाराज के सिवा किसी और का भक्त कभी हो ही नहीं सकता। उसके विचार मे महाराज कुमारपाल आग से खेल रहे थे। वह चिन्तित हो उठा, परन्तु दूसरे ही क्षण शान्त होकर प्रतीक्षा करने लगा।

इधर चौलिग की जान सूखी जा रही थी। पछताने लगा कि कहाँ आ फँसा! अव तो जान वचाने का सिर्फ एक ही रास्ता था और वह था कलहपचानन। उसके अंकुश के विना वह रणकुशल हाथी वेकार था। और महाराज अपने प्रिय हाथी को किसी भी शर्त पर वेकार होने नही दे सकते थे। उसने निश्चय किया, जैसे भी हो महाराज का विश्वास प्राप्त करना ही होगा। हाथ जोडकर बोला: "महाराज, काम तो मै भी आ सकता हूँ। कलहपचानन की कीमत गुजरात के वरावर है प्रभो।"

"और वह तेरे कहने में है।"

"और यह सेवक महाराज का आज्ञानुवर्ती है।"

"विलकुल गलत।"

"परीक्षा कर ली जाए प्रभो! यदि तिल वरावर भी फर्क पड जाए तो यह सिर हाजिर है।"

"मच कहते हो?"

"हाँ प्रभो! विलकुल सच। इसकी कैद से तो गर्दन नपवाना ही अच्छा।" चौलिग ने वर्वरक की ओर देखते हुए कहा।

"ठीक है, समय आने पर यह परीक्षा भी हो जाएगी। अभी तो जाकर वाहर खडा हो, और कृष्णदेवजी आएँ तो अन्दर भेज"

चौलिग फौरन वाहर निकल गया। वर्वरक पुन खम्भे की ओट हो गया। वाहर कुछ खटर-पटर सुनाई दी। शायद कृष्णदेव आ रहा है। सभी उत्सुक होकर देखने लगे। लेकिन जिसने प्रवेश किया वह सवेरेवाला युवक था। उसके हाथ में वह तलवार अव भी थी। अन्दर आकर उसने हाथ जोड अभिवादन किया और एक ओर विनयपूर्वक खडा हो गया।

"कहाँ से आये हो? कृष्णदेवजी ने ही भेजा है न? उनसे मिल लिये थे?"

"हाँ स्वामिन्!"

"किस प्रयोजन से आये हो और इस तलवार को क्यो लिये रहते हो ?"

"यह तलवार नही, स्वामिन्, वज्र है।" युवक ने अभिमान से कहा "लोहे को मूली की तरह काट देती है। रणक्षेत्र मे महाराज के हाथ मे रही तो कोई सामने टिक न सकेगा।"

"लाओ, देखा जाए।"

युवक ने दो डग आगे आकर विनयपूर्वक तलवार महाराज के हाथ मे दे दी। कुमारपाल ने जैसे ही तलवार को म्यान से बाहर निकाला वह दीपो के उजाले मे बिजली की तरह कौंध गई। उत्तम धातु-मिश्रणो की बनी वह तलवार वास्तव मे अद्‌भुत थी। कृष्णदेव के आने से पहले कुमारपाल उसकी परीक्षा कर लेना चाहते थे। मूठ पकडकर बोले "यह सामने लोहे का नया खम्भा है।" उन्होने युवक की ओर देखा "तुम्हारा दावा है न कि यह लोहे के खम्भे को काट सकती है ?"

"वज्र का भी हो तो गाजर-मूली की तरह कट जाएगा प्रभो। महाराज वार करें। धार जरा-सी भी खडित हो जाए तो मेरा सिर हाजिर है। अगर एक ही वार मे खम्भे के दो टूक हो गए तो इसका मूल्य एक कोटि द्रम्म मुझे मिलना चाहिए।"

"एक कोटि द्रम्म !"

"काशिराज दो कोटि दे रहे थे, लेकिन मैने नही दिया। मै गुजरात का हूँ और अपनी निर्मित वस्तु विदेशियो के हाथो मे जाने नही दे सकता। यही चाहता हूँ कि गुजरात की तलवार गुर्जरेश्वर के हाथो में रहे।"

"अच्छी बात है, तो मैं वार करता हूँ !" कुमारपाल खम्भे के सामने आ खडे हुए। उन्होने वार करने के लिए तलवार उठाई ही थी कि दरवाज़े की राह किसी का हँसी उडाता स्वर सुनाई दिया "ज़रा सँभलकर मेरे भैया ! कही तलवार न टूट जाए। बडे भागो यह तलवार मिली है। बडी नाजुक है और उतनी ही नाजुक तुम्हारी कलाई भी।"

कुमारपाल ने फुर्ती से मुडकर देखा।

कृष्णदेव दरवाज़े मे आ खडा हुआ था। उसके साथ कुछ सामन्त भी थे। सब-के-सब कृष्णदेव की बात सुनकर खिलखिला उठे। कुमारपाल को गुस्सा आ गया।

बोला . "वहनोईजी, आप तो इस भवानी की भी मज़ाक उडाने लगे। यह हमारी माँ है। इसकी उपासना की जाती है। इसकी हँसी उडाना ठीक नही।"

"उपासना ही तो कर रहे हैं साले साहव !" कृष्णदेव ने उसी लहज़े मे वडे तपाक से कहा · "वर्ना हाथ मे तलवार लेकर तुम यो वार करते हिचकिचाते ! डरते हो न कि वडी मुश्किल से मिली तलवार कही टूट न जाए। ही-ही-ही "

कुमारपाल की आँखें लाल हो गईं। कठोर आवाज़ मे बोले "कृष्णदेवजी, वहुत हुआ, अव वन्द कीजिए यह हँसी-मज़ाक। कई वार आपको चेतावनी दे चुका हूँ और आज फिर सावधान करता हूँ। वन्द कीजिए यह सव।"

"तू चने माँगकर खानेवाला मुझसे कहता है ! अदव से वात करना सीख और लाल-पीला होना वन्द कर !" कृष्णदेव झपटकर सामने आ गया था।

"अपनी सीमा में रहिए वहनोईजी, नहीं तो ."

"नही तो क्या ? हमारा कवूतर हमीं से गुटरूँ गूँ ! वहुत देखे हैं तेरे-जैसे।" फिर अपने साथवाले सामन्तो की ओर देखकर कृष्णदेव ने कहा "राज पच नही रहा है। भूखे ने वहुत खा लिया और अव अजीर्ण का मारा ओक-ओक करने लगा है।"

"यहाँ तो हजम भी हो गया और डकार नही आई। ले, तू भी " और कुमारपाल ने तलवार का ऐसा तुला हुआ हाथ मारा कि कृष्णदेव कटे पेड की तरह नीचे जा गिरा। खून की धाराएँ वह चली। वहाँ मे कुमारपाल हाथ में नगी तलवार लिये दरवाजे की ओर लपके। कृष्णदेव के साथ आये सामन्त सिर पर पाँव रखकर भाग खडे हुए। कुमारपाल उनके पीछे लगे वाहर तक चले आये। उदयन, वर्वरक, चौलिग और भीमसिंह भी उनके साथ वाहर निकल आये। देखते-देखते सारी स्थिति वदल गई।

कृष्णदेव ने आज हद कर दी थी। वह महाराज के हाथी कलहपचानन पर सवार होकर आया था। कुमारपाल ने जैसे ही अपने हाथी को देखा क्रोधोन्मत्त हो उठे। वे तलवार हाथ में लिये हाथी की ओर दौड़े। चौलिग पीछे लगा चला आ रहा था। उदयन साथ था। उसने कहा "महाराज, वस कीजिए "

"नही मेहता, आज सारा किस्सा पूरा ही कर डालने दीजिए। चौलिग, हूल दो कलहपचानन को।"

"महाराज !" चौलिग ने हाथ जोडकर कहा "कृष्णदेवजी ने इसे पिला रखी है।"

"क्या ?"

"शराव ! आप भी पिये थे और इसे भी थोडी पिला दी है।"

"वाह-वाह ! यह काम उसने जरूर अच्छा किया। तुम पेल दो पचानन को मैदान में पडे उन सामन्तो-सरदारो पर। जल्दी करो !"

"महाराज एक वार सोच लीजिए। यह फूस के ढेर में आग लगाना है।"

"कोई चिन्ता नही मेहताजी ! सुलगने दो इस आग को। यदि हमने नही जलाया तो हमी को जला दिया जाएगा। चौलिग, पेल पचानन को। हूल दे उन लोगो पर। और थमा दे उसकी सूंड में गदा।"

दूसरे ही क्षण राजमहल के चौगान में हाहाकार मच गया। गोभ्रक-पन्थी सारे सरदार सवेरे की योजना वनाने में मशगूल थे। यहाँ-वहाँ टोलियाँ वनाए वातें करते हुए कृष्णदेव की प्रतीक्षा कर रहे थे। इतने में रक्त-रंजित कृपाण लिये उन्होंने कुमारपाल को आते देखा। उनके रौद्र रूप को देखकर सबके प्राण सूख गए। "चौलिग, पेल दे हाथी इनके ऊपर !" महाराज ने गरजकर कहा : "वर्वरक, देखना कोई भागकर निकलने न पाए।"

जिसको जिधर रास्ता मिला जान बचाने के लिए भागने लगा। व्यक्तिगत सुरक्षा के विचार ने सामूहिक प्रतिरोध का खयाल ही किसी के मन में आने नही दिया। दरवाजे में साक्षात् यम के अवतार-जैसा कलहपचानन सूंड़ मे गदा लिये खडा था। उधर से जिसने भागने की कोशिश की वह उसकी चपेट मे आ गया। इसलिए कोई उपाय न देख सव-के-सव सीधे तलघर में घुस गए। जान वचाने का सिर्फ यही एक रास्ता उनके सामने रह गया था।

"वर्वरक ! अव तलघर के दरवाज़े पर मजवूत खम्भाती ताला लगा दे। करें वे सव वहाँ आराम से वैठे रात-भर चर्चा।" फिर कुमारपाल ने उदयन से कहा "मेहताजी, आप आदर-मान से कृष्णदेवजी को सुखासन मे उनके घर पहुँचा दीजिए। जीवित हो तो वैद्य को वुलाकर चिकित्सा करवाइए, मर गए हो तो चन्दन की चिता का प्रवन्ध कीजिए। और वह तलवारवाला युवक कहाँ है ? उसे एक कोटि द्रम्म और शिरोपाव दीजिए। तलवार उसकी निस्सन्देह मागलिक है।"

कुमारपाल ने एक सपाटे में सबको साफ़ कर डाला। फिर उन्होंने राजमहल का पूरा प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। इतने में वोसरि और काकभट्ट भी वहाँ आ पहुँचे। थोड़ी देर में कुमारपाल के विश्वस्त अनुचरो का वहाँ जमघट लग गया। सब मिलकर राजमहल की नई व्यवस्था करने लगे। हर द्वार पर नये चौकी-पहरे का प्रबन्ध किया गया। और कल सवेरे की सवारी के लिए नये सिरे से आदेश प्रदान किये जाने लगे।

उधर उदयन कृष्णदेव को सुखासन में डालकर इस तरह ले चला मानो कुछ हुआ ही न हो।

२४ : शाकंभरी का अर्णोराज

भाग्य का देवता मनुष्य को ही नही कई बार घटनाओ को भी नचाता है। लेकिन कई बार मनुष्य भी भाग्य पर भारी पड जाता है और उसे तिनगी का नाच नचाकर छोडता है। जैसे ही लोगो को यह पता लगा कि पाटन के राजमहल मे कृष्णदेव मारा गया कुमारपाल के अधिकाश विरोधियो के छक्के छूट गए। सत्ता का फैसला सदा के लिए हो गया। इधर पाटन के राजमहल मे शोणित की धाराओ ने भाग्य और भविष्य का फैसला किया, उधर शाकभरी के राजमहल मे घटनाओ ने कुछ नया ही मोड़ ले लिया। कुमारपाल के भविष्य के साथ उन घटनाओं का गहरा सम्बन्ध था। जब पाटन के राजमहल मे खून बह रहा था, अर्णोराज के राजमहल में छोटे-बडे अनगिनत दीपो की दीवाली हो रही थी। उस समय वहाँ के क्रीडा-भवन मे चौपड-पासे का खेल होने जा रहा था।

संगमरमर के उस धवल-उज्ज्वल महल में दीपमालिकाएँ ऐसी लग रही थी मानो आसमान से तारे उतर आए हो। गादियाँ बिछ गई; लोटन रख दिये गए। सुगन्धित तेल के दीये जला दिये गए। चौपड की बिसात बिछा दी गई। स्तम्भ-तीर्थ के हीरे-जैसे पारदर्शी पासे रख दिये गए। अब केवल शाकभरी के महाराज

अर्णोराज और उनकी रानी देवलदेवी के आने की प्रतीक्षा थी। अन्त पुर के दास-दासी उन्ही की प्रतीक्षा करते हुए इधर-उधर घूम रहे थे।

थोडी देर बाद एक ऊँचा-पूरा हाथी राजमहल के चौक में आकर खडा हुआ। उसकी पीठ पर कसे हौदे मे से प्रौढ़ अवस्था का एक शक्तिशाली, तेजस्वी और कठोर चेहरे-मोहरेवाला योद्धा नीचे उतरा। उसकी एक ही निगाह के आगे पूरी सेना सिमटकर रह जाती थी। यही था शाकभरी का स्वामी अर्णोराज। क्रीडा-भवन के द्वार पर उसका सुभट सामन्त गोविन्दराज खडा था। अर्णोराज ने छूटते ही पूछा "कहाँ है देवीजी ? आई भी या डर गई ?" उसके स्वर में रसिकता थी और विनोद का भाव भी।

गोविन्दराज ने तुरत हाथ जोडकर जवाव दिया "नही प्रभो ! डरेगी तो क्या ? वस आती ही होगी।"

तभी एक स्वर्ण मडपिका आती दिखाई दी। कहारो के डडो में बँधे चाँदी के घुँघरू वजते सुनाई दिये। जहाँ योद्धा हाथी से उतरा था ठीक उसी जगह मडपिका रख दी गई। पर्दा जरा-सा हटाकर एक गोरे नाजुक-से चेहरे ने झाँका और हाथी को वहाँ खड़े देख मधुर विनोद-भरे स्वर मे वोली मारी "गोविन्द-राजजी, महाराज कहाँ हैं ? आए भी है या डर गए ?"

"नही रानीजी, डरा तो नही। कभी से आकर तुम्हारा रास्ता देख रहा हूँ।"

"अव भी मौका है महाराज। डर लगता हो तो लौट जाइए। इस बार पासे स्तम्भतीर्थ के है।" रानी ने मडपिका मे से वाहर आते हुए कहा। बहुत सुन्दर और नन्ही-सी चिडिया-जैसी थी वह रानी। स्वर कोयल को भी मात करता था। उसकी उपस्थिति-मात्र से रस की वर्षा होने लगती थी। आवाज जितनी मधुर थी उतनी ही तीखी। आँखें वडी-वडी और छलकते रसकुडो-सी। नाक थोडी छोटी पर उठी हुई, जो उसके स्वभाव की उग्रता, तेजस्विता और स्वाभिमान की सूचक थी। नाक की नोक पर एक छोटा-सा तिल था जिसे देखकर लगता था जैसे सौन्दर्य पर स्वाभिमान हावी हो गया हो। अर्णोराज के सामने खडी वह ऐसी लग रही थी मानो स्वर्ग की कोई अप्सरा रास्ता भूलकर इधर निकल आई हो। उसके वस्त्रो से सुगन्ध की लपटें उठ रही थी। उसने गोविन्दराज की ओर देखते हुए पूछा "गोविन्द-राजजी, आपने जवाव नही दिया ?" रानी उसे अपना विश्वस्त आदमी समझती थी।

"ये वेचारे क्या वोलें ! जानते तो है कि गुजरातिने तमाम वडी घमण्डिन होती हैं। फिर करेला नीम चढा ! तुम्हारे भाई को राज जो मिल गया है। गोविन्दराज वेचारे को अपने हाथ-पाँव वचाकर रहना पड़ता है। जानते हैं न कि तुम्हारी फुफकार नागिन की फुफकार से भी तीखी और डरावनी होती है। गुजरात! गुजरात!! गुजरात!!! ओ-हो-हो, हर घडी गुजरात की रट लगी रहती है। लेकिन यह पता नही कि अर्वुद-शाकभरी की रखवाली के विना गुजरात रहेगा ही नही। कितना-सा है तुम्हारा गुजरात रानीजी ?"

"रहने भी दो महाराज!" रानी ने वडे अन्दाज से मटककर कहा "हमारा गुजरात जितना वडा है वह भी दिखलानेवाले आपको दिखला देंगे।"

"कौन दिखाएगा रानीजी ?"

"हाय राम! कैसा भोला सवाल कर रहे है! जैसे जानते ही नही। गुर्जरेश्वर कुमारपाल को सारी दुनिया जानती है, अकेले आप ही नही जानते।"

"न हुईं महारानीजी इस समय यहाँ, नही तो आपको माकूल जवाव देती। अव हम क्या कहे! वे होती तो कहती, छत्र जरूर कुमारपाल के सिर पर है, लेकिन राजा तो नड्डूल का कृष्णदेव ही है। यदि यही वात हम कहें तो तुम गुस्से से आग हो जाओगी। हमें उसका कोई दु ख नही। उलटे जव नाराज होती हो तो और भी सुन्दर और प्यारी लगती हो। उस समय की तुम्हारी रूप-माधुरी सव-की-सव मुझसे पी नही जाती, दु ख इसी वात का है। तव तुम्हारा वहुत-सा रूप-सौन्दर्य यो ही छलक जाता है।"

"चाटुकारी कोई तुमसे सीखे! मालवा के चाटुको का रग खूव चढने लगा है, क्यो ? अच्छा, खेलना है या नही, वोलो ?"

"खेलने के ही लिए तो तुम्हें यहाँ वुलाया है रानीजी। चौपड विछ गई है और पासे भी रख दिये गए हैं।"

"तो आइए, चलें।"

"चलो..."

अर्णोराज और देवलदेवी दोनो खेलने वैठे। रानी के मणि-मुक्ता हारो पर दीपो की किरणें प्रतिविम्वित हो रही थी। इस किरणमाला में उसका रूप और भी निखर उठा। राजा उसे एक क्षण मुग्ध-दृष्टि से देखता-रहा, फिर पासे हाथ

में लेकर बोला "बोलो रानी, तुम दाव पर क्या लगाती हो ?"

"मेरे पास बचा ही क्या है महाराज ? एक मैं थी सो अपने-आपको पहले ही सौंप चुकी हूँ। अब मेरे पास अपना रहा ही क्या है ?"

"है क्यो नही ? अभी तो बहुत-कुछ है।"

"आप ही बताइए क्या है ?

"इसे देखो, यह क्या है ?" राजा ने उसके चेहरे की ओर प्रेमपूर्वक देखते हुए कहा। देवल ने मुस्कराकर आँखें झुका ली और बोली "शाकभरीवाले सब बडे ढीट होते है। लाज-शरम तो जैसे जानते ही नही।"

"लाज-शरम का भार तुम्हारी गुजरात को सौपकर हम निश्चिन्त हो गए। शरमाना औरतो का काम है, हम मरदो का नही।"

"अच्छा महाराज, अब पासे फेंको।"

अर्णोराज ने दाव चला, तीन दाने आए। गोटी कोई विठाई नही जा सकी। देवल की ओर देखकर बोला "अब तुम्हारी वारी है, तुम चलो।"

"यहाँ तो मनचीता दाव खेलते हैं। यह देखिए तीस, एक गोटी बैठी। ये ग्यारह, दूसरी गोटी बैठी। ये पच्चीस, तीसरी गोटी बैठी और ये दूसरी बार ग्यारह। अपनी चारो गोटियाँ बैठ गईं।" फिर वह रुपहली हँसी हँसकर बोली "इसे कहते हैं महाराज, मनचीता दाव।"

"एक साथ इतने मनचीते दाव ? रानीजी, तुमने जरूर कोई चाल चली है।"

"चाल थी तो आपने पकडा क्यो नही ? आपके सामने ही तो बैठी चल रही हूँ। बातें मत बनाओ राजाजी, पासा फेंको।"

राजा और रानी के बीच चौपड का रग जमता गया। रात बीतती गई। कभी हँसी, कभी प्रेम-केलि, कभी व्यग्य कभी व्याजोक्ति—समय भागा जा रहा था। पर दोनो मे से किसी को पता नही था कि इन पासो के मिस विधि कोई दूसरा ही खेल रच रही थी।

खेल मे गरमी आ गई। रानी की जीत निश्चित थी। राजा धाँधली पर उतर आया। उसने अपनी एक गोटी को पागल कर दिया।

"राजाजी, यह आपकी धाँधली है। मैं जीत रही थी इसलिए आपने अपनी गोटी पागल कर दी, क्यो ?"

"पागल क्यो न करें ? हम ठहरे जान हथेली पर लेकर चलनेवाले। युद्ध हो या जूआ, हर जगह जान की वाजी लगाते आए हैं। अब सँभलकर रहना, कही यह पगली तुम्हारी सब साबूत का सफाया न कर दे।"

"ओहो, एक पगली पर महाराज को इतना नाज़! तो लीजिए हमने भी पगली के मुकावले एक पगली छोड दी।" रानी ने पासा फेंका; मनचीता दाव पडा। उसने भी एक गोटी पागल कर दी।

सहसा अर्णोराज वोल उठा · "रानीजी, कमाल है! हर बार मनचीते दाव पडते हैं। किसी जैन जती को तो नही गाँठ रखा है? तुम्हारे गुजरात में इन दिनो जैन जतियों का जोर भी है।"

देवलदेवी कुछ न वोली। उसने दुबारा पासे फेंके। फिर मनचीता दाव पड़ा।

"गुजरात मे जोर है जैन-जतियो का, और रानीजी, तुमने जरूर किसी को साध रखा है। नही तो इस तरह मनचीते दाव कहाँ से पडते? लेकिन अब सँभलकर रहना। इस वार तुम्हारी गोटी जरूर मारी जाएगी।"

राजा ने पासा फेंका। सयोग की वात, मनचीता दाव पडा। रानी की गोटी सफा मरती थी। राजा ने अदवदाकर रानी की गोटी मारते हुए कहा : "यह मारा मुडको के मुलक को! शावाश शाकभरी, खूव मारा गुजरात को! अब चलो रानीजी!"

"हम नही खेलते महाराज! आप हमारे गुजरात को वुरा-भला कहते है। यह हमसे सहा नही जाता। क्यो भूलते हैं कि आपको महाराज सिद्धराजदेव का शरणागत होना पडा था। गुजरात अब भी वही है। दूसरो के लिए हलकी वात कहने से पहले यह याद कीजिए कि आपको मालवा के रणक्षेत्र से भागना पडा था। भूल गए क्या?"

"नही रानी, भूला नही हूँ।" अर्णोराज ने कठोर स्वर मे कहा "सव-कुछ यहाँ दिल में सचित किये वैठा हूँ।" उसने छाती पर हाथ रखकर आगे कहा : "कुछ भी नही भूला हूं। एक-एक वात याद है। आज जिस तरह तुम्हारी इस गोटी को पीटा ठीक उसी तरह गुजरात को पीटूंगा तभी मुझे चैन मिलेगा।"

"महाराज, सोच-समझकर वोलिएगा। गुजरात दाल-भात का कौर नही है कि उठाकर खा लिया। अब वहाँ महाराज कुमारपाल का राज है।"

अर्णोराज के सिर से पाँव तक आग लग गई। उसे मालवा का रणक्षेत्र याद आ गया। जान बचाने के लिए रणभद्री साँढनी पर चढकर भागना पड़ा था। यह भी याद आया कि पट्टनियो ने सोमेश्वर का अधिकार मानने से इनकार कर दिया था। और इस सबका कारण था उदयन। आज उसी उदयन की सहायता से कुमारपाल पाटन का राजा बना था। उससे जब्त न हो सका, बोला "रानी, कुमारपालजी तुम्हारे भाई है इसी लिए मै कुछ कहता नही, लेकिन वे साथी किसके हैं? जैन-जतियो के। बनियो के गुजरात मे जोर जतियो का ही है। तुम्हारे भाई को राज्य दिलानेवाला उदयन मत्री जैन जतियो का ही चेला है। भाई तुम्हारे राजा जरूर हुए है लेकिन उदयन मेहता की गुलामी करके। मुल्क मेहता का, सत्ता कृष्णदेव की और राजा छूँछे हाथ—यह हालत है तुम्हारे गुजरात की। ऐसा राजा भी कोई राजा है? कृष्णदेव ने जिस कल बिठाया बैठ गए, जिस कल उठाया उठ गए, जो राग गाया उसपर नाचने लगे। जिस गुजरात का ऐसा राजा हो उसके बारे मे तुम्हारा यह दावा कि वह दाल-भात कौर नही! अजी, वह तो पचायती खेती है कि जिसका भी जी चाहे चर ले! जब जो चाहे उसकी सीमा मे घुस जाए। कोकणी नवसारी तक पहुँच गए, क्या कर लिया तुम्हारे गुजरात ने? कमजोर की जोरू सबकी भौजाई हो रही है तुम्हारी गुजरात। यह तो खैर मनाओ कि इधर हमारे-जैसे रखवाले बैठे हैं जिनसे लाज ढकी हुई है!

पासे देवल के हाथ मे रह गए। उग्र होकर बोली "बस कीजिए महाराज, नही तो हाँसी की फाँसी हो जाएगी।"

"किसकी माँ ने सेर मूँठ खाई है!" अर्णोराज के मन मे यह बात बहुत दिनो से खटक रही थी कि कुमारपाल गादी पर बैठ गया और काचनदेवी सोमेश्वर को लेकर स्वय पाटन गई पर उसका दावा मजूर न हुआ। इस समय दिल जले को दिल की आह निकालने का मौका मिल गया . "लानत है गुजरात पर, जिसने कोढ़ी को राजा बनाया! दूसरा देश होता तो कभी का उठाकर फेक देता। गुजरात भी कोई देश है! कोढी देश और कोढी वहाँ का राजा—भगवान ने भी क्या खूब मिलाई जोडी. ."

देवल ने पासे रख दिये और बिसात उलट दी। वह उठकर खडी हो गई

और छेडी हुई नागिन की तरह फुफकारकर बोली "महाराज! मुँह सँभालकर बात कीजिए, मेरे देश को बुरा कहा है तो . "

"क्या कर लोगी ?" आनकराज ने भी पासे फेंक दिये और कडककर बोला . "बताओ, क्या कर लोगी ?"

"बुरा हो जाएगा राजाजी !" देवल मारे गुस्से के आगबबूला हो गई । आँखो से अगारे झडने लगे, आवाज़ रूखी और भारी हो गई । नाक का तिल जैसे जहरीला हो उठा ।

"जा, जो तुझसे बने कर लेना । एक बार नही हज़ार बार गुजरात है गरीब की जोरू और सबकी भौजाई, गुजरात है मुडको-निगठो का मुल्क, गुजरात है कोढियो, अपाहिजो और सिर-फिरो का देश, गुजरात है "

"कान खोलकर सुनो राजाजी, गुजरात है महाराज मूलराज का देश, जिसने शाकभरी को रौंद डाला था। याद है ? और सुनो गुजरात है महाराज सिद्धराज का देश, जिसके आगे मुँह मे तिनका लेकर गाय-बैल की तरह तुम खुद शरण माँगने गए थे ! भूल गए क्या ? और गुजरात है महाराज कुमारपाल का देश, जिससे तुम नाक रगडकर अपने प्राणो की भीख माँगोगे । सुन लो, वह दिन दूर नही है ।"

"क्या बकती है ?" अर्णोराज तडपकर खडा हो गया और उसने रानो को मारने के लिए पाँव उठाया ।

"खबरदार, शाकभरीराज !" देवलदेवी ने कडककर कहा : "मैंने इन चरणो को पूजा है । इनकी मर्यादा को मिट्टी मे मत मिलाओ । अगर तुमने लात चलाई तो समझ लो कि तुम्हारे इन चरणो की कीमत दो कौडी की भी नही रह जाएगी । फिर तो मैंने पाटन के बाजार मे शाकभरी की इज्जत को नीलाम नही किया तो समझ लेना कि अपने बाप की बेटी और कुमारपाल की बहिन नही !"

"शाकभरी की इज्जत को नीलाम करनेवाली, पहले अपनी इज्जत तो बचा ले ! रडी की औलाद के लडके की लडकी तू हमसे जबान लडाती है ! याद कर, तेरे भाई कुमारपाल की माँ कौन थी ? और उसके बाप के बाप की माँ कौन थी ? शाकभरी के बाजार मे कोठे पर बैठनेवाली एक मामूली नर्तकी ! और तू चली है शाकभरी की इज्जत को नीलाम करने । ले . ." अर्णोराज ने

पूरी ताकत से लात चलाई। देवल पैंतरा बदलकर वार बचा गई। अर्णोराज सभल न सका, औंधे मुंह जा गिरा। इससे उसका गुस्सा और भी भडका। फुर्ती से उठा और लपककर एक लात जमा ही दी।

"बस राजाजी ! बहुत हो गया। तुमने अपनेवाली कर ली। अब मैं जाती हूँ। आऊँगी शाकभरी-विजेता अपने भाई के साथ और तब तुमसे हिसाब समझूंगी "

वह लपकती हुई सीढियाँ उतर गई। गोविन्दराज ड्योढी पर खडा था। रानी का विकराल रूप देखकर कॉप उठा। उसे समझते देर न लगी कि राजा-रानी मे झगड़ा हो गया है। इतने मे दौडकर आते अर्णोराज की आवाज सुनाई दी : "तो सुनती जा "

"अब सुनती है मेरी जूती ."

"तो निकल जा यहाँ से. "

"जा रही हूँ। अब यहाँ एक क्षण भी रुकना हराम है। गोविन्दराज, साँढनी लाओ। मैं पाटन जाऊँगी।"

"रानीजी "

"गोविन्दराज, सुना या नही ? साँढनी लाते हो या सिर पटककर प्राण दे दूं ?"

"गोविन्दराज, ले जाओ इसे और छोड आओ उस कोढी के यहाँ। हमे इसकी जरूरत नही। जाओ, खुद ही ले जाओ "

गोविन्दराज ने पलटकर देखा, लेकिन तब तक अर्णोराज जा चुका था।

"किस सोच-विचार मे पडे हो गोविन्दराज ?" देवल ने कहा . "साँढनी बुलाओ, मैं कहती हूँ साँढनी बुलाओ। युद्धभद्री पर जाऊँगी। तुम साथ चलकर उसे लौटा लाना। अब मेरे लिए यहाँ साँस लेना भी हराम है !"

२५ : देवल आई

कृष्णदेव के समाचारो पर पाटनवासी रात-भर अचरज करते रहे। सवेरे उनका अचरज आँखो देखे सत्य मे बदल गया। रोज की तरह सवेरे महाराज की सवारी निकली। रोज की तरह सैंकडो-हजारो आदमी सवारी देखने के लिए जमा हुए। लेकिन रोज की तरह कलहपचानन की पीठ के हौदे मे महाराज कुमारपाल की बगल मे, ठीक राजछत्र के नीचे कृष्णदेव नही था। लोगो ने आँखें मल-मलकर देखा। महाराज कुमारपाल तो अपनी जगह जरूर थे, लेकिन उनकी बगल मे कौन था ?

उनकी बगल मे, छत्र के नीचे एक कोमलागिनी बैठी हुई थी। उसके चेहरे पर राजसी वैभव और गर्व का लेश भी नही था। अधिकार का रोब-दाब भी उसमे नही था। यहाँ तक कि राजा की रानी होने का ठाठ-बाट और तेजस्विता भी नही थी। बिलकुल सीधा, भोला और माँ की ममता से मण्डित वह चेहरा था। देखनेवालो को वह अपने घर की माँ-बहिन ही लगती थी। असल मे वह कोमलागिनी नारी गुर्जरेश्वर कुमारपाल की रानी नही, पत्नी भोपलदेवी थी। इतनी ममता और करुणा उसकी आँखो मे थी कि हर दुःखी को एक क्षण यहाँ सहारा-सा मिल जाता था। सच ही भोपलदेवी जीवन-सघर्ष की तपती दुपहरिया मे शीतल चन्दन की छाँह की तरह थी। कीमती वस्त्राभूषण पहने इस समय महाराज कुमारपाल के साथ हाथी के हौदे मे बैठी जरूर थी, लेकिन लगता था जैसे राजा के कन्धे पर हाथ रखकर उसे दुःखी दिनो का दिलासा दे रही हो—'महाराज ! ये दिन भी निकल जाएँगे।' पिछले तीस बरसो से वह कुमारपाल के साथ छाया की तरह चलती रही थी। उनके साथ भागी थी, उनके साथ छिपकर रही थी और उनके साथ दर-दर की ठोकरें खाती फिरी थी। हर बार कुमारपाल से उसने यही कहा था : "महाराज, हर चीज़ का अन्त होता है और इस दुःख का भी अन्त होगा, अवश्य होगा।"

लोगो ने जब उस देवी को छत्र के नीचे राजा की बगल मे बैठे देखा तो उनकी श्रद्धा, भक्ति और उत्साह का ज्वार उमड आया और वे उमग-उमगकर जयजयकार करने लगे—'महाराज कुमारपाल की जय ! महारानी भोपलदेवी की जय !'

भोपलदेवी पाटन की ऐसी भीड-भाड आज पहली वार ही देख रही थी। अपनी ममता भरी दृष्टि से वात्सल्य लुटाती वह चारो ओर देखती जा रही थी। तभी उसे दूर से एक साँढनी आती दिखाई दी। एक घडी मे एक योजन चलने-वाली उस साँढनी ने क्षण-भर के लिए भोपल की निगाहो को थाम लिया। कृष्णदेव पर किये गए वार की बात अभी ताजी ही थी। भोपल ने सोचा कि या तो नडूल से कोई आ रहा है या फिर सीमान्त का कोई सन्देशवाहक होगा।

उसने धीरे से महाराज के कन्धे पर हाथ रखकर कहा "स्वामी, वह जमीन से लगी कोई साँढनी चली आ रही है। वहुत तेज़ दौडनेवाली मालूम पडती है।"

"इतनी तेज़ चलनेवाली साँढनी सिर्फ आनक के पास है। उसी की होनी चाहिए। उदयन मेहता कहाँ है ?" कुमारपाल ने कहा।

उदयन पास ही था। वह भी उस साँढनी की ही ओर देख रहा था। बोला "महाराज, मैने पता लगाने के लिए काकभट्ट को भेज दिया है। खुद भी जा रहा हूँ। जो भी समाचार होगे अभी लाकर प्रस्तुत करता हूँ।"

राजसवारी को वही से लौटा दिया गया। महाराज कुमारपाल महलो मे लौट आए और मन्त्रणा-गृह मे वैठकर समाचारो की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। उनके मन मे तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। कृष्णदेव के सह-योगियो और उससे सहानुभूति रखनेवालो की कमी नही थी। कहनेवाले तो यहाँ तक कह रहे थे कि उसका वेटा नडूल का युवराज कल्हण वदला लिये विना रहेगा नही। वैसे कृष्णदेव के मारे जाने से लोगो मे आतक जरूर छा गया था।

महाराज अभी वैठे तर्क-वितर्क कर ही रहे थे कि आगन्तुक आते दिखाई दिये। कुमारपाल ने उनकी ओर देखा और चौंक पडे। आगे-आगे देवलदेवी चली आ रही थी। देवल के इस तरह सहसा चले आने का कारण उनकी समझ मे नही आया। कही प्रेमल का सन्देशा पाकर तो नही आई है ? जरूर कडी और कडवी बातें कहेगी। चुप मारकर सुन लेना होगा। सगी वहिन को भरी जवानी मे

विधवा किया है तो सुनना ही होगा। कृष्णदेव को मारने का दु ख कुमारपाल को भी कम नही था। लेकिन निरुपाय होकर ही उन्हें बहनोई का वध करना पडा था। उसके अहकार, उसकी तुच्छता और उसकी मूर्खता को सहा जा सकता था, लेकिन विश्वासघात को सहना अपने और देश के पतन को आमन्त्रित करना था। लेकिन आश्चर्य है कि बात इतनी जल्दी फैल गई और देश-देशान्तरो तक में पहुँच गई .

इतने में देवल वहाँ आ गई। उसके पीछे एक सशस्त्र सामन्त, उदयन और काक आदि चले आ रहे थे।

"महाराज, गजब हो गया! आपने इन्हें पहचाना ? ये हैं गोविन्दराजजी। शाकभरी के दाहिने हाथ। देवलदेवी को पहुँचाने आए हैं।"

"अच्छा, यह बात है! आओ बहिन, यहाँ आ जाओ! बहुत बरसो पर तुमसे मिलना हो रहा है। कैसे हैं आनकराज और क्या कर रहे हैं ? तुम्हारी ससुराल में और तो सब कुशल-मगल है न ? लेकिन तुम इतनी दु खी क्यो लग रही हो ?"

भाई का स्नेह भरा स्वर सुनकर देवल गद्‌गद हो गई और भीगे गले से बोली "भैया मैं तो तुम्हारी शरण आई हूँ।"

"सबको शरण देनेवाला है भगवान सोमनाथ! हमारी-तुम्हारी क्या बिसात ? लेकिन तू यह क्या कह रही है ? कैसी शरण और क्या बात ? पाटन जितना मेरा है उतना ही तेरा भी। लेकिन तू इस तरह रुआँसी और दु खित क्यो हो रही है ? क्या बात है ?"

"महाराज!" गोविन्दराज ने आगे आकर प्रणाम करते हुए कहा "मै रानीजी को पहुँचाने आया हूँ।"

"यह तो हमे उदयन मेहता ने बताया। और कुछ ? आनकराज ने और भी कुछ कहलवाया है ?"

"जी हाँ।"

"क्या ?"

"सब-कुछ देवलदेवी कहेगी ही।" उदयन ने बीच में पडकर कहा "गोविन्दराजजी थक गए है। सारी रात चलना पडा है।"

"क्या रणभद्री से आये हैं ?"

"जी नही, उसकी वेटी युद्धभद्री पर आये हैं।"

"रणभद्री तो मई, रणभद्री ही थी। एक घडी मे एक योजन की मजिल मार लेती थी। उसकी यह वेटी भी वैसी ही तेज़ दौडनेवाली लगती है। अच्छा, आप अभी आराम कीजिए। काकभट्ट, इनके विश्राम का वन्दोवस्त आपके जिम्मे रहा। मेरी वहिन के ससुराल के मेहमान हैं। आव-भगत मे खामी नही पडनी चाहिए। शाम को वात करने का विचार हो तो खवर करवा दीजिएगा। कल तक तो रुकेंगे न?"

"जी नही! रात मे ही निकल जाना चाहता हूँ।"

"वाह, ऐसा भी कही हुआ है? उदयन मेहता .."

"जी प्रभो! आना इनके अखत्यार की वात थी, जाने देना हमारे अखत्यार की। हम विदा करेंगे तभी न जाने पाएँगे! काकभट्टजी, आप जाइए इनके साथ।"

गोविन्दराज ने हाथ जोडकर देवलदेवी को प्रणाम किया।

उसने वडी शान्ति से पर उपेक्षा भरे स्वर मे कहा : "हाँ, मिलते जाइएगा।"

गोविन्दराज काक के साथ चला गया। तभी अन्दर के कमरे से एक नन्ही-सी गोरी वालिका ने झाँका और किलककर वोली : "ओ हो, वुआजी!" और तुरत पर्दे के पीछे गायव हो गई।

"अरे लीलू, तू यहाँ है?"

"हाँ देवल, तेरी भाभी आई हुई हैं। जा भीतर, तेरा रास्ता देख रही होगी।"

देवल अन्दर चली गई। वहाँ केवल राजा और मत्री रह गए। उदयन ने चारो ओर देखकर कहा : "महाराज, गजव हो गया! समझ लीजिए कि लडाई नगाडे वजाती चली आ रही है।"

"कैसी लड़ाई? क्या वात है मेहताजी?"

"वात यह है महाराज कि देवलदेवी आनकराज से लडकर आई है।"

"वह मूर्ख है ही ऐसा।"

"उसने देवलदेवी को यहाँ तक लाछित कर डाला कि तेरा कुल वारांगनाओ का है।"

"अच्छा ?"

"तव देवलदेवी को भी गुस्सा आ गया। यह कहकर वहाँ से चली आई कि अव तो शाकंभरी-विजेता अपने भाई के ही साथ लौटूंगी।"

"शावाश ! खूव कहा ! आनक से हमे देर-अबेर लडना ही था। अव इस झगडे से जल्दी छुट्टी पा जाएँगे। कल से ही तैयारियाँ शुरू कर दीजिए। और गोविन्दराज रात मे जाता है तो जाने दीजिए।"

"नही महाराज, उसे यो लौट जाने देना ठीक नही।"

"क्या मतलव ? यहाँ रोक लेना चाहते हैं ? इससे क्या हमारी अपकीर्ति नही होगी ? यह तो धोखा हुआ !"

उदयन ने विनम्रता से जवाव दिया "नही, मेरा मतलब उसे बन्दी वनाने से नही हैं महाराज। आनक, विक्रम, बल्लाल सभी कूटनीति से काम ले रहे हैं। हम पिछड़ गए तो मारे जाएँगे। इसलिए मेरी राय मे गोविन्द को मिला लेना चाहिए। महाराज को एक वचन देना होगा।"

"क्या ?"

"यही कि जव सोमेश्वर वहाँ का राजा वने तो सारा अधिकार गोविन्द के हाथ मे रहेगा।"

"खूब मेहताजी, खूब ! कहना तो आपका सच है ! यही रास्ता ठीक लगता है। महादेव तो इतनी दूर की वात और इस रूप मे कभी सोच भी नही सकते। उन्हें मालूम भी नही होना चाहिए। लेकिन सतर्क रहिएगा, कही यह हमे बद्धू न वना दे ! आखिर तो आनक का साथी है।"

"हम भी कौन कम हैं महाराज ? जयदेव महाराज के सेवक रहे हैं। अन्त तक शान्ति-शान्ति जपते रहेंगे और अन्दर-ही-अन्दर तैयारियाँ होती रहेंगी। किसी को कानोकान भी पता नही चलने पाएगा। क्या दूसरे लोग ही कूटनीति चल सकते हैं और हम नही ? इसमे तो जिसका भी दाव चल जाए ! दूसरो को खत्म किये विना हमे शान्ति मिलने की नही।"

"ठीक है, आप गोविन्दराज को टटोल देखिए और उसे अनुकूल करने की कोशिश कीजिए। लडना तो पडेगा ही। शान्ति से हमे कोई वैठने नहीं देगा। मालवा का बल्लाल सिर उठा रहा है। उसका सन्देशवाहक आता होगा।

"जव वनेंगे तव की वात। मैं तो वर्तमान की कह रही हूँ और चाहती हूँ कि यह अभी से अपने महत्त्व को समझे और पुरुषार्थ करे।"

"मैं यही तो वताने आया हूँ। इनका भाग्य वडा वली है। राजलक्ष्मी स्वय सामने चली आ रही है। आपने सुना तो होगा ही; देवलदेवी आई है।"

"हाँ, सुना है। ये तेज़ मिजाज़ हैं और शाकभरी-राज भी कम नही। दोनो नगी तलवारें टकरा गई होगी आपस में।"

"वही तो। वे लौट आई हैं और अपने साथ युद्ध भी लेती आई हैं। महाराज कुमारपाल स्वय जाएँगे लडाई पर। पता चला है कि त्यागभट्ट भी वहीं है। वडी विकट होगी यह लडाई—या तो पाटनपति ही रहेंगे या फिर शाकभरीराज ही। इस लडाई में वडी उथल-पुथल होनेवाली है। गोविन्दराज आए हैं। गुजरात से उन्हें सहानुभूति है।"

"हाँ, कुछ तो है ही। वहाँ आनकराज के सारे सरदार एक तरफ और ये अकेले एक तरफ। वल्कि मैं तो कहूँगी कि इनकी सहानुभूति गुजरात के साथ है।"

"फिर तो इनका यहाँ आना एक तरह से अच्छा ही हुआ।" और उदयन तिरछी निगाहो से काचनदेवी की ओर देखने लगा। उसका इस तरह देखना हजार शव्दो की गरज पूरी कर देता था।

काचनदेवी विचारमग्न हो गई। उदयन के आने का हेतु वह समझ गई थी। लेकिन वह दोनो काम वनाना चाहती थी—उदयन का मतलव निकालने के साथ-ही-साथ अपने सोमेश्वर का भी हित-साधन कर लेना चाहती थी। और दोनो काम इस तरह करना चाहती थी कि उनकी प्रतिष्ठा पर आँच न आए। उसने धीरे से कहा "गोविन्दराज की जगदेव से जरा भी नही पटती।"

"मैं यही तो कहने आया हूँ।" उदयन ने उत्साह भरे स्वर में कहा "गोविन्द-राज* आपसे मिलने आएँगे। विना मिले तो लौटेंगे नही। हम उनसे कुछ कहें उसके वदले आपका कहना कही अच्छा होगा। सोमेश्वरदेवजी का राजा वनना

* शाकंभरी के युद्ध में वहाँ के कई सरदार कुमारपाल से मिल गए थे, उनमें गोविन्दराज भी था, ऐसा उल्लेख आचार्य हेमचन्द्र के टीकाकार ने किया है।

सब तरह उनके हित में होगा। हमें उनको यह विश्वास दिलाना होगा कि सोमेश्वरजी के राजा बनने पर महासामन्त पद उन्ही को दिया जाएगा।"

काचनदेवी ने पूछा "वे मान जाएँगे ?"

"मनाने का सामान भी साथ लेता आया हूँ। यह भेंट हमारी ओर से नही कुबेरराज श्रेष्ठी की ओर से है। श्रेष्ठीजी भी आनेवाले है।" और उदयन ने अपनी गाँठ में से पांच-छ कीमती हीरे निकालकर काचनदेवी के सामने रख दिये। उनकी जगमगाहट देखकर काचनदेवी विस्मित रह गई और सोचने लगी कि महाराज सिद्धराज अपने पीछे कैसा नगर और कैसे नगरवासी छोड गए हैं जो इतने मूल्यवान रत्न भी इतनी आसानी से दे देते हैं! साथ ही उसे यह खयाल भी आया कि जब कुमारपाल के साथ ऐसे-ऐसे सामर्थ्यवान लोग है तो उनकी विजय निश्चित है और अब उनसे सघर्ष मोल लेना व्यर्थ ही होगा।

उदयन उसके मन की बात ताड गया और बोला "आप चिन्ता न करें। शाकभरी का राज्य हाथ मे रहा और सोमेश्वरजी वहाँ के राजा बने तो भगवान वह दिन भी ला सकता है जब सोमेश्वरजी भारतव्यापी कीर्ति अर्जित करें। आदमी का नसीब कितना जोरदार है यह पहले से क्या कहा जा सकता है! अभी तो हमे गोविन्दराजजी से निपटना है। वे आ रहे हैं और उनकी उपस्थिति का सदुपयोग कर लेना चाहिए।"

तभी बाहर से एक अनुचर ने आकर सूचना दी "शाकभरी के गोविन्दराजजी आए हैं।" उदयन और काचनदेवी ने आँखो-ही-आँखो मे गोविन्दराज के सम्बन्ध मे परामर्श कर लिया। काचनदेवी ने सिर हिलाकर गोविन्दराज को अन्दर भेजने की अनुमती दे दी। अनुचर प्रणाम करके चला गया। थोडी देर बाद आपाद मस्तक शस्त्रास्त्रो से सजा एक युवक योद्धा अन्दर आया और खडा हो गया। सोमेश्वर को देखकर उसने अपनी तलवार उसके सामने रख दी और फिर हाथ जोडकर प्रणाम किया। उदयन उसकी हर हलचल को बैठा ध्यान से देख रहा था। जब उसने काचनदेवी को प्रणाम किया तो वह बोली "आओ, बैठो गोविन्दराज! यहाँ कब आए?"

"बस चला ही आ रहा हूँ।"

"शाकभरी मे सब कुशल-मगल तो है न ?"

"जब बनेंगे तब की बात। मैं तो वर्तमान की कह रही हूँ और चाहती हूँ कि यह अभी से अपने महत्त्व को समझे और पुरुषार्थ करे।"

"मैं यही तो बताने आया हूँ। इनका भाग्य बडा बली है। राजलक्ष्मी स्वय सामने चली आ रही है। आपने सुना तो होगा ही, देवलदेवी आई है।"

"हाँ, सुना है। ये तेज मिजाज़ हैं और शाकभरी-राज भी कम नही। दोनों नगी तलवारे टकरा गई होंगी आपस में।"

"वही तो। वे लौट आई हैं और अपने साथ युद्ध भी लेती आई है। महाराज कुमारपाल स्वय जाएँगे लडाई पर। पता चला है कि त्यागभट्ट भी वही है। बडी विकट होगी यह लडाई—या तो पाटनपति ही रहेंगे या फिर शाकंभरीराज ही। इस लडाई में बडी उथल-पुथल होनेवाली है। गोविन्दराज आए हैं। गुजरात से उन्हें सहानुभूति है।"

"हाँ, कुछ तो है ही। वहाँ आनकराज के सारे सरदार एक तरफ और ये अकेले एक तरफ। बल्कि मैं तो कहूँगी कि इनकी सहानुभूति गुजरात के साथ है।"

"फिर तो इनका यहाँ आना एक तरह से अच्छा ही हुआ।" और उदयन तिरछी निगाहो से काचनदेवी की ओर देखने लगा। उसका इस तरह देखना हजार शब्दो की गरज पूरी कर देता था।

काचनदेवी विचारमग्न हो गई। उदयन के आने का हेतु वह समझ गई थी। लेकिन वह दोनो काम बनाना चाहती थी—उदयन का मतलब निकालने के साथ-ही-साथ अपने सोमेश्वर का भी हित-साधन कर लेना चाहती थी। और दोनो काम इस तरह करना चाहती थी कि उनकी प्रतिष्ठा पर आँच न आए। उसने धीरे से कहा "गोविन्दराज की जगदेव से जरा भी नही पटती।"

"मैं यही तो कहने आया हूँ।" उदयन ने उत्साह भरे स्वर में कहा. "गोविन्दराज* आपसे मिलने आएँगे। बिना मिले तो लौटेंगे नही। हम उनसे कुछ कहें उसके बदले आपका कहना कही अच्छा होगा। सोमेश्वरदेवजी का राजा बनना

* शाकंभरी के युद्ध में वहाँ के कई सरदार कुमारपाल से मिल गए थे, उनमें गोविन्दराज भी था, ऐसा उल्लेख आचार्य हेमचन्द्र के टीकाकार ने किया है।

सव तरह उनके हित मे होगा। हमें उनको यह विश्वास दिलाना होगा कि सोमेश्वरजी के राजा वनने पर महासामन्त पद उन्ही को दिया जाएगा।"

काचनदेवी ने पूछा "वे मान जाएँगे ?"

"मनाने का सामान भी साथ लेता आया हूँ। यह भेट हमारी ओर से नही कुवेरराज श्रेष्ठी की ओर से है। श्रेष्ठीजी भी आनेवाले है।" और उदयन ने अपनी गाँठ में से पाच-छ कीमती हीरे निकालकर काचनदेवी के सामने रख दिये। उनकी जगमगाहट देखकर काचनदेवी विस्मित रह गई और सोचने लगी कि महाराज सिद्धराज अपने पीछे कैसा नगर और कैसे नगरवासी छोड गए है जो इतने मूल्यवान रत्न भी इतनी आसानी से दे देते हैं! साथ ही उसे यह खयाल भी आया कि जव कुमारमाल के साथ ऐसे-ऐसे सामर्थ्यवान लोग हैं तो उनकी विजय निश्चित है और अव उनसे सघर्ष मोल लेना व्यर्थ ही होगा।

उदयन उसके मन की बात ताड गया और वोला "आप चिन्ता न करे। शाकभरी का राज्य हाथ मे रहा और सोमेश्वरजी वहाँ के राजा बने तो भगवान वह दिन भी ला सकता है जब सोमेश्वरजी भारतव्यापी कीर्ति अर्जित करें। आदमी का नसीव कितना जोरदार है यह पहले से क्या कहा जा सकता है! अभी तो हमे गोविन्दराजजी से निपटना है। वे आ रहे हैं और उनकी उपस्थिति का सदुपयोग कर लेना चाहिए।"

तभी वाहर से एक अनुचर ने आकर सूचना दी "शाकभरी के गोविन्दराजजी आए हैं।" उदयन और काचनदेवी ने आँखो-ही-आँखो मे गोविन्दराज के सम्वन्ध मे परामर्श कर लिया। काचनदेवी ने सिर हिलाकर गोविन्दराज को अन्दर भेजने की अनुमती दे दी। अनुचर प्रणाम करके चला गया। थोडी देर वाद आपाद मस्तक शस्त्रास्त्रो से सजा एक युवक योद्धा अन्दर आया और खडा हो गया। सोमेश्वर को देखकर उसने अपनी तलवार उसके सामने रख दी और फिर हाथ जोडकर प्रणाम किया। उदयन उसकी हर हलचल को वैठा ध्यान से देख रहा था। जव उसने काचनदेवी को प्रणाम किया तो वह वोली "आओ, वैठो गोविन्दराज! यहाँ कव आए ?"

"वस चला ही आ रहा हूँ।"

"शाकभरी मे सव कुशल-मगल तो है न ?"

उदयन उठा और प्रणाम करके चला गया। वहाँ से उसने सीधे कुवेरराज श्रेष्ठी के घर का रुख किया। लोगो को आश्चर्य जरूर हुआ, लेकिन आश्चर्य की कोई वात नही थी। सभी जानते है कि श्रेष्ठी के यहाँ हीरे, माणिक और मोती की कमी नही, लेकिन अकेला उदयन ही जानता था कि मारवाडी हीरे, माणिक और मोती पर जान देते हैं और गोविन्दराज मारवाडी था।

२६ : गोविन्दराज फूटा

कुछ लोग यह जानते हैं कि काम वनाने के लिए किसको पकडना चाहिए। कुछ यह भी जानते हैं कि काम वनाने के लिए किसको कव पकडना चाहिए। लेकिन यह जाननेवाले वहुत कम होते हैं कि काम वनाने से लिए किसको, कव और कैसे पकडना चाहिए। उदयन इन्ही तीसरी कोटि के विरल पुरुषो मे था।

गोविन्दराज को उसने मालवा के रणक्षेत्र मे देखा था। आज वह देवलदेवी को पहुँचाने आया तो पता चल गया कि गुजरात के प्रति उसकी थोडी-वहुत सहानुभूति है। आनकराज वहुत कठोर प्रकृति का आदमी था। उसका वेटा जगदेव उद्धत था। ऐसे उद्धत राजा से भविष्य मे कुछ पाने की आशा गोविन्दराज को हो नही सकती थी। उदयन इस वात को जानता था। जव वह स्वय ही चलकर आया है तो उसे अपने पक्ष मे किये विना चले जाने देना उदयन के मन हद दर्जे की वेवकूफी थी।

लेकिन गोविन्दराज ज्यादा रुक नही सकता था। उसका रुकना ठीक भी नही था। इसलिए जो थोडा-सा समय था उसी में उदयन को सारा काम करना था। इसलिए वह कुवेरराज के यहाँ से काचनदेवी के पास गया।

काचनदेवी के लिए अभी तो शाकभरी के सारे दरवाजे वन्द थे। आनकराज का युवराज जगदेव सोमेश्वर को चुल्लू पानी भी न मिलने देता, राज्य और

अधिकार तो दूर रहे। काचनदेवी ने राजसभा में उदयन की दो-चार बातें सुनी और मानी भी थी। उदयन को वह सामान्य वुद्धि की व्यावहारिक नारी लगी। सोमेश्वर के हित के लिए वह गोविन्दराज को अपने पक्ष में करने के लिए जरूर तैयार हो जाएगी, उदयन की यह धारणा गलत नही थी। जब वह काचनदेवी के यहाँ पहुँचा तो वह सोमेश्वर को अपने पास विठाकर कह रही थी : "सोम, तेरे मातामह ने भारतव्यापी कीर्ति अर्जित की थी। लेकिन तेरे पास एक छोटे-से गाँव का भी राज्य नही है। और तेरा सौतेला भाई जगदेव दुर्योधन से भी दो कदम आगे है। न वह सुई की नोक वरावर जमीन देने को राजी हुआ, न यह कभी होगा। अव तू ही वता कि क्या करना चाहता है---दूसरो के यहाँ टुकडे तोडना पसन्द करेगा या अपने पुरुपार्थ से अपना भाग्योदय ? वता वेटे, तू क्या चाहता है ?"

एक क्षण के लिए दरवाजे पर ठिठके उदयन ने काचनदेवी का अन्तिम वाक्य सुन लिया और फुर्ती से प्रवेश करते हुए कहा "काचनदेवी, आपने जो कुछ कहा उसे मैंने भी सुना।"

"मैंने कुछ गलत तो कहा नही मेहताजी ! शाकभरी के राज्य पर अधिकार तो इसका भी है।"

"देवीजी !" उदयन हाथ जोडकर उसके पास वैठ गया और वोला "मेरी एक वात मानेंगी ?"

"कहिए मेहताजी।"

"मुझे तो सोमेश्वरजी का भाग्य वहुत प्रवल लग रहा है। एक दिन ये जरूर भारतव्यापी कीर्ति अर्जित करेंगे। आज भी ये किसी के आश्रित नही हैं और न किसी के यहाँ टुकडे तोड रहे हैं। आखिर तो यह राज्य इनके नानाजी का है, किसी गैर का नही। कठिनाई यह है कि पाटन के सिंहासन पर दूसरे किसी वश का कोई व्यक्ति वैठ नही सकता। इस वात को आप भी जानती है। इसलिए मैंने उस दिन आपसे ठीक ही कहा था। वाकी सोमेश्वरजी के हितो और अधिकारो का हम लोगो को पूरा खयाल है। महाराज कुमारपाल की इनके प्रति पूरी सहानुभूति है। आप धीरज रखें। एक दिन सोमेश्वरजी अवश्य शाकभरी के राजा वनेंगे।"

"जी हाँ, सब आपका आशीर्वाद है। लेकिन . "

"लेकिन क्या ?"

"जगदेवजी इन दिनो बेकाबू हुए जा रहे है। रात-दिन लडाई के मनसूबे किया करते हैं। उनका बस चले तो हवा से भी लडाई छेड़ दे।"

"महाराज हैं तो उन्हें काबू मे रखने के लिए।"

"हाँ, सो तो हैं। लेकिन सच कह रहा हूँ, सोमेश्वरजी के बिना वहाँ सब-कुछ सूना और अँधेरा-अँधेरा-सा लगता है।"

"उसे तो तुम लोगो ने निकाल दिया। एक देवलदेवी रह गई थी सो उन्हें भी निकाल बाहर किया। अब सुधवारानी का मजे से एकछत्र राज्य हो गया।"

"अगर आप मेरी इतनी-सी विनय मान लें ?"

"क्या ?"

"सोमेश्वरदेवजी को मेरे साथ भेज दीजिए।"

"अपने लाल को तुम्हारे साथ भेज दूं ?"

"जी हाँ। अगर उनका बाल भी बाँका हुआ तो मेरा सिर धड़ से जुदा कर दीजिएगा। मुझ पर विश्वास कीजिए। यदि आप या सोमेश्वरजी मे से कोई वहाँ नही रहे तो अधिकार एकदम छिन जाएगा।"

उदयन ने फौरन समर्थन किया "जी हाँ, ये सच ही कह रहे हैं।"

"क्या सच कह रहे है ?" काचनदेवी समझ तो गई थी, परन्तु भूमिका बाँधना जरूरी था, बोली "गोविन्दराजजी हमारे विश्वस्त आदमी हैं। इनके आने से पहले हम यही बात तो कर रहे थे कि वहाँ हमारा कोई है तो सिर्फ गोविन्दराजजी। ये चाहे तो वहाँ रहकर भी हमारी मदद कर सकते है, हमे नये-नये उपाय सुझा सकते है "

"मदद तो ये करेंगे ही। अच्छा गोविन्दराजजी, मेरी एक बात मानिए।" उदयन ने कहा : "आप, हम और काचनदेवी सभी समझते हैं कि देवलदेवी अपने साथ युद्ध को भी न्यौता देती आई है। न आनकराज मानेंगे और न जगदेवजी। लडने के लिए हाथ इन दोनो के खुजला रहे हैं। ऐसे समय सोमेश्वरजी का वहाँ होना, क्या खयाल है आपका, सोमेश्वरजी का यहाँ रहना ज्यादा निरापद नही है ? लेकिन अगर आप वहाँ रहकर इनका रास्ता सरल कर सकें तो शाकभरी

की कीर्ति भारतव्यापी हो सकती है। काचनदेवी इस काम में आपकी सेवा और सहयोग चाहती है। आप देने को तैयार हैं ? पहले तो इसका जवाब दीजिए। बताइए, आप तैयार है ? मतलब यह कि आनकराज का आप पर कितना विश्वास है ? क्योंकि उसके बिना तो कोई बात बनेगी नही।"

"आनकराज के विश्वास की आप पूछते हैं ? बगैर विश्वास हुए वे मुझे यहाँ चला आने देते ? आपका क्या खयाल है ?"

"यह प्रश्न मुख्यत राजकीय उथल-पुथल का है। एक राजा को हटाकर उसके स्थान पर दूसरे राजा को बिठाने की बात है। इसमे पग-पग पर सकट है। कौन किस तरह का आचरण करेगा, कहा नही जा सकता। जीतने पर सोमेश्वरजी आपको महासामन्त पद पर नियुक्त कर निर्भय हो जाएँगे। लेकिन यह तो बाद की बात है। काचनदेवी भी इससे सहमत है। प्रश्न अभी का है। बडी मुश्किल से सिंह के पजो से छूटकर आई हैं और आप कहते हैं कि फिर बाघ की डाढो मे सिर दे दें ! हाँ, अगर आप काम बना दें, और वह भी इस तरह कि किसी को सन्देह न हो, कानोकान पता न चले, तब तो बात बन सकती है। वैसे सकट तो है ही। आपका क्या खयाल है ?"

गोविन्दराज विचारमग्न हो गया। उदयन सच कह रहा था। युद्ध अवश्य होगा। यदि सोमेश्वर विजयी हुआ तो उसके भी भाग्य का सितारा चमक जाएगा। जगदेव की बात पर विश्वास किया नही जा सकता था। उसका अपना भाग्योदय सोमेश्वर के साथ ही हो सकता था। नही तो शाकभरी को यश और राज्य दोनो से हाथ धोने पडेंगे। और आनकराज की गति मालवा-जैसी हो जाएगी। जगदेव और आनक दोनो बाप-बेटा मिलकर करम तो ऐसे ही कर रहे थे।

अब उदयन ने उस मारवाडी को लोभ से जीतने का दाव चला। बोला : "गोविन्दराजजी, यह भी सच है कि वहाँ अकेले आपके किये कुछ न होगा। थोडे साथी-सहयोगी तो चाहिए ही। और उन्हें देने के लिए ये .."

उसकी बात अधूरी ही रह गई। अनुचर ने आकर सूचना दी "देवी, कुबेरराज श्रेष्ठी आये हैं।"

"श्रेष्ठीजी आये है ? मैंने उन्हें बुलवाया था। जा फौरन भेज।" काचनदेवी ने बात सँभाल ली।

उदयन चुप हो गया। कुवेरराज अन्दर आया। उसके पहने हुए माणिक-मोती ने वहाँ के सव रत्नो की आभा फीकी कर दी। वडे ही मीठे, मोहक और शालीन स्वर मे वोला "लीजिए, आप यहाँ हैं और मै आपको वहाँ खोज रहा था।" उसने यह वात गोविन्दराज की ओर देखकर कही।

"आप मुझे खोज रहे थे ? मगर " गोविन्दराज ने साश्चर्य कहा।

"आपने इन्हें पहचाना नही ? पाटन के कुवेरराज श्रेष्ठी यही हैं। महाराज के जौहरी हैं और घर करोडो की सम्पत्ति।" उदयन ने परिचय कराया।

अव श्रेष्ठी वोला : "जी हाँ, आपको ही खोज रहा था। महाराज आनकराज की सेवा मे प्रस्तुत करने के लिए दो-चार रत्न मेरे पास हैं " उसने गाँठ मे से तीन-चार हीरे निकालकर दिखाए। उनकी चमक-दमक देखकर उदयन भी चकित रह गया और सोचने लगा कि इस आदमी की सम्पदा का कोई पार भी है या नही ? और दिल भी पाया है साक्षात् लक्ष्मीनाथ-जैसा, अन्य कुवेरपतिओ-जैसा सूम नही है।

कुवेरराज ने वे हीरे गोविन्दराज को देते हुए कहा "आप आए हैं तो महाराज आनकराज के लिए लेते जाइए। उन्होने स्वीकार कर लिये तो ठीक, नही तो मैं कभी आऊँगा तव लौटा दीजिएगा।"

गोविन्दराज कुवेर श्रेष्ठी की रिद्धि-सिद्धि देखकर विस्मित रह गया और आँखें फाडे उसकी ओर देखने लगा।

कुवेर ने कहा "आप-जैसो के लिए भी एक चीज़ मेरे पास है।" और उसने एक काला नग निकालकर गोविन्दराज के आगे रख दिया। किसी मुन्दरी की आँख की काली पुतली-जैसा वह एक गोल काला वडा मोती था। उसने आगे कहा "किसी भी गोरी नारी के कठ की यह शोभा है। वहुत दिनो से मेरे पास पडा था, लेकिन इसे धारण करनेवाली गौरागी कोई मिलती नही। शायद आपके यहाँ कोई निकल आए। रख लीजिए। अनमोल चीज है। सहेजकर रखने-जैसी। जिसके घर मे यह रहेगा उसकी हमेशा विजय होती रहेगी, धन, धान्य और सम्पदा की अभिवृद्धि भी हुआ करेगी। रख लीजिए।"

गोविन्दराज स्तव्ध हो गया। समझ मे नही आता था कि क्या कहे। कभी लगता था जैसे सपना देख रहा हो! कहाँ है, क्यो आया है और क्या वात कर रहा

है, यह भी वह भूल गया। कुबेरराज के वस्त्राभूषणो ने, उसकी बातो ने, उसकी उदारता और सम्पन्नता ने उसे मंत्रमुग्ध कर दिया था।

अन्त मे उदयन की ओर देखकर किसी तरह बोला "मत्रीश्वर.. "

"गोविन्दराजजी, श्रेष्ठीजी ठीक ही कह रहे हैं। वहाँ आपके मित्र होगे। उन्हें बनाकर रखना पडेगा। जब आप उनसे पाटन की मैत्री की बात कहेंगे तो वे सच ही पूछेंगे कि पाटन मे ऐसा क्या है जो हम उसका साथ दें? उस समय उन्हें बताने के लिए कुछ तो चाहिए न? रख लीजिए इन रत्नो को। दो-चार मेरे पास भी है। इन्हें भी रख लीजिए। वहाँ मित्रो और सहयोगियो को देने के लिए काम आएँगे। लेकिन यह ध्यान रहे कि कोई धूर्त और कपटी साथ न आ जाए। ऐसा आदमी आपको और हमे, दोनो को बुद्धू बना देगा। शमशेर, सिर और सिंहासन का खेल हम खेलने जा रहे है। हर बार फूंक-फूंककर कदम रखना होगा। सच्चे और ईमानदार लोगो को ही साथ रखिएगा। झूठो को निकाल फेंकिएगा। अपना पक्ष निरन्तर पुष्ट करते रहिएगा। हम वहाँ शीघ्र आएंगे। आप रहेंगे ही। भगवान सोमनाथ की कृपा से पाटन विजयी होगा—अर्थात् आपकी जीत होगी, महाराज सोमेश्वर चौहान की जीत होगी। सच पूछिए तो जीत काचनदेवी की होगी। आप आनकराजजी से कह दीजिए कि पाटन हमला करनेवाला है। इससे आप पर उनके रहे-सहे सन्देह का निवारण हो जाएगा।"

गोविन्दराज ने हाथ जोडकर कहा· "देवी ."

"गोविन्दराज, आपने तो पहले भी कहा था लेकिन वहाँ किसी ने आपकी सुनी नही। इस समय सोमेश्वर को वहाँ ले जाने की अपेक्षा मेरे खयाल मे मेहताजी की बतलाई कार्यनीति अपनाना ज्यादा श्रेयस्कर है। क्यो आपका क्या खयाल है? आप स्वय समझदार हैं। राजनीति और कूटनीति की बारीकियो को समझते हैं। युद्ध-प्रवीण भी हैं। काम इस तरह होना चाहिए कि किसी को सन्देह न हो। केवल ऐसे ही लोगो को साथ लीजिए जो पूरी तरह विश्वासपात्र हो।"

"रत्नो की और भी आवश्यकता हो तो नि सकोच मँगा लीजिएगा। यहाँ शासनदेवी की कृपा है। हम भी आएँगे। तब भेंट होगी; या भूल जाएँगे?"

"क्यो लज्जित करते हैं श्रेष्ठीजी? आपको भला भुलाया जा सकता है!"

थोडी देर वाद उदयन और गोविन्दराज काचनदेवी की हवेली से वाहर निकले तो घनिष्ठ मित्रों की तरह सैनिक मोर्चेबन्दी के वारे मे वातें करते जा रहे थे।

२७ : काकभट्ट की नई जिम्मेवारी

गोविन्दराज लौटकर शाकभरी चला गया। इधर पाटन मे दूसरे ही दिन से लडाई की तैयारियाँ शुरू हो गईं। एक ही दिन में पाटन का पूरा नक्शा वदल गया। हर मुहल्ला सैनिक छावनी और हर युवक सैनिक वन गया। जहाँ देखो आगामी लडाई की चर्चा होती सुनाई पड़ती थी। सैनिक हलचलें वढ गईं और सारे नगर की सैनिक व्यवस्था की जाने लगी।

पाटन का वच्चा-वच्चा इस वात को समझ गया था कि चाहे आनकराज पाटन पर हमला करे अथवा पाटन आनकराज पर, लडाई तो अव होकर ही रहेगी। मन्त्रिमडल की चिन्ताएँ काफी वढ गई थी। चिन्ता का मुख्य कारण यह था कि कुमारपाल गादी पर रह भी सकेंगे या नही ! त्यागभट्ट सिहासन-प्राप्ति के प्रयत्नो मे लगा ही हुआ था। इतना अच्छा हुआ कि युद्ध-घोषणा के कारण कृष्णदेववाली घटना को लोग भूल गए थे। राज्यारोहण-महोत्सव भी स्थगित कर दिया गया था। महाराज की सवारी भी अव नही निकलती थी। उसे इसलिए वन्द कर देना पडा कि शत्रु का कोई छद्मवेशधारी चर जन-सम्पर्क के समय महाराज पर सहसा वार न कर दे! कुमारपाल स्वय पाटन को युद्ध के लिए तैयार करने के काम मे लग गए थे।

लेकिन पाटन मे और पाटन के वाहर भी एक वर्ग ऐसा था जो चाहता था कि राज्य मे अव्यवस्था हो जाए और वह उससे फायदा उठा सके। ये लोग खुलकर तो कुछ कर नही सकते थे। कृष्णदेववाली घटना ने उन्हें सामने आकर खुला विरोध करने से रोक दिया था, परन्तु अन्दर-ही-अन्दर वे अपना काम कर

रहे थे और छिपे-छिपे तैयारियाँ करते जाते थे। वे इस ताक में थे कि कुमारपाल पाटन से वाहर निकलें और वे यहाँ अव्यवस्था फैलाकर अपना काम वना लें। इन लोगो मे कुछ तो नड्डूल के चौहान थे, जो कृष्णदेववाली घटना से नाराज़ हो गए थे और कुछ त्यागभट्ट, केशव आदि के साथी-सहयोगी थे।

कुमारपाल को सारी स्थिति मालूम थी और वे पूरी सतर्कता से काम ले रहे थे। वे यह भी जानते थे कि आनक और वल्लाल दोनो ही चाहते है कि पाटन में अव्यवस्था हो और वे उससे फायदा उठा सकें। यदि शाकभरी और मालवा एक साथ आक्रमण कर देते तो पाटन के लिए टिके रहना मुश्किल हो जाता। ठीक वही हालत हो जाती जो महाराज मूलराजदेव के समय हुई थी। इसलिए महाराज कुमारपाल ने दोनो से अलग-अलग लडने का फैसला किया। उन्हें एक होने का मौका ही क्यो दिया जाए? उन दोनो के सयुक्त होने से पहले दोनो को ही अलग-अलग पीट-पाटकर क्यो न रख दिया जाए?

इसके लिए महाराज कुमारपाल ने युद्ध-सभा का आयोजन किया। जितने भी भरोसे के आदमी थे उन सब को मन्त्रणा के लिए वुलाया गया। मालवा और शाकभरी का डर तो था ही, अव यह समाचार भी आने लगे थे कि अर्वुदमण्डल का विक्रम भी लडाई की तैयारियाँ कर रहा है। कोविदास और धार परमार पहले उसी का कच्चा चिट्ठा सुनाने के लिए आये थे। इस दिशा में अभी तक कुछ किया नही जा सका था, क्योकि पहले तो उत्तराधिकार का निर्णय करना था और फिर सब को कुमारपाल को सिंहासनासीन करने की योजना मे लग जाना पडा था। अव जो ये समाचार नये सिरे से सुनने को मिले तो सब लोग और भी चिन्तित हो गए।

वात चिन्ता की थी भी। भौगोलिक दृष्टि से चन्द्रावती का वडा महत्त्व था। अपनी स्थिति के कारण वह चाहे तो शाकंभरी और मालवा दोनो को रोक दे और चाहे तो दोनो को चढ आने दे। इसलिए विक्रम की निष्ठा का सही अन्दाज़ कर लेना वहुत जरूरी हो गया था। एक तरह से इस युद्ध का सारा दारोमदार उसी पर था।

उसने अपना एक सन्देशवाहक पाटन भेजा था। उसने महाराज कुमारपाल को चन्द्रावती आने का न्यौता दिया था। वह अपने यहाँ एक महोत्सव करने जा

रहा था। उसने सगमरमर का एक अद्भुत महल वनवाया था। इस महल क उद्घाटन समारम्भ महाराज कुमारपाल के हाथो करने का निश्चय किया गय था। इस अवसर पर प्रख्यात नर्तकी नीलमणि का नाच भी रखा गया था। वह पाटन से चन्द्रावती के लिए चल भी पडी थी।

इस समाचार ने उदयन को वहुत चिन्तित कर दिया। जाने क्यो उसे लग रहा था कि उत्सव के आयोजन की ओट में कोई भयकर पड्यत्र किया जानेवाला है और उसमे नड्डूल, शाकभरी, अवन्ती, अर्वुदमण्डल सभी शरीक है। परन्तु इनकार भी नही किया जा सकता था। अर्वुदमण्डल का पाटन के लिए अत्यधिक सामरिक महत्त्व था। इस समय विक्रम को अप्रसन्न करना अपने हाथो पाँव में कुल्हाडी मारना था। और उसे खुश करने का मतलव था राजी-खुशी सिंह की माँद में जा वैठना। विलकुल साँप-छछूँदर की-सी स्थिति थी। कुछ भी करने और कोई भी कदम उठाने से पहले विक्रम की निष्ठा का पता लगा लेना वहुत आवश्यक हो गया था।

वैसे आन्तरिक विरोध अर्वुदमण्डल में भी था। परमार धारावर्षदेव और कोविदासजी इसलिए आए भी थे कि पाटन न्याय का पक्ष ले। अर्वुदमण्डल के सिहासन पर सच पूछा जाए तो वार परमार के पिता यशोधवल परमार का अधिकार था, लेकिन विक्रमसिंह ने धाँधली करके राज्य हथिया लिया था। अव यदि फिर न्याय का प्रश्न उठा तो क्या इस समय विक्रम को नाराज़ करना उचित होगा?

पाटन के सामने ऐसे कई जटिल प्रश्न थे। कुमारपाल प्रश्नो की जटिलता का विचार करके मुस्कराने लगते थे। वे मन-ही-मन कहते, 'न विधना को मेरे-जैसा कोई मिलेगा और न मुझे विधना-जैसा कोई।'

युद्ध की मत्रणा-सभा मे कुमारपाल ने अपने निकट सहयोगियो को भी वुलाया था। वाँमरि, आलिग, सज्जन, भीमसिंह आदि भी निमन्त्रित किये गए थे। एक-एककर सव आये। सव-के-सव गम्भीर और चिन्तातुर थे। सवके आ जाने पर कुमारपाल ने कहा: "युद्ध करना ही होगा इसलिए मैंने आप सवको मन्त्रणा के लिए वुलाया है। स्थिति क्या है यह तो आपको उदयन मेहता वताएँगे। मुझे तो सिर्फ यही कहना है कि राजपद के निपटारे की ही तरह

आनक का प्रश्न भी जीवन-मरण का है। देवलदेवी को क्यो आना पडा, यह भी आपको विस्तार से बतलाया जाएगा। एक पाटन के विरुद्ध बल्लाल, आनक और विक्रम—तीन-तीन जबर्दस्त दुश्मन खम् ठोके खडे हैं। भगवान सोमनाथ के नाम पर हमे कमर कसना है। जल्दी ही हमे कूच करना होगा।"

इसके बाद उदयन बोलने के लिए खडा हुआ "महाराज ने परिस्थिति का दिग्दर्शन बहुत-कुछ सक्षेप मे कर दिया है। यहाँ जितने लोग उपस्थित है उनके अतिरिक्त किस पर कितना विश्वास करे, यह हम स्वय भी नही जानते। अभी तो महाराज का सिंहासन भी स्थिर नही हुआ है और यह मुसीबत आ पडी। लडना तो हमे होगा ही। अच्छा, मालवा के बल्लाल के मुकाबले पर कौन जाएगा ? काकभट्ट, आप जाएँगे क्या ?"

"लेकिन वहाँ तो विजय और कृष्ण गए हुए है न ?"

"वे लोग नादीपुर (नादोल) गए हैं काकभट्टजी !" कुमारपाल ने कहा "और अभी वही रहेंगे। मेरी राय मे तो काकभट्ट के सिवा किसी और को बल्लाल के मुकाबले पर भेजना ठीक न होगा। वौसरि को इनके स्थान पर लाट का दण्डनायक बना देना चाहिए। वौसरि भृगुकच्छ से और भृगुकच्छ वौसरि से परिचित भी हैं। हमने शाकभरी पर हमला किया और यदि इधर विक्रम ने गडबड कर दी या हाथ खीच लिये तो बल्लाल चन्द्रावती के ही रास्ते सीधा पाटन पर चढ दौड़ेगा। इसलिए उसके मुकाबले पर आपको ही जाना होगा। दूसरा तो मार खा जाएगा। और आपके जिम्मे केवल एक काम—बल्लाल का मुकाबला करना ही नही है। बल्लाल को वस मे करना, आनक को हराना, विक्रम की निष्ठा का पता लगाना और त्यागभट्ट से सुलझना, कई काम हैं। इन सब काररवाइयो के केन्द्र, काकभट्टजी, आप होंगे। आज रात ही आपको प्रस्थान करना होगा। कहिए, आपकी क्या राय है ? मुझे तो आपके सिवा और कोई दिखाई नही देता।"

"लेकिन महाराज, कहाँ मैं और कहाँ यह इतना भारी उत्तरदायित्व ? क्या मैं निभा सकूँगा ?"

"दूसरा तो मुझे कोई दिखाई नही देता। कोई हो तो आप ही बताइए काकभट्टराज !" कुमारपाल ने कहा "महामात्यजी जा नही सकते। उन्हें यही

रहना होगा। पाटन मे भी तो कोई रहना चाहिए। उदयन और वाग्भट्ट हमारे साथ जाएँगे—आनक पर आक्रमण करने। रह जाते हैं आप, इसी लिए मैं यह भार आपको सौंप रहा हूँ। और जब तक आप विक्रम की स्थिति का पता लगाकर हमे समाचार नही भेजते हम यहाँ से निकल नहीं सकते। इसलिए आप आज ही रात चन्द्रावती के लिए रवाना हो जाइए।"

"काकभट्टजी !" उदयन ने उसे उसकी भावी कार्य-योजना समझाते हुए कहा "धारावर्षदेव और कोविदासजी यहाँ आये थे। आप उन्हें जानते-पहचानते हैं। वहाँ की एक समस्या सिंहासन के उत्तराधिकार की भी है। सच्चे उत्तराधिकारी धारावर्षदेवजी के पिता यशोधवलजी हैं। उनके पिता रामसिंह मरते समय विक्रम को उनकी देखभाल का भार सौंप गए थे। विक्रम भतीजे का हक मारकर खुद ही राजा बन बैठा। अब यदि न्याय का प्रश्न खडा हो जाए तो आपको इस समय उससे अलग रहना होगा। अभी हम कोई हस्तक्षेप नही करेंगे। अभी तो आपका मुख्य काम होगा विक्रम की निष्ठा का पता लगाना। वह कितना हमारे साथ है और कितना हमारे विरोधियो के ? नीलमणि भी वहाँ गई हुई है। त्यागभट्ट भी शायद वही है। तात्पर्य यह कि इस समय चन्द्रावती ऐसा अग्नि-स्थान है जो पाटन को जला सकता है। वहाँ आपको बहुत सावधानी से रहना होगा। बस, मुझे इतना ही कहना है। बताइए, आप कब रवाना हो रहे हैं ?"

काकभट्ट समझ गया कि भृगुकच्छ छोडना ही होगा। इतना सन्तोष जरूर हुआ कि महाराज ने उसकी कीमत समझी और इतने महत्त्व का काम सौंपा। उसने वौसरि की ओर देखकर कहा : "भट्टराज, यह लीजिए.. मुझे तैयारी के लिए भी तो कुछ समय चाहिए.." और उसने दुर्ग की चाभी, भृगुकच्छ की मुहर और अधिकार-पत्र वौसरि के हवाले कर दिये।

काक की इस राजभक्ति पर कुमारपाल गद्‌गद हो गए। अपने स्थान से उठकर उसके पास आए और स्नेहपूर्वक कन्धे पर हाथ रखकर बोले "भट्टराज ! आप मालवा की चप्पा-चप्पा जमीन से परिचित है। यह काम मैं किसी और को सौंप नही सकता। या तो आप कर सकते हैं या मैं। लेकिन मैं आपको सिंह की मांद मे ठेले दे रहा हूँ। विक्रमसिंह चीते से भी अधिक विकराल है—वह बडा ही चालाक, धोखेबाज, उग्र, फुर्तीला और समझदार भी है। उससे पेश आना

दूसरे किसी के बूते का है भी नही। जाने से पहले मुझसे मिल लीजिएगा। त्यागभट्ट भी कम खतरनाक नही है। उसके-जैसा गजविद्याविशारद आज सारे भारतवर्ष मे दूसरा कोई नही है। उससे बेखबर रहकर आगे बढना, अन्धेरे मे डुबकी लगाना होगा। आपका सन्देशा मिलने या आपके लौट आने के बाद ही हम यहाँ से निकल सकेंगे।"

इसके बाद और भी कई फैसले हुए—पाटन मे क्या तैयारियाँ करनी होगी, महाराज कब प्रस्थान करेंगे, कहाँ से कितने सैनिक, साँढनी सवार, हाथी और घुडसवार बुलाये जाएँगे आदि-आदि। यह भी तय किया गया कि सन्देशवाहक कितने और कौन लोग होगे।

और लडने का फैसला तो खैर हो ही गया था।

२८ : केशव की जल-समाधि

काक ने भृगुकच्छ से एक जाने-पहचाने योद्धा को अपने साथ लिया और चल पडा। उस योद्धा का नाम था आयुध। जब काक चला तो उसको क्या पता था कि वह अपनी कीर्ति-यात्रा पर जा रहा है! वह तो सिर्फ इतना ही जानता था कि इधर का प्रदेश और लोग उसके जाने-पहचाने है और वह किसी-न-किसी तरह अपेक्षित जानकारी पा ही लेगा।

जब वह अर्बुदगिरि मे पहुँचा तो वहाँ की शान्ति देखकर विस्मित रह गया। लडाई की उसे कही कोई तैयारी दिखाई नही दी। जिस विक्रम के नाम से पाटनवाले काँपते थे वह बिलकुल शान्त और चुप बैठा था। लेकिन धीरे-धीरे उसे असलियत मालूम होती गई।

विक्रमसिंह ढोल बजाकर लड़नेवाले आदमियो मे नही था। ऊपर से वह बड़ा ही शान्तिप्रिय और समझौतावादी लगता था। उसके-जैसा मिठबोला तो सारे देश मे दीया लेकर ढूँढने पर भी न मिलता। चन्द्रावती मे उसके नाम का

डंका वजता था। काक को सारा शहर घूम लेने पर भी न तो धारावर्षदेव दिखाई दिया और न कोविदास ही। यशोधवल भी वहाँ नहीं था। शायद दूर के किसी गाँव मे जा बसा था। काक और आयुध यहाँ तीर्थयात्रियो के वेश मे आए थे। उन्होने एक धर्मशाला मे, जो वडे तालाव के करीव थी, मुकाम किया और घूम-घूमकर अर्वुदगिरि की चोटियाँ और मन्दिर देखने लगे।

काक को वहाँ की शान्ति सन्देहास्पद लगती थी। वगल मे ही मालवा जोर-शोर से लडाई की तैयारियाँ कर रहा हो और चन्द्रावती चुप लगाए वैठी रहे, यह वात उसका मन मानता नही था। वह इतना समझ गया कि विक्रम कोई गहरी चाल चलना चाहता है, और वह चाल जरूर भयकर होनी चाहिए। विक्रम को मनमानी करने के लिए छोडकर न तो पाटन मालवा की तरफ जा सकता था और न आनक पर आक्रमण कर सकता था। यही वात, काक को याद आया कि धारावर्षदेव ने भी कही थी।

काक ने आयुध के हाथ यह सन्देशा पाटन भेजा कि फौरन सेना की एक टुकडी इलदुर्ग भेजी जाए और जव महाराज यहाँ आएँ तो विक्रम को भी साथ आने का आदेश दें तभी उसकी वास्तविक स्थिति का पता लग सकेगा।

तभी एक दिन काक ने मन्दिर के रास्ते पर तीन खिलौनेवालो को वैठे देखा। उसे थोडा सन्देह हुआ। उनका रग ढग खिलौनेवालो-जैसा नहीं लगता था। वह उनका पीछा करने लगा। उसने पाया कि वे भी वडे तालाव के पास ही कही रहते हैं। उसे सन्देह हुआ कि ये कहीं केशव, त्रिलोचन और मल्हारभट्ट तो नही! और यदि हुए तो विक्रमसिह ने जरूर हर तरह के लोगो को अपने यहाँ जमा कर लिया है और उसकी शान्ति केवल ऊपरी दिखावा और भयकर है।

काक आयुध के लौटने की प्रतीक्षा और अपने तीनो सन्देहास्पद पडोसियो की निगरानी करता रहा। एक दिन उसने पाया कि उसके तीनो पडोसी कुछ जल्दी में हैं। थोडी देर वाद उसने उन तीनो को वशिष्ठाश्रम की ओर जाते देखा। उसने अपने डेरे में एक पत्थर पर आयुध के लिए यह सूचना लिखकर रख दी कि 'लौट आओ तो मुझे वशिष्ठाश्रम की ओर मिलना' और आप भी उनके पीछे हो लिया।

रात उन लोगो ने वशिष्ठाश्रम में विताई। सवेरा हुआ। तरह-तरह के रग-

विरगे वनपाखी बोलने लगे। चारो ओर से शख और घटे-घडियालो की आवाज़ सुनाई देने लगी। सूर्य-किरणो में पहाडी झरने चाँदी के तरल प्रवाह-जैसे चमकने लगे। नागचम्पा की मस्त मादक सुगन्ध चारो ओर भर गई। फूल खिल गए और सारा वनप्रान्तर मुदित, प्राण-पूरित हो उठा।

काकभट्ट ने जगल तो बहुत देखे थे, लेकिन यहाँ की शोभा सबसे निराली थी। और दिन होता तो वह घूम-फिरकर सारे जगल को देखता। लेकिन अभी तो इस काम के लिए उसके पास जरा भी समय नही था। फौरन एक वृक्ष पर चढकर देखने लगा कि कही आयुध आ तो नही रहा है। दूर एक पहाडी पगडडी पर उसने किसी आदमी को आते देखा। वह नीचे उतर आया। देखता क्या है कि तीनो आदमी कही जाने के लिए तैयार खडे है। तीनो के पास ऊँची नस्ल के बढिया घोडे थे। काक सोचने लगा कि ये कौन हैं, और कहाँ, किस उद्देश्य से जाना चाहते है। वहाँ से रास्ते मेदपाट, शाकभरी और मालवा, सभी ओर जाते थे। इसलिए सबसे पहले तो यह जानना जरूरी था कि वे कहाँ जा रहे हैं।

तभी आयुध आता दिखाई दिया।

पास आ जाने पर काक ने उससे पूछा "मेरा लिखित सन्देशा समझ में तो आ गया या कठिनाई हुई?"

"नही, कठिनाई तो कुछ भी नही हुई। ये तीनो आदमी मुझे भी सन्देहास्पद लगे थे। ये त्यागभट्ट से मिलने जा रहे हैं—आनक के रास्ते जाएँगे और नर्मदा-किनारे उससे मिलेगे। वहाँ इन्होने हाथी जमा किये है।"

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

"एक दिन मैंने इन्हें बातें करते सुन लिया था। ये ऐसे हाथी की तलाश मे हैं जिसकी गन्ध से दूसरे सब हाथी डरकर भाग जाएँ।"

"तुम्हारा मतलब गन्धहस्ती से है! अच्छा!" काक को महाराज कुमारपाल के शब्द याद आ गए। उन्होने कहा कि त्यागभट्ट के हाथियो से सभलकर रहना। तो त्यागभट्ट नर्मदा के जगलो मे हाथियो की और खास तौर पर गधहस्ती की तलाश मे घूम रहा है। और ये तीनो उससे मिलने के लिए जा रहे हैं। यह बात युद्ध की दृष्टि से बडे महत्त्व की थी। फिर उसने आयुध से

पूछा "तू वहाँ से क्या सन्देश लाया ? महाराज ने कुछ कहलवाया है ? आनक के वारे मे कोई नये समाचार मिले हैं ?"

"सन्देशा कोई खास नही है। सिर्फ यही कि जो कर रहे हो किये जाओ। शत्रु-पक्ष की हर जानकारी प्राप्त कर लो। मालवा की तैयारियो का भी पता लगाओ। महाराज से चन्द्रावती मे मिलो। महाराज खुद भी रवाना होनेवाले हैं।"

"कव ?"

"तैयारी पूरी होते ही। आनक के विरुद्ध लडाई मे, महाराज का विचार, विक्रमसिंह को अपने साथ रखने का है। कच्छ का राव आ गया है। नड्डूल का केल्हण रास्ते मे मिल जाएगा। सिन्धु देश की घुड़सवार सेना पहुँच गई है। गजसेना तैयार हो रही है। हमे महाराज से चन्द्रावती मे मिलने के लिए कहा गया है।"

"लेकिन पहले यह तो पता लगा लिया जाए कि ये तीनो कहाँ जा रहे हैं। तू एक काम कर। अपने घोड़ो को लेकर जगल के वाहर मेरी प्रतीक्षा करना। मैं पगडडी के रास्ते इनके पीछे जाकर पता लगाता हूँ कि ये कहाँ जाते हैं। इनसे वचकर रहना, सामने मत पड जाना।"

काक उनके पीछे लगा वशिष्ठाश्रम के जगल से वाहर निकल आया। उन्हे पता भी न चला कि कोई पीछा कर रहा है। जगल के वाहर उसे आयुध मिल गया। उसने वताया कि तीनो आदमियो ने पास के तालाव पर थोडी देर ठहरकर खाना-पीना किया और अभी थोडी देर पहले ही वहाँ से आगे गए हैं।

दिन काफी चढ आया था। काक को जोरो की भूख लग रही थी। पकाने-खाने का समय तो था नही। पास ही उसे कुछ वनफल दिखाई दिये। उनसे क्षुधा शान्ति कर वह तीनो का पीछा करने लगा।

मेदपाट को एक ओर छोड तीनो घुडसवार शाकभरी के रास्ते आगे वढे और कुछ दूर जाकर उत्तर की ओर मुड गए। लगा जैसे वे मालवा की ओर जा रहे हैं। काक और आयुध अधिक सतर्क हो गए। उन्होने एक क्षण के भी लिए उन्हें आँखो से ओझल नही होने दिया। अव तो यह जानना वहुत ही जरूरी हो गया था कि वे कौन हैं और किस आशय से कहाँ जा रहे हैं। काक कई दिनो तक उनका पीछा करता रहा। एक तरह से लुकाछिपी का खेल ही था वह। इस

तरह उन लोगो ने काफी लम्बा रास्ता पार कर लिया। उज्जैन को एक वगल छोड वे आगे वढते रहे और फिर नर्मदा के किनारे से पूरव की ओर मुड गए।

निश्चय ही वे त्यागभट्ट से मिलने जा रहे थे। या तो उसने गजसेना खडी कर ली होगी या फिर किसी गन्धहस्ती की खोज मे होगा। उससे मिलने के वाद सव-के-सव या तो अर्णोराज के यहाँ जाएँगे या चन्द्रावती। काक का यह अन्दाज़ सही भी हो सकता था और गलत भी।

इसी तरह नर्मदा के किनारे-किनारे चलते हुए वे ठेठ हैहय देश की त्रिपुरी नगरी तक पहुँच गए। वहाँ नर्मदा-तट का सुन्दर-सुहावना रूप देखकर काकभट्ट की खुशी का पार न रहा। लेकिन साथ ही उसे यह चिन्ता भी सताने लगी कि त्यागभट्ट ने सचमुच गन्धहस्ती पा लिया तो गुजरात की गजसेना का क्या होगा? तव तो सिर्फ एक हाथी के सहारे वह गुजरात की सारी गजसेना को वेकार कर देगा और आनकराज गुर्जर सैनिको पर भारी पड जाएगा। यदि ऐसा हुआ तो गुजरात को हारना पडेगा। काक ने निश्चय किया कि चाहे जान की भी वाजी क्यो न लगानी पडे, इन तीनो घुडसवारो के भेद को पाना ही होगा।

एक दिन उसने तीनो घुडसवारो को नर्मदा के स्फटिक किनारो की ओर मुडते देखा। उनके हाव-भाव से लगता था जैसे यात्रा का गन्तव्य आ गया। आगे भृगुआश्रम मिला। तीनो वहाँ रुक गए। काक भी रुक गया। यहाँ सग-मरमर की चट्टानें देखकर काक चकित रह गया। उसने सोचा, शायद त्यागभट्ट भी यही हो और उसे गन्धहस्ती मिल भी गया हो। फिर उसे भृगुआश्रम मे त्यागभट्ट भी दिखाई दिया। उसे याद आया कि भाववृहस्पतिजी यही से महा-राज जयदेव के निमंत्रण पर सोमनाथ गए थे। त्यागभट्ट का यहाँ होना उसे वहुत महत्त्वपूर्ण लगा। और वह यह भी जान गया कि जिन तीन घुडसवारो का वह पीछा करता आ रहा है वे क्रमश केशव, त्रिलोचन और मल्हारभट्ट ही हैं।

उसे चन्द्रावती लौटने की जल्दी थी। यदि मालवा का युद्ध आरम्भ हो जाता तो उसका रास्ता रुक जाता। लेकिन त्यागभट्ट के वारे मे पूरी वात मालूम किये विना वह लौटना नही चाहता था। युद्ध मे विजयी होने के लिए यह जानना नितान्त आवश्यक था कि त्यागभट्ट ने क्या किया और यहाँ से वह कहाँ जाना चाहता है।

चाँदनी रात थी। नर्मदा किनारे की चराचर वन्य प्रकृति चन्द्रकिरणो के रजत राग मे नहा उठी थी। नर्मदा-तट की स्फटिक शिलाओ का प्रतिविम्ब नर्मदा के स्थिर जल मे एक ऐन्द्रजालिक नगर की सृष्टि कर रहा था। लगता था जैसे कोई रहस्य लोक ही धरती पर उतर आया हो। ऐसे समय काक ने त्रिलोचन, मल्हारभट्ट और केशव की त्रिपुटी को नर्मदा-तट की ओर जाते देखा।

वह तुरत अपने वसेरे मे से वाहर निकल आया और पलाश वृक्षो की ओट मे छिपता-दुवकता उनके पीछे हो लिया। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि आज तो इनकी वातें सुनकर और इनका भेद पाकर ही रहेगा। इधर भृगु-आश्रम की हलचलो से वह इतना समझ गया था कि शीघ्र ही ये लोग यहाँ से कही जानेवाले है। या तो इनकी गजसेना चल चुकी है या अव चलने वाली है। रोज सैकडो भील भृगुआश्रम मे आते थे और लौट भी जाते थे। वे क्यो आते हैं और क्या हो रहा है, इसका निश्चित रूप से पता काकभट्ट को लग नही पाया था। इसी लिए आज उसने निश्चय किया कि जैसे भी होगा पता लगाकर रहेगा।

काक ने सवसे पहले मल्हारभट्ट को पहचाना। वह सवके आगे-आगे चल रहा था। उसके वादवाला त्रिलोचन था। केशव सवके पीछे था और घोडे पर सवार चल रहा था। वे दोनो पैदल थे। काक समझ गया कि केशव कही जा रहा है और ये दोनो उसे विदा करने जा रहे हैं।

वे चलते हुए नदी-किनारे पहुँचे। यहाँ स्फटिक की चट्टानें नदी के ऊपर झूलती हुई छज्जे की तरह निकल रही थी। काक पहले ही रास्ता काटकर एक चट्टान के नीचे दुवककर वैठ गया। वे लोग ऊपर खडे थे। काक अपनी छिपने की जगह से उन्हें देख और उनकी हर वात सुन भी सकता था। चारो ओर रात का सन्नाटा था। स्फटिक शिलाएँ नर्मदा के जल में प्रतिविम्वित होकर जल मे मानो अलकानगरी का भ्रम पैदा कर रही थी। सारा दृश्य सुख-भरी नीद के सपने-जैसा लग रहा था।

काक ने उन तीनो को वात-चीत करते पाया और स्वय कान लगाकर सुनने लगा। आवाज़ से काक ने पहचाना कि वोलनेवाला त्रिलोचन है। वह कह रहा था "सेनापतिजी, त्यागभट्ट ने वड़े वाँके हाथी पकडवाये हैं—एक-से-एक वढकर। लेकिन जिस गन्धहस्ती की उन्हें तलाश थी वह हाथ नहीं लगा।"

"ऐसा मदोन्मत्त हाथी जिसकी गध पाते ही बाकी सब हाथी दुम दबाकर भाग जाएँ, तुम्हारा मतलब यही है न त्रिलोचन ? सच ही ऐसा हाथी नही मिल सका और मुझे भी इसी बात की चिन्ता है ।" यह स्पष्ट ही सेनापति केशव का स्वर था ।

"चिन्ता काहे की ! गजसेना तो तैयार हो ही जाएगी । अभी यही काम हो रहा है ।"

"चिन्ता की बात तो है ही त्रिलोचन । यदि गन्धहस्ती मिल जाता या त्यागभट्टजी अपनी स्वतन्त्र गजसेना सगठित करते तो बात और थी । लेकिन उनका विचार शाकभरी को पाटन पर चढा ले जाने का है । उन्होने हमसे यही कहा है । ऐसी स्थिति मे हमारे लिए विचारणीय हो जाता है कि जब शाकभरी पाटन पर आक्रमण कर रहा हो तो हम उसमे भाग ले या न ले ? त्रिलोचन, मुझे तो यह अच्छा नही लगता ।" केशव के स्वर मे बडी वेदना थी ।

"मुझे तो महाराज जयसिहदेव से सूना युद्ध-स्थल अच्छा ही नही लगता ।" केशव ने उसी दर्द-भरे स्वर मे आगे कहा "जहाँ महाराज नही, मेरे लेखे वह रणक्षेत्र भी नही । मैं पाटन का दुर्गपति था और पाटन हमेशा अजेय रहा । इसी काले घोड़े पर सवार मैं पाटन के बाजारो मे दुर्गपति की प्रतिष्ठा से घूमता रहा हूँ । पाटन का बच्चा-बच्चा, यहाँ तक कि उसकी धूल का कण-कण मुझे सेनापति केशव कहकर पुकारता और जानता है । अगर पाटन के तोतले बोल बोलनेवाले बालक से भी पूछा जाए कि सेनापति कौन है तो वह तपाक से कहेगा, केशव । उस पाटन पर आक्रमण करनेवाली सेना का मैं साथ दे सकता हूँ भला ? नही, मुझसे यह कदापि नही होगा । ऐसा कृत्य देशद्रोह ही नही जीवनद्रोह है । और जीवनद्रोह का पाप करने से तो त्रिलोचन, मैं मर जाना कही अच्छा समझता हूँ । गुजरात को छिन्न-भिन्न करने मे सहायता देकर मैं अपना सेनापति-पद या कही की दण्डनायकी प्राप्त करूँ, इससे उत्तम तो यही है कि इस पामर जीवन का अन्त कर डालूँ । मै योद्धा हूँ । मैंने युद्ध किये हैं । युद्ध मे मुझे सुख मिला है । विजयश्री ने अनेक बार मेरा वरण किया है । लेकिन आर्यावर्त की एक परम्परा रही है । पराजित योद्धा स्वेच्छा से प्राणान्त करते आए हैं । जानते हो क्यो ? केवल इसलिए कि आखिर तो वे भी मनुष्य होते है और डरते हैं कि

किसी दुर्बल क्षण मे इच्छा के वशवर्ती होकर लोभ-मोह से प्रेरित देशद्रोह न कर बैठे। अपनी कीर्ति और स्वाभिमान का सौदा करने की अपेक्षा सच्चे योद्धा जल-समाधि लेना पसन्द करते हैं। हैहयराज ने यही किया। मालवपति मुज ने भी यही किया। कर्णाट के सोमेश्वर ने इसी पथ का अनुसरण किया और राव खेंगार ने भी इसी वीरोचित आदर्श का अवलम्बन किया। पराजित जीवन योद्धाओ के लिए नही हुआ करता, वह होती है उनके लिए जीवित मृत्यु।"

काक ने सुना और मन-ही-मन 'वाह-वाह' कर उठा। कितना स्वाभिमानी और गर्वीला है केशव सेनापति! सही अर्थों मे सेनापति है। पाटन की शान है। हलकी और ओछी बात तो मुँह से निकालना जानता ही नही। काक रोमाचित हो गया।

उधर त्रिलोचन कह रहा था "सेनापतिजी, आप अब भी हमारे सेनापति है। पाटनद्रोह न आप चाहते हैं और न हम। हम देश छोडकर चले जाएँगे, दुनिया-जहान की ठोकरें खाते फिरेंगे, लेकिन यह हर्गिज गवारा न करेंगे कि पाटन पर आक्रमण करनेवाले शाकभरी का साथ दें। कुमारतिलक की यह बात हमे भी पसन्द नही।"

"तो अब हमे करना क्या चाहिए त्रिलोचन ?" केशव उत्तर पाने के लिए उनकी ओर देख रहा हो, ऐसा काक को लगा।

लेकिन थोडी देर चुप्पी रही। कोई कुछ न बोला।

"हाँ, करें क्या ?" अन्त मे त्रिलोचन ने पूछा।

"त्रिलोचनपालजी, आप ज़रा देर से आए। जल्दी आने का सौभाग्य मुझे मिला। मैंने महाराज जयसिंहदेव के साथ अनेक युद्धो में भाग लिया। अनेक वार उनके परदु खभजन अभियानो मे साथ गया। गुप्त गोष्ठियो मे सम्मिलित हुआ। आमोद-प्रमोद मे हिस्सा लिया। धनुर्विद्या की स्पर्धाओ मे अपना कौशल दिखलाया। महाराज के विना अब मुझे अपना जीवन ऐसा ही लगता है जैसे विना सूरज का दिन। कुमारपाल आँखो मे धूल झोक गया, यह मुझसे भुलाये नही भूलता। उस कोढी के आगे झुकना अपना अन्तकाल बिगाडना है, जो मैं कभी नही करूँगा। अपनी हार मैं स्वीकार करता हूँ। यदि महाराज जीवित होते तो यह तलवार उनके चरणो मे रखकर खुशी-खुशी

मौत को गले लगाता और अपमान-भरे जीवन से उबर जाता। आखिर तो मैं भी आदमी हूँ। किसी दिन मानवी दुर्बलता मुझे पाटनद्रोह के लिए प्रेरित कर सकती है, मैं फिसल सकता हूँ। अपनी ओर से ऐसा मौका आने ही क्यो दिया जाए ? आत्मघात करके मैं इस फिसलन-भरे मार्ग को ही सदा के लिए बन्द कर दूँगा। प्राण देकर आत्मगौरव की रक्षा करूँगा। कीर्ति के लिए प्राण देने की परिपाटी तो योद्धाओ मे सदा से चली आई है। वीरो की रणनीति का यह अलिखित नियम सारे विश्व मे सदियो से प्रचलित है। त्रिलोचनपालजी, आप अभी युवक हैं। सारा जीवन आपके सामने पडा है। अनेक नये-नये युद्धो मे भाग लेने का और कीर्ति प्राप्त करने का स्वर्ण अवसर आपको बार-बार मिलेगा। अभी जो युद्ध होने जा रहा है उसमें भी आप अपने जौहर दिखा सकते है। इसी लिए मैं आपसे पूछता हूँ कि अब आप क्या करेंगे ?"

"कम-से-कम पाटनद्रोह तो नही ही करूँगा प्रभो।"

काक फिर 'वाह-वाह' कर उठा—पट्टनी आखिर पट्टनी ही होता है। घोर सकट और निराशा में ही क्यो न हो पट्टनी कभी क्षुद्रता नही करेगा। उसने मन-ही-मन दोनो को प्रणाम किया।

"पाटनद्रोह की एक बात जो हमें मालूम है ."

काक चौंक पडा। त्रिलोचन पहले स्तब्ध रह गया, फिर आश्चर्य मे भरकर बोला . "हमें मालूम है ?"

"हाँ। लेकिन नही; 'हमें' नही, सिर्फ मुझे मालूम है। त्रिलोचनपालजी " केशव ने कहा।

काक की सारी चेतना कानो मे आ बैठी। वह एकाग्र होकर सुनने लगा।

केशव ने आगे कहा . "यह बात आपको बता देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। आप इसे उन लोगो तक पहुँचा दीजिए जिनसे इसका सम्बन्ध है, तभी मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी।"

"यह बात किस तक पहुँचानी होगी प्रभो ?"

"पाटन की नई राज्य-व्यवस्था के कर्ता-धर्ता उदयन मेहता तक पहुँचाइए चाहे कुमारपाल तक।"

ऐसा लगा मानो त्रिलोचन विस्मित रह गया हो। फिर बोला "ठीक है,

पहुँचा देंगे। लेकिन आपको अपने से जुदा न होने देंगे। सब साथ भटकते रहेंगे।"

"त्रिलोचनपालजी, मेरा मन महाराज जयदेव के साथ स्वर्ग मे चौपड़ खेलने का हो रहा है।" केशव के स्वर की वेदना पत्थर को भी पिघला रही थी। लेकिन उसने तुरत अपने पर काबू पा लिया और बोला . "आप मेरा इतना काम कर दीजिए, फिर आपकी छुट्टी। आपने हमारा बहुत साथ दिया। भगवान आपको इसका बदला दे। मनाता हूँ कि पाटन का दुर्गपाल आपके-जैसा हो। आपने तो कृष्णदेव को भी रोक दिया था। आखिर वह कृष्णदेव मारा गया। लेकिन इसमे हमारी मूल बात रही जाती है। पाटनद्रोह की बात मैं आपको बता रहा था, ध्यान से सुनिए "

काक ने कान खडे कर दिये। डरा कि कही केशव त्रिलोचन के कान में न कह दे। लेकिन केशव ने पहले की ही तरह शान्त और धीमी आवाज़ मे कहा : "त्रिलोचनपालजी, आप यहाँ से फौरन चन्द्रावती जाइए। कुमारपाल वहाँ आएगा। वहाँ उस पर धोखे से वार किया जाएगा।"

"यह आप क्या कह रहे हैं प्रभो!" त्रिलोचन ने विस्मित होकर कहा। काक पर तो जैसे गाज ही गिरी।

"मैंने स्वय त्यागभट्ट के मुँह से सुना; लेकिन वे नही जानते कि मुझे मालूम है। छिपकर मैंने सुनी थी यह बात। और तब से मेरा मन खिन्न और विषण्ण हो गया। अनार्यता की हद है। युद्ध नही रहा, कपट चाल हो गई! विक्रम ने वहाँ एक ऐसा महल बनवाया है जो कुमारपाल के जाते ही जल उठेगा। ऊपर संगमरमर का काम है और नीचे उसके आगघर है। बर्बरक के किसी साथी ने उसे बनाया है।"

काक के जी मे आया कि दौडता हुआ चला जाए महाराज कुमारपाल के पास।

उधर केशव कहे जा रहा था "इसलिए त्रिलोचनपालजी, आप यहाँ से फौरन रवाना हो जाइए। इतना ही नही, उन लोगो ने आनक की लडाई मे कुमारपाल को धोखे से मारने का षड्यन्त्र भी कर रखा है। चौलिग होगा कुमारपाल का महावत और ऐन वक्त पर धोखा दे जाएगा।"

काक को लगा कि उसका आना सार्थक हो गया। पाटन, कुमारपाल और उदयन को बचानेवाली और युद्ध मे विजय-लाभ करानेवाली बात उसके हाथ लग गई थी। काश उसके पख होते तो उडकर चला जाता।

लेकिन केशव कहे जा रहा था : "त्रिलोचनपालजी, जब यह बात हमें मालूम हो गई तो इसे यथास्थान पहुँचाकर उन लोगो को सचेत कर देना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है। आप मेरा इतना काम कर दीजिए, फिर आपकी छुट्टी। और मल्हारभट्टजी, आप मेरा कहा मानेंगे ? जो महाराज सिद्धराज के पास रह लिये उनका कुमारपाल के पास रहना मै तो उचित नही समझता। कहाँ वे अवतारी पुरुष और कहाँ कुमारपाल। वैसे कुमारपाल में जो भी गुण-अवगुण हो लेकिन महाराज जयदेव के-जैसा राजा अब पाटन के सिंहासन पर आने का नही। और जिसने कस्तूरी मृग के परिमल की सुवास जानी हो उसके लिए चम्पा की सुगन्ध का महत्त्व ही क्या ? खैर ! मेरी आपको यह सलाह है कि खेटकपथ में एक वेदाश्रम बनाकर बैठ जाइए और गोधन का लालन-पालन कीजिए। और मुझे भी यही से विदा कर दीजिए।"

"विदा की बात कैसी प्रभो ?" त्रिलोचन ने भीगे गले से कहा "मै आपको छोड कही जाऊँगा नही।"

"त्रिलोचनपालजी, मैं भी आपके साथ चलता, लेकिन जैसा कि बता चुका हूँ, वह मेरे लिए कलक की बात होगी। आप लौट आइए, फिर हम साथ विदा होगे। ठीक है न ?"

"कहाँ जाएँगे प्रभो ?"

"धरती बहुत लम्बी-चौडी है। हैहयदेश में घूमते हुए आगे गौड़-बगाले में निकल जाएँगे। वहाँ से कामरूप जाएँगे। इतना बडा देश है यह कि पूरा देखने के लिए एक जीवन भी काफी नही होता। गगामैया का किनारा है। जमना के घाट हैं। जिस रघुपति राजा राम के आदर्शों को मूर्त रूप देने के लिए महाराज जीवन-भर प्रयत्न करते रहे उसका सरयू-तट है, और क्या नही है !"

"हाँ प्रभो, मै आपके साथ ही चलूँगा।" त्रिलोचन ने कहा।

"त्रिलोचनपालजी, एक बार की बात है। महाराज के दरबार में एक विद्वान आया। महाराज का विद्या-व्यसन और काव्यानुराग तो जाना ही हुआ था।

महाराज ने आगन्तुक पडित से पूछा, 'आत्मा को विशुद्ध करने का उपाय क्या है ?' पडितजी ने जो उत्तर दिया वह मैं आपको बताता हूं । उसे सुन लीजिए और फौरन रवाना हो जाइए । पडितजी का जवाब यो था

मित्रस्नेहमरंदिग्धो रुषितो रणरेणुभिः ।
खड्गधाराजलैः स्नातो धन्यस्यात्मा विशुद्धयति ॥

"त्रिलोचनपालजी, आपके लिए तो खड्ग-धारा का स्नान अभी बाकी ही रहा है । अभी आपको जीवन में बहुत काम करने है । लेकिन सबसे पहले तो यह काम कीजिए जो मैंने आपको बताया है । उसके बाद आना चाहें तो चले आइएगा । कुमारपाल चन्द्रावती पहुंच गया होगा या पहुंच रहा होगा । हमारा उससे वैर अवश्य है, लेकिन पाटन से द्रोह करके हम देश को छिन्न-भिन्न होने नहीं दे सकते । आप जल्दी रवाना हो जाइए । जानते है न, आपको कहाँ जाना है ?"

"चन्द्रावती ।"

"हाँ, चन्द्रावती, कुमारपाल अथवा उदयन मेहता के पास । एक क्षण की भी देर मत कीजिए । जरा-सी देर के ही कारण तो हमें राज्य खोना पड़ा था । अच्छी बात है, जाइए । भगवान ने चाहा तो फिर कभी भेंट होगी । अच्छा, त्रिलोचन-पालजी, मल्हारभट्टजी, जय-जय ।" केशव की वाणी अवरुद्ध हो गई ।

काक को लगा जैसे वह हाथ जोडकर दोनो को प्रणाम कर रहा हो । काक को जानेवालो के पांवो की आवाज सुनाई दी । उसके जी में आया कि उछलकर ऊपर पहुंच जाए और केशव के पांवो से लिपटकर रो उठे । वह जयसिंहदेव का सच्चा सेवक और परमभक्त था । देवप्रसाद की गौरवशाली परम्परा को वह खूब निबाह रहा था । क्यो न ऐसे क्षत्रिय वीर को पाटन लौटा चले ? लेकिन अभी तो वह प्रकट हो नही सकता था । केशव के सामने जाना लाभ के बदले हानिकारक ही हो जाता । और फिर केशव अपने निश्चय से डिगनेवाला भी नहीं था ।

काक अपनी जगह छिपा बैठा देखता रहा कि केशव आगे क्या करता है ।

थोडी देर तक तो केशव उधर देखता रहा जिधर त्रिलोचन और मल्हारभट्ट गए थे । फिर उसने अपने काले घोड़े को नदी की कगारवाली चट्टान पर लिया । कुछ देर वहाँ खड़ा-खड़ा वह चारो ओर के प्रकृति-सौन्दर्य को देखता रहा । काक

को आश्चर्य भी हो रहा था और डर भी। वह जगदेव परमार, त्रिभुवनपाल, देवप्रसाद, रुद्रादित्य-जैसे क्षत्रिय-श्रेष्ठो की उज्ज्वल परम्परा का वाहक था। जयसिंहदेव महाराज की सभा के रत्नो का अन्तिम और जाज्वल्यमान मनका था। लेकिन काक नही जानता था कि उसके मन मे क्या है।

केशव देर तक प्रकृति-सौन्दर्य और नदी की शान्त धारा को देखता रहा। फिर उसके मन्द स्वर मे कहे हुए ये शब्द काक को सुनाई दिये . "महाराज के चले जाने के बाद मुझे पराजित होने का अधिकार भी तो नही रह गया। पर मैं पराजित हुआ। और पराजय के लिए मैं स्वय उत्तरदायी हूँ। युद्ध के नाम पर पाटन को छिन्न-भिन्न करनेवाली यह जो कपट चाल चली जा रही है इसके लिए मैं ही कारण हूं। ऐसे आदमी को जीने का अधिकार ही क्या? इसलिए चांदनी रात की हे स्वप्नसृष्टि, इस अभागे को भी अपना एक साथी बना लेना!"

काक कांप उठा। क्या केशव सच ही जल-समाधि लेने जा रहा है? इसके शब्दो का तो यही अर्थ निकलता है। क्या करे? उसे रोके, समझाए? लेकिन काक किसी निर्णय पर न पहुँच सका।

"कैसी सुन्दर चाँदनी खिली हुई है। प्रकृति मानो मुस्करा रही है। ऐसे समय जो मौत को गले नही लगा सकता उसे न जिन्दगी गले लगा सकती है और न उसकी कीर्ति। हे महाराज जयसिंहदेव, आपके साथ किसी महल मे बैठकर चौसर खेलने, आमोद-प्रमोद करने, किसी दुखियारे का दु ख बँटाने और पाटन के गली-कूचों की धूल मे घूमने-भटकने को मेरा मन बार-बार लालायित हो रहा है। पाटन, श्रीकलश, कर्णमेरुप्रासाद, रुद्रमहल, महाराज के युद्ध—कुछ भी तो नही भूलता और न कभी भूलेगा। हे नर्मदे!"

काक चिल्ला उठा "केशव सेनापतिजी!. मैं काक ." वह उछलकर ऊपर भी गया, लेकिन तब तक केशव का कृष्ण अश्व छलांग लगा चुका था। काक दिग्मूढ हो गया, मारे वेदना के उसने दोनो हाथो मे अपना मुँह छिपा लिया।

पानी मे किसी भारी चीज के गिरने का जोर का धमाका उसने सुना। वह झपटता हुआ कगार पर चढ गया। देखा तो पानी बांस-बांस ऊपर उछलकर हलकोरें ले रहा था। वह जोर से चिल्लाया : "सेनापतिजी! मैं काक आपके पांवो पडता हूँ। मेरी प्रार्थना मान लीजिए और उस पार किनारे लग जाइए।

सेनापतिजी, मैं वही ग्रा रहा हूँ ."

लेकिन थोडी दूर पर सिर्फ काले घोडे का सिर एक बार दिखाई दिया ग्रौर चाँदनी मे जगमगाती केशव की तलवार, जिसे वह एक हाथ मे ऊँचा उठाये हुए था। काक को लगा, मानो तलवार ने उसकी पुकार सुन ली है ग्रौर उससे विदा लेने ऊपर उठ ग्राई है। ग्रौर नर्मदा का पानी फिर बराबर हो गया ग्रौर धारा उसी क्षिप्र वेग से बहने लगी। पानी का विक्षोभ बहती धारा के उदर मे इस तरह समा गया था मानो कुछ हुग्रा ही न हो।

काक की ग्राँखो से ग्राँसू बह चले। वह देर तक हाथ जोड़े, सिर झुकाए उस दिशा की ग्रोर मुँह किये खडा रहा जहाँ नर्मदा का पानी गहरा ग्रौर धारा तेज़ थी ग्रौर जहाँ थोडी देर पहले धमाका हुग्रा था।

२९ : विक्रमसिंह द्वारा स्वागत-सत्कार

काक स्वय नही जानता कि वह नदी किनारे से ग्रपने स्थान तक कैसे पहुँचा। नर्मदा-तट पर उसने जो दृश्य देखा था वह बराबर उसकी ग्राँखो मे घूमता रहा। जिधर भी देखता उसे केशव का काला घोडा उछलकर पानी मे छलाँग लगाता दिखाई देता था। उसे विश्वास नही हो पाता था कि जो देखकर चला ग्रा रहा है वह स्वप्न था या सत्य। उसकी बुद्धि कुठति ग्रौर मस्तिष्क ग्रवसन्न हो गया था। ग्रायुध सामने ही खडा था, फिर भी उसने जोर से पुकारा .
"ग्रायुध !"

ग्रायुध हाथ बाँधे सामने ग्रा खडा हुग्रा ग्रौर बोला "स्वामिन्, क्या है ? मै तो यही खडा हूँ।"

"तूने किन्ही दो ग्रादमियो को यहाँ से जाते देखा है ?"

"जी ! ग्रापके ग्राने के थोडी ही देर पहले ग्राश्रम मे से दो घुडसवार गए हैं।"

"कौन थे वे और किधर गए ?"

"जिन तीन आदमियों का हम पीछा करते हुए यहाँ तक आए उन्ही मे से थे वे दोनो और शायद मालवा की ओर गए हैं।"

काक को समझते देर न लगी कि मल्हारभट्ट और त्रिलोचन ही थे और वे चले भी गए। उसने भी तुरत चल देने का फैसला किया। वैसे दिल तो उसका चाहता था कि एक बार फिर उस स्थान को देख आए जहाँ केशव ने जल-समाधि ली थी। केशव ने उसके दिल पर इतनी गहरी छाप डाली थी कि वह उसका भक्त बन गया था। अन्त समय तक उस वीर सेनापति को पाटन के गौरव की चिन्ता थी। और राजभक्ति की तो उसने मिसाल ही पेश कर दी थी। अपने आचरण से स्वामिभक्ति के पुरातन युग को ही उसने साकार कर दिया था। जयसिंह सिद्धराज के नरपुगवो की अन्तिम कडी आज विलीन हो गई थी। काक को ऐसा लग रहा था जैसे उसका कोई सगा-सम्बन्धी मर गया हो। दिल मे रह-रहकर हूक-सी उठती थी। क्या आदमी था और कितना ऊँचा था उसका आदर्श! काश वह उससे मिल सकता और उसे रोक पाता!

लेकिन अब चिन्ता करने से लाभ? समय ही उसके पास कहाँ था कि बैठकर सोचता-विचारता! यहाँ एक क्षण की भी देर वहाँ सर्वनाश का कारण बन सकती थी। उसने आयुध की ओर मुडकर कहा "आयुध, कही से एक तेज साँढनी का प्रबध करो। हमे तुरत चन्द्रावती पहुँचना है। मालवे का पूरा जनपद पार करके जितनी जल्दी हो सके चन्द्रावती पहुँच जाना है। बस, अभी ही चल पडो।"

"अभी?"

"हाँ-हाँ! अभी, इसी वक्त, एक क्षण की भी देर किये बिना, तुरत।"

आयुध गया और दो-चार ऊँटवालो को पकड लाया। एक के पास बढिया साँढनी मिल गई। मुँहमाँगे द्रम्म देकर उसे खरीद लिया और काक एव आयुध तुरत चल पड़े।

साँढनी की चाल काफी तेज थी। काक को लगा कि वह शीघ्र ही उन दोनो घुडसवारो को पकड लेगा। वह सोचने लगा कि त्रिलोचन से मुलाकात हो जाए तो उससे कुछ कहना ठीक रहेगा या उसकी बगल से निकल जाना उचित होगा।

लेकिन वह किसी निर्णय पर नही पहुँच पाया। अन्त में उसने यही फैसला किया कि अभी त्रिलोचन से मिलना उचित नही, बिना रुके चलते जाना चाहिए। वहाँ पहुँचकर भूमिका तैयार कर देना चाहिए, जिसमे त्रिलोचन के पहुँचते ही महाराज उसे अपनी सेवा में रख लें और उसकी शक्ति-सामर्थ्य का सदुपयोग किया जा सके।

केशव ने काक के मन में कई तरह के विचारो को जगा दिया था। रह-रहकर खयाल आते थे कि क्या महाराज कुमारपाल सिद्धराज महाराज की परम्पराओं का निर्वाह कर सकेंगे ? बरसो के अस्थिर और घुमक्कड़ जीवन ने उन्हें व्यवहार-कुशल तो जरूर बना दिया था और हर समस्या पर वे व्यावहारिक ढग से सोच-कर निर्णय कर सकते थे, लेकिन विद्यानुराग की उनमें कमी थी। और सिद्धराजी परम्परा का पालन करने के लिए विद्यानुराग और विद्वज्जन समागम बहुत आवश्यक था। इसके बिना पाटन की सस्कारिता और महत्ता को उभारा नहीं जा सकता था। लेकिन कैसे होगा ? अभी तो महाराज का सिंहासन ही स्थिर और स्थायी नही हो सका है। फिर भी करना तो होगा ही। और उसे गुरुवर्य हेमचन्द्रजी का खयाल आ गया। सब मुनियो में अकेले वे ही विद्या के सच्चे उपासक और विद्वान थे। बाकी सब तो ढकोसलेबाज और अपने-अपने सम्प्रदायो की स्थापना में लगे थे। पहुँचने के साथ ही वह उदयन मेहता से इस सम्बन्ध में चर्चाकर हेमचन्द्र को राजगुरु नियुक्त करवाएगा। पाटन मे शस्त्रो की झंकार के साथ ज्ञान-गिरा का अखण्ड प्रवाह भी चालू होना चाहिए। ये सब विचार उसे केशव को देखकर आ रहे थे। कितने ऊँचे दर्जे का आदमी था ! प्राण देकर भी उसने आत्मगौरव और पाटन की महानता की रक्षा की। उसकी राजभक्ति और देशभक्ति के किस्से आनेवाली तमाम पीढियो को प्रेरित और उत्साहित करते रहेंगे। धन्य है केशव !

इस तरह सोचता वह भागमभाग चन्द्रावती की ओर चला जा रहा था। उनका ऊँटवाला बडा ही होशियार आदमी था। रात ऐसी जगह मुकाम करता कि न तो यात्रियो को कष्ट होता और न कोई पूछ-ताछ करने आता। रास्ते मे त्रिलोचन और मल्हारभट्ट मिले। वे घोडो के बदले कोई तेज साँढनी पाने की फिक्र मे थे। काक उन्हें बाजू पर रखकर आगे बढ गया।

चन्द्रावती वह ठीक समय पर पहुँच गया। उसने भगवान को धन्यवाद दिया, क्योंकि महाराज कुमारपाल वहाँ अभी आए ही थे। यदि एक दिन की भी देर हो जाती तो सर्वनाश मे कोई कसर नही थी। चन्द्रावती के वाहर आनक की सैनिक तैयारियाँ जोरो पर थी। सवसे पहले उसे और उसके सैनिको को आतकित करना जरूरी थी। इसलिए काफी सख्या मे सोलकी सैनिक पहुँच गए थे और वहुत से चले भी आ रहे थे। चन्द्रावती के वाहर एक सैनिक नगर ही बस गया था।

काक विना दम लिये वढता रहा। देखने से लगता था मानो किसी उत्सव की तैयारी की जा रही हो। उसे याद आ गया कि विक्रम अपने नए स्फटिक महल का उद्घाटन महाराज कुमारपाल के हाथो करानेवाला है और जोर-शोर से उसी समारोह की तैयारियाँ हो रही है। वह सीधा उदयन मन्त्री के पास पहुँचा। पता चला कि मन्त्रीजी महाराज के पास गए हैं।

"कव लौटेंगे ?" काक ने पूछा।

तेजदेव मन्त्री-आवास के पहरे पर था। उसने वताया, अब तो रात देर मे ही लौटेंगे।

तभी अर्बुद शिखर पर दीये जल उठे। काक को केशव की कही हुई वात याद आ गई। उसने घवराकर पूछा "यह सब क्या है तेजदेव ? क्या यहाँ कोई उत्सव होने जा रहा है ?"

"अर्वुदराज ने अपने नये स्फटिक महल के उद्घाटन का समारोह आयोजित किया है। महाराज को ले जाने के लिए वे आते ही होंगे।"

काक ने तुरत साँढनी महाराज के शिविर की ओर मोड़ दी। समय इतना कम था और खतरा इतना वडा कि वह आराम करने के लिए नही रुका।

वह सीधे महाराज के शिविर पर पहुँचा। भगवान ने उसे ठीक समय पर पहुँचा दिया था। शिविर के द्वार पर महाराज का कलहपंचानन खडा था। पास ही उसे अर्वुदपति विक्रमसिंह का हाथी कैलाश भी खडा दिखाई दिया। उसने साँढनी को वैठने भी नही दिया। ऊपर से कूद पडा और महाराज से मिलने के लिए लपकता चला गया अन्दर।

वहाँ पहरे पर भीमसिंह था। उसने उसे रोक दिया. "नही जा सकते। अन्दर महाराज अर्वुदपति हैं और मन्त्रणा हो रही है।"

"सुनो भीमसिंह . " और काक ने उसके कान मे कुछ कहा ।

"अरे ! सच !" भीमसिंह आँखें फाड़े देखता ही रह गया।

काक कोई ऐसा उपाय चाहता था कि अर्बुदपति को पता न चले और वह महाराज से मिलकर उन्हें सारी बात बता दे । भीमसिंह ने तुरत रास्ता निकाला। वह उसे शिबिर के पिछले दरवाज़े से अन्दर ले गया ।

काक फौरन उस हिस्से के पासवाली जगह पहुँच गया जहाँ बैठे महाराज कुमारपाल, मन्त्रीश्वर उदयन और विक्रमसिंह चर्चा कर रहे थे । काक ने सुनने की कोशिश की तो पता चला कि आनक की लड़ाई के बारे में बातें हो रही थीं। सबसे अधिक ऊँचा और उत्साह-भरा स्वर विक्रमसिंह का था । काक के आश्चर्य का पार न रहा। उसने कान लगाकर सुना तो विक्रमसिंह कह रहा था : "महाराज, मेरी राय में तो आनक को आगे आने देना चाहिए । जब वह काफी बढ़ आएगा तो इस तरह चपेटूँगा कि भागना मुश्किल हो जाएगा । महोत्सव समाप्त होते ही कूच का शख बजवा दिया जाए। उसके बाद यहाँ एक क्षण भी रुकना ठीक नही ।"

"अच्छा, आपकी तैयारी के क्या हाल है ?" उदयन मत्री ने पूछा । विक्रम ने इसका जो जवाब दिया उसे सुनकर काक चकित रह गया ।

"महामत्रीजी, मै तो तैयार ही हूँ । निर्णय आपको करना है और आदेश भी आपको देना है । हम तो आपके बिना द्रम्म के दास हैं । जो हुक्म देंगे फौरन बजा लाएँगे । मैं तो यह दिखा देना चाहता हूँ कि मैं, मेरी सेना और मेरे समस्त साधन आपके ही हैं ।"

"इसमें तो कोई सन्देह नही और न यह कहना जरूरी है, विक्रमदेवजी, आप हमारे है और हम आपके हैं। पाटन हमेशा चन्द्रावती को अपना मानता आया है और हारे-गाढ़े में साथ रहा है। आपका साथ रहना हमारे लिए हजार हाथियो की मदद के बराबर है ।" उदयन ने विक्रम को साथ लेने की भूमिका बाँधी ।

"मैं सब तरह से तैयार हूँ प्रभो !" विक्रम बोला । उसकी वाणी इतनी मीठी और विश्वासोत्पादक थी कि कोई उसपर सन्देह कर ही नही सकता था । "बस आपके हुक्म देने की देर है। महाराज आज्ञा दें और यह दास बजा लाए । लेकिन एक बात विचारणीय है । यदि बल्लाल बढ़ आया तो लौटना होगा ।

ग्रौर उस समय आनकराज को मौका मिल जाएगा। वह ग्रौर आगे बढ आएगा। रणनीति की बात है। लेकिन आप पुराने सरदार ग्रौर अनुभवी महानुभाव हैं। ऐसे मामले मुझसे ज्यादा समझते हैं। जैसा ठीक लगे कीजिए। हम तो हुक्म के बन्दे हैं। फिर भी जो ठीक लगा निवेदन कर दिया। फैसला आपके हाथ है।"

बात विक्रम की सच थी; लेकिन मुख्य प्रश्न तो यह था कि क्या उस पर विश्वास किया जा सकता है!

महाराज कुमारपाल ने उसे टटोला "विक्रमदेवजी, यदि आप यहाँ रह गए तो वहाँ मोरचे पर हमारे साथ कौन रहेगा?"

"जैसी महाराज की आज्ञा। मैं तैयार हूँ। अब जाने की अनुमति दीजिए। वहाँ महल में महाराज की प्रतीक्षा करूँगा। यदि उत्सव वहाँ से लौटकर रखने का विचार हो तो वैसा किया जाए। जैसी प्रभु की मर्जी!" विक्रम ने उठने का उपक्रम किया।

"क्या पता, फिर इस रास्ते से लौटना हो, न भी हो। उत्सव स्थगित मत कीजिए।"

यह उत्तर उदयन का था। काक ने देखा कि मन्त्रीश्वर विक्रम के चेहरे की ग्रोर बहुत गौर से देख रहे थे। लेकिन वह एक ही घाघ था। उसने चेहरे पर कुछ भी प्रकट नहीं होने दिया—न अशान्ति, न आन्तरिक घबराहट ग्रौर न उतावलापन। सहज भाव से मुस्कराते हुए उसने नमस्कार किया ग्रौर विदा हो गया। उसकी पहेली अनबूझी ही रह गई। वह जितना रहस्यमय पहले था उतना ही बना रहा।

कुमारपाल ग्रौर मन्त्रीश्वर उदयन विचारमग्न हो गए। दोनों सोच रहे थे कि जो व्यक्ति इतना विनम्र, विवेकशील ग्रौर सहयोग के लिए तत्पर हो वह झूठा कैसे हो सकता है! विक्रम ने कुछ हद तक तो उनका मन जीत ही लिया था।

जैसे ही विक्रम गया, काक ने प्रवेश किया ग्रौर बोला "प्रभो, अपराध क्षमा किया जाए, पिछले दरवाजे से आया हूँ. ."

राजा ग्रौर मन्त्री दोनों ही चौंक पड़े। देखा तो सामने काक खड़ा था—धूल से सना हुआ ग्रौर लम्बी यात्रा से क्लान्त। बड़ी मुश्किल से वह अपने-आपको

खडा रख पा रहा था। कुमारपाल ने उसकी यह दशा देखकर कहा : "काकभट्ट, तुम कब आए ? हम तो आँखें विछाए तुम्हारे सन्देश की और तुम्हारे लौट आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। तुम थोडी देर विश्राम करो, तब तक हम एक काम निपटाकर आते हैं।"

महाराज कुमारपाल और मन्त्रीश्वर उदयन वहाँ से जाने का उपक्रम करते दिखाई दिये।

"आप जा कहाँ रहे हैं प्रभो ?" काक ने घबराकर पूछा।

उदयन को आश्चर्य हुआ। क्या काक राजकीय रीति-रिवाजो को इतना जल्दी भूल गया ? बोले "तुम्हें हो क्या गया है काक ? यह क्या पूछ रहे हो ?"

"महाराज नही जाएँ। बिलकुल न जाएँ। पूरी बात तो मैं बाद मे बताऊँगा, अभी इतना ही कि महाराज यहाँ से कही नही जाएँगे। सिर्फ यही कहने के लिए तो मै रात-दिन एक करके दौडा चला आ रहा हूँ। विक्रम के महल में जाना मृत्यु का ग्रास बनना है। स्फटिक महल के तलघर मे उसने आगघर बनवाया है। वहाँ महाराज के पाँव रखते ही आग लगा दी जाएगी। मत जाइए प्रभो, मत जाइए।"

"सच ?" राजा और मन्त्री दोनो ने चकित होकर एक साथ कहा "तुम्हें कैसे पता चला ? किसने बताया ? सच है या निरी गप ?"

लेकिन उत्तर देने के लिए काक खड़ा न रह सका। लम्बी यात्रा की थकान और इस समय की उत्तेजना ने उसे बेहोश कर दिया था। उदयन उसे थामने को लपका लेकिन वह उसके पहले ही गिर पडा।

तभी भीमसिंह अन्दर आया और उसने हाथ जोडकर निवेदन किया. "महाराज, अर्बुदपति के सामन्त व्याघ्रराज आए हैं। वहाँ महोत्सव मे महाराज की प्रतीक्षा की जा रही है। व्याघ्रराज महाराज को लिवाने आये हैं।"

कुमारपाल के कुछ कहने के पहले ही उदयन ने जवाब दे दिया "भीमसिहजी, महाराज को तो सहसा वमन होने लगे हैं। व्याघ्रराज से कह दीजिए और किसी को वैद्यराज को बुलाने के लिए दौडा दीजिए। और आप पता लगाइए कि अभी-अभी जो साँढनी आई है उस पर दूसरा कौन है ? उसे यहाँ ले आइए। व्याघ्र-राज से कह दीजिए कि महाराज तो न जा सकेंगे, लेकिन मन्त्रीश्वर पहुँच जाएँगे,

बस, हम चला ही चाहते हैं। महाराज का स्वास्थ्य सहसा खराव हो गया है। वैद्यराजजी को लाने के लिए फौरन पालकी भेजिए। सुना भीमसिंहजी !"

भीमसिंह ने सुन लिया था। उसने प्रणाम किया और वाहर चला गया।

३० : मन-की-मन में रही

आयुध को जल्दी ही उदयन के सामने पेश किया गया। लेकिन वह सिर्फ इतना ही वता सका कि रात-दिन एक करके चले आ रहे है। इससे अधिक उसे कुछ भी मालूम नही था। फिर थोडी देर वाद वैद्यराज आ गए। सव मिलकर काकभट्ट को होश में लाने के प्रयत्न करने लगे।

विक्रमदेव के महोत्सव में जाना भी आवश्यक था। कुछ देर वाद उदयन अकेला उधर चल दिया।

जव वह पहुँचा तो महोत्सव आरम्भ होने ही वाला था। योद्धा, सैनिक, सामन्त आदि सभी निमन्त्रित व्यक्ति मण्डप में आ गये थे और महाराज कुमारपाल की प्रतीक्षा कर रहे थे। विक्रमसिंह दरवाजे पर ही खडा था और वार-वार देख रहा था कि महाराज कुमारपाल आते दिखाई देते हैं या नही। जव उसने उदयन को अकेले आते देखा तो उसकी छाती वैठ गई, घवराया कि वात क्या है। तभी व्याघ्रराज ने आकर कहा "स्वामिन्! शिकार चौकन्ना हो गया। शायद उसे सन्देह हो गया है। हमें योजना वदलनी होगी।"

"वात क्या हुई ? आ तो रहा था।

"जी हाँ, आ तो रहा था, लेकिन किसी ने सावधान कर दिया। मैं गया तो वहाँ एक साँढनी खडी थी।"

"साँढनी सवार कौन है, कुछ पता चला ?"

"काकभट्ट नाम का कोई आदमी है।"

विक्रम समझ गया कि किसी ने ऐन वक्त पर कुमारपाल को सचेत कर दिया

और इसी लिए वह आया नही। अब तो सारी योजना ही बदलनी होगी। वह फौरन उदयन की अगवानी को आगे बढ गया और बोला "महामन्त्रीजी, यह महाराज को अचानक क्या हो गया ? व्याघ्रराज !" उसने पुकारकर कहा "महोत्सव बन्द करवा दीजिए। आयुर्वेदाचार्य को बुलवाइए। मन्त्रीजी, चलिए, महाराज के पास चला जाए।"

"विक्रमदेवजी ! राजरीति से आप अनभिज्ञ नही। क्या यह भी मुझी को बताना होगा कि इस समय हम महाराज की बीमारी को जरा भी महत्त्व नहीं दे सकते और न उसे जाहिर कर सकते हैं। इससे हमारी ही हानि होगी। उचित यही है कि महोत्सव को उसी धूम-धाम से सम्पन्न किया जाए। महाराज अकसर इसी तरह अचानक बीमार हो जाया करते हैं। कभी-कभी पेट में वायु का प्रकोप हो जाता है। ऐसा पहले भी कई बार हो चुका है।"

विक्रम समझ तो गया कि बनिया गप हाँक रहा है, लेकिन सिवा सुनते रहने के कर कुछ भी नही सकता था। अन्त मे बोला : "मारे चिन्ता के मेरे तो प्राण ही सूखे जा रहे हैं। जब तक महाराज को देख नही लेता मुझे चैन नही आएगा। कहिए तो अकेला हो आऊँ ?"

"फिर साथ ही चलेंगे विक्रमसिंहजी। अभी जाने से कोई लाभ नही। वैद्यजी ने नीद की दवा दी है और महाराज सो रहे हैं। तभी तो मैं आ सका। कुछ देर सो रहने से आराम मिलेगा। वह कहावत तो आपने सुनी ही होगी ."

"जो सोवत है सो खोवत है।" विक्रम ने कहा।

"नही" उदयन बोला : "कौन जाने जल्दी उठनेवाला फायदे मे रहता है या देर मे उठनेवाला ! अचानक रोग का दौरा पड गया। शायद यह भी फायदे की ही बात हो।"

अपना इत्मीनान करने का कोई रास्ता अब विक्रम के आगे रह नही गया था। उलटी आँते गले पड रही थी। महल के नीचे खदिर के कोयले जलाए जा चुके थे। योजना यह थी कि इधर नीलमणि नृत्य समाप्त करके दरवाज़े के बाहर हो और उधर आग लगा दी जाए। बर्बरक के अनुचर सारी तैयारियाँ किये आदेश की प्रतीक्षा मे नीचे बैठे थे। मण्डप मे नृत्य आरम्भ हो चुका था। नील-मणि ही नाच रही थी। उसका नृत्य समाप्त होते ही यदि महल जल उठा तो

षड्यन्त्र का सारा भेद खुल जाएगा। फिर तो वह कही मुँह दिखाने लायक नही रहेगा। विक्रम उद्विग्न हो गया। उसकी व्यग्रता क्रमशः बढती जा रही थी। उदयन सब-कुछ भाँप गया और मन-ही-मन मुस्कराने लगा छिपाओ, कहाँ तक छिपाते हो!

विक्रम ने इस तरह मुँह बनाया मानो महाराज के न आने से उसका सारा उत्साह मर गया हो। अब उदयन ने उसे उजाले मे जरा गौर से देखा। कद उसका नाटा, शरीर मोटा और भारी-भरकम था। 'नाक मोटी, चपटी और किसी हिंस्र पशु-जैसी लगती थी। आँखे छोटी, कुछ तिरछी एव निगाहे तेज़ थी। उसे देखकर एक धूर्त, प्रवचक और विश्वासघाती की छाप मन पर पडती थी। उदयन ने उसे दो-तीन बार सिर से पाँव तक देखा तो वह व्यग्र हो उठा। मन्त्री की निगाहो का वन्धन उसे हजार योद्धाओ के वन्धन से भी कठोर और असुविधा-जनक लगा। उदयन को सामुद्रिक का वह वाक्य याद आ गया जिसमे कहा गया है कि साठ इच कदवाला, भारी-भरकम, मोटी नाक, तिरछी आँखो और तेज निगाहोवाला आदमी वहुत भयकर होता है। उदयन ने विक्रम की व्यग्रता से लाभ उठाने के विचार से कहा · "विक्रमदेवजी, आपके यहाँ जगल में आग लग जाने पर तो वडी मुसीवत हो जाती होगी!"

विक्रम का वस चलता तो उसी समय उदयन की गरदन मरोड़कर रख देता। इस कम्वख्त वनिये को किसी तरह हमारा भेद मिल गया है। लेकिन वह था वडा घुटा हुआ। "राम वचाए, मन्त्रीजी!" कहकर छुट्टी पा ली और इशारे से व्याघ्रराज को अपने पास वुलाकर वोला . "व्याघ्रराजजी! महाराज वीमार हो गए, इसलिए मेरा मन इस उत्सव में लग नही रहा। वन्द करवा दीजिए यह सव। महाराज वीमार हो तो राग-रग अच्छा नही लगता। लेकिन एकदम रोकना भी अच्छा नही। नाच हो लेने दीजिए। इस वीच अनुचरो को भेजकर दीये एक-एक कर वुझवाते जाइए। और देखिए, हमारे भोजन की व्यवस्था भी करवा दीजिए। मन्त्रीश्वर उधर ही आ रहे है। क्यो प्रभो, चलेंगे न?" उसने उदयन की ओर देखते हुए कहा।

"जरूर चलेंगे। इस वार तो नीलमणि का नृत्य देखना रह ही गया। मौके-झोके की वात है। खैर, दुवारा वुलवा लीजिएगा।"

विक्रम मन-ही-मन काँप उठा। मेरा बेटा बनिया मौके-झोके की बात कह रहा है। क्या इसे सब-कुछ मालूम हो गया है ? उसने उदयन के सन्देह को निर्मूल करने के लिए व्याघ्रराज को फिर अपने पास बुलाया और कहा "हाँ, जसबीरजी से कह दीजिएगा कि सवेरे महाराज की सेना कूच करेगी। क्यो मन्त्रीश्वर ?"

"जी हाँ।" उदयन ने बडी शान्ति के साथ जवाब दिया "कूच करना अनिवार्य हो गया है, क्योकि समाचार मिले है कि आनक बढता चला आ रहा है।"

"ठीक है। आप जसबीरजी से कह दीजिए कि सवेरे जब महाराज की सेना-प्रस्थान करे तो साथ-साथ हमारी सेना भी कूच बोल दे। अभी इस आशय की घोषणा करवा दी जाए। हम स्वय सेना के साथ जाएँगे और लडाई मे हिस्सा लेगे।"

अपने विचार में उसने सारे सन्देहो का निवारण कर दिया था।

"वाह, विक्रमदेवजी, वाह ! सामन्त हो तो आपके-जैसा। कितना उत्तम और तुरत फैसला किया है आपने। ऐसे ही सामन्त तो गुजरात के साम्राज्य की शोभा है। कितना जल्दी, स्पष्ट और उचित निर्णय किया है आपने। और कोई होता तो सोच-विचार मे ही पडा रहता। इसे कहते हैं राजनीति।"

उदयन का अन्तिम वाक्य विक्रम की छाती के आर-पार निकल गया। लेकिन वह जब्त कर गया और केवल हाथ जोडे सिर नवाये खडा रहा।

फिर दोनो वहाँ से भोजनगृह की ओर चल दिये। रास्ते मे उदयन ने कहा "महाराज, कही से आग बुझाने की गन्ध आ रही है। क्या किसी जगल मे आग तो नही लग गई ?"

विक्रम मारे गुस्से के आगबबूला हो गया। लेकिन वह जब्त करना और समयानुसार आचरण करना भी खूब जानता था। बोला : "जगली इलाका है मन्त्रीजी, आग का लगना और बुझाया जाना हमारे यहाँ रोज की साधारण बात है।"

"अ च्छा. ."

तभी सेना के लिए की जा रही घोषणा सुनाई दी . "सवेरे महाराज कुमार-पाल के साथ अर्बुदपति विक्रमदेवजी भी कूच करेंगे। सब सैनिक तैयार होकर आ जाएँ। सब सुनें !"

"आपके सब काम तुरत-फुरत होते है। व्याघ्रराजजी ने घोषणा भी करवा दी। महाराज आज कह ही रहे थे कि विक्रमदेवजी की सैनिक व्यवस्था और काम करने की पद्धति बहुत उत्तम हैं।"

"यह महाराज की महानता है कि छोटो का भी इतना सम्मान करते हैं। वैसे छोटा तो जरूर हूँ, पर सिर पर महाराज का हाथ रहा तो इस युद्ध मे बड़े काम कर दिखाने का हौसला भी जरूर रखता हूँ।"

इसके बाद दोनो चुप, अपने-अपने विचारो मे खोये हुए चलते रहे।

विक्रम सोच रहा था—इस बार तो बच गया। लौटानी मे कोई दूसरा ही तरीका आजमाना पडेगा।

उदयन सोच रहा था—परमार धारावर्षदेव को बुलवा ही लेना चाहिए। इसे वही पदच्युत कर देना होगा। आबू लौटने ही क्यो दिया जाए!

३१ : युद्ध का सन्देश

गुजरात की सेना तेजी से शाकभरी की ओर बढती चली जा रही थी। सोमेश्वर को पारकर अरावली पर्वत-माला को दाहिने हाथ पर छोडती हुई गुर्जर-सेना आगे बढती चली गई और लवणवती (लूनी) की एक छोटी सहायक नदी के किनारे पहुँचकर पडाव डाल दिया। इस नदी का नाम था पर्णाशा और यहाँ से वह दो धाराओ मे विभक्त होकर बहती थी। सेना का हरावल कुछ थक गया था और पिछला भाग, जिसमे अधिकाश हाथी थे, अभी पहुँचा नही था, इसलिए पड़ाव डालने का हुक्म दिया गया। बाकी सेना आ मिले और पदाति, अश्वारोही और गजदल विश्राम कर ले उसके बाद आगे बढने का निर्णय किया गया। नदी के दोनो किनारो पर पडाव डालने का हुक्म यही सोचकर दिया गया कि शत्रु के चर नदी से लाभ न उठा सकें। यहाँ से शाकभरी की सीमा अधिक दूर नही थी, सिर्फ एक दिन की मजिल के फासले पर रह गई थी। सुरक्षा की दृष्टि से

सेना के पिछाये मे वाग्भट्ट, हरावल मे उदयन और वाजू पर काकभट्ट को रखा गया था। महाराज वीच मे थे और विक्रम, केल्हण, कच्छ का राव, गोध्रकराज आदि सामन्त उनके चारो ओर पडे हुए थे। शाकभरी के समाचार प्राप्त करने के लिए गुप्तचरो को भेज दिया गया था।

एक दिन शाम को, दिन छिपते-छिपते यह खवर मिली कि शाकंभरी की सेना वढी चली आ रही है। तुरत युद्ध-घोषणा करवा दी गई। शखनाद के द्वारा कूच के समय की जानकारी सैनिको को दी गई। सवेरे मुंह-अंधेरे ही सेना डेरे-तम्वू समेटकर आगे वढ जाएगी। रास्ते मे काफी वडा और घना जगल था, जो शाकभरी की नैसर्गिक रूप से रक्षा करता था। इस जगल मे करील, पीलू, ववूल, वेर, शमी, थूहर आदि की वहुतायत थी और विस्तार कोई योजन-भर का होगा। आधीरात को वहुत-से सैनिको को कुल्हाडे देकर जगल साफ करने और रास्ता वनाने के लिए भेज दिया गया।

पता चला कि शाकभरी की सेना की कमान त्यागभट्ट के हाथ मे है। इस समाचार ने सोलकी-सैनिको के उत्साह को वहुत वढा दिया। लेकिन उदयन, वाग्भट्ट, काकभट्ट, सोमेश्वर, धारावर्षदेव, भीमसिह, सज्जन आदि सेनापतियो के मन मे खुटका होने लगा। सैनिको मे उन्हें खुसर-फुसर, टीका-टिप्पणी, व्यग्य और दिल्लगी आदि सुनाई देने लगी। नडूल के युवराज केल्हण के साथ के चौहानो मे विरक्ति और लापरवाही के भाव साफ दिखाई दे रहे थे।

कुमारपाल भी अपेक्षाकृत गम्भीर हो गए थे। पाटन से इतनी दूर इस घने-कटीले जंगल के सामने सेना को तो उन्होने ला खडा किया था, लेकिन अव सैनिको के असन्तोष की चिन्ता होने लगी थी। विक्रमसिह साथ था लेकिन उसपर भरोसा किया नही जा सकता था। उसकी सेना मे व्याघ्रराज सर्वेसर्वा था, जिसके वारे मे गोविन्दराज ने सूचना दी कि उसे आनकराज ने कुमारपाल का वध करने के ही लिए विक्रम की सेना मे नियुक्त किया था।

महाराज सतर्क हो गए। लेकिन केवल सतर्क हो जाने से तो कोई वात वनती नही थी। वे निर्णय नही कर पा रहे थे कि क्या करना उचित है। सव-कुछ जानते हुए अनजान वने रहना खतरे को न्यौता देना था। चुप रहने से मामला और विकट हो जाता। विरोधियो को दण्ड दिया नही जा सकता था। न निगलते

बने और न उगलते बने की स्थिति थी। सैनिकों का असन्तोष, अविश्वास और विरोध बढ़ता ही जाता था। अन्त में महाराज ने अपने-आपको दाव पर लगाने का फैसला किया। जोखिम तो इसमें कम नहीं था, पर उपाय भी दूसरा कोई नहीं था। या तो तरेंगे और सबको तार देंगे या डूब जाएँगे।

यह निर्णय करके महाराज ने चौलिग के हाथ के नीचे काम करनेवाले महावत श्यामल को बुलवाया। सबसे पहले कलहपचानन को बचाना और उसे अपने नियन्त्रण में रखना आवश्यक था। यदि हाथी और महावत ने गड़बड़ नहीं की तो अकेले हाथी भी लड़ाई जीती जा सकती थी। यदि हाथी और महावत प्रतिकूल हो गए तो पराजय निश्चित थी। और हाथी को अनुकूल बनाये रखने के लिए अपने पर श्रद्धा-भक्ति रखनेवाला महावत पहली शर्त थी।

रात होते ही श्यामल आया। वह लम्बे कद का काला, तेजस्वी और हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति था। उसकी आँखों में निश्छलता और स्नेह-श्रद्धा का सरोवर लहराता था।

महाराज कुमारपाल ने सीधा सवाल किया : "श्यामल, तू, कलहपचानन और मैं जीना हो तो साथ जियें और मरना हो तो साथ मरें, क्या यह तुझे स्वीकार है? जो भी जवाब देना हो भगवान सोमनाथ को उपस्थित जानकर सच-सच कहना।"

"प्रभो! कलहपचानन पूरी तरह चौलिग के वस में है और उसके रहते किसी को अपनी पीठ पर हाथ भी न रखने देगा, यह आप निश्चित जानिए।"

कुमारपाल विचारमग्न हो गए। चौलिग को अपने काम से हटाना तो था, लेकिन वे यह बात श्यामल को बताना नहीं चाहते थे। बोले : "श्यामल, कलहपचानन स्वामिभक्त है और चौलिग के वस में भी। इस बात को हम भी जानते हैं। लेकिन क्या वह तेरे से भी परचा हुआ है?"

"जी, परचा हुआ तो जरूर है। चौलिग के न रहने पर मैं उसे अपनी मर्जी के माफिक चला सकता हूँ।"

"सच कह रहे हो!"

"जी, बिलकुल।"

"अच्छा, अभी तो तुम यह ले जाओ..." कुमारपाल ने उसे एक रत्न देने

हुए कहा "और कलहपचानन को अधिकाधिक अपने अनुकूल करने का प्रयत्न करते रहो। लगे रहे तो सफलता मिलेगी ही। और देखो, हम जब जैसा कहें वजा लाने के लिए तैयार रहना। इस बात को यही भूल जाना। किसी को कानोकान भी मालूम नही होना चाहिए। बात फूटी तो तुम मुसीबत मे पड जाओगे। अच्छा जाओ, और बाहर शाकभरी का जो सन्देशवाहक आया है उसे भेजते जाओ।"

श्यामल ने प्रणाम किया और बाहर चला गया। थोड़ी देर बाद एक काला-कलूटा लम्ब-तडग आदमी अन्दर आया। वह अपने एक हाथ में लम्बी तलवार और दूसरे हाथ में बडी-सी लाठी लिये हुए था। लाठीवाले हाथ को ऊँचा उठाकर उसने महाराज कुमारपाल को नमस्कार किया।

"क्या है ? कहाँ से आये हो ?"

"शाकभरी से।"

"क्या खबर है उस जाट की ? कुछ कहलवाया है ?"

उसने हाथ फैलाकर एक वस्त्रलेख दिया।

"यह लो महाराज...और जवाब भी माँगा है।"

"यह क्या है ?"

और महाराज ने ताली बजाई। भीमसिंह दौडा आया। उससे कहा "वाग्भट्ट को बुलाओ।"

थोडी देर में वाग्भट्ट आ गया।

महाराज ने कहा : "पढो।"

वाग्भट्ट ने पढा

"रे रे सर्प विमुच दर्पमसमं किं स्फारफूत्कारतो
विश्वं भीषयते क्वचित् कुरु विले स्थानं चिर नंदितुम्।
नो चेत्प्रौढगरुत्स्फुरत्तरमरुद्व्याधूतपृथ्वीधर—
स्ताक्ष्यों भक्षयितु समेति झगिति त्वामेष विद्वेषवान्।"

[हे सर्प, गर्व छोड दे। शान्ति चाहता हो तो अपनी फूत्कारें बन्द करके बिल में समा जा। नही तो भयकर गरुड़राज तेरा काल बनकर तेजी से चला आ रहा है, इतनी बात समझ ले।]

३२ : नये-नये रंग

युद्ध के सन्देश ने चौलुक्य शिविर मे एक नई हवा बहा दी। वहाँ नित नये रग दिखाई देने लगे। कुमारपाल को अपने बल पर भरोसा था। सैनिको और सामन्तो मे कृष्णदेव के वध के कारण विरोध की भावना थी, जो कपास की आग की तरह अन्दर-ही-अन्दर बढ रही थी। कुमारपाल की शक्ति के कारण वह विरोध दबा हुआ था। जैसे ही यह पता चला कि अर्णोराज की सेना दूर नही है विरोधी तत्वो ने शत्रु से गुप्त मंत्रणा करना आरम्भ कर दिया। रात मे दोनो सेनाओ मे गुप्तचर साँढनी-सवारो का आवागमन बढ गया। गोविन्दराज ने उधर से समाचार भेजे कि महाराज को बहुत सतर्क रहना चाहिए। उसने यह भी कहलवाया कि लड़ाई में वह अपना करतब दिखलाएगा। कुमारपाल से यह बात छिपी हुई नही थी कि असन्तोष की आग उनके चारो ओर जल रही है। लेकिन इससे उनके उत्साह में किसी तरह की खामी नहीआई। सकट को सामने देख उनका उत्साह सौ गुना बढ़ गया। वे रात-दिन शत्रु को हराने की नई-नई योजनाएँ बनाने लगे। उनका रणोत्साह इतना बढ गया कि अकेले हाथो सारी शत्रु सेना को परास्त करने के मनसूबे किया करते। देर उन्हें असह्य होती जा रही थी। चाहते थे कि जल्दी-से-जल्दी लोहा बजने लगे और किस्सा खत्म हो।

इसी बीच ये समाचार भी मिले कि अर्णोराज का हाथी देवमगल इस लडाई में हिस्सा लेगा और सारी सेना उसकी रक्षा करेगी। इस हाथी की वीरता के कई किस्से प्रचलित थे। साँभरवासियो की तो यह मान्यता थी कि जिस लडाई में देवमगल उतरता है उसमे अर्णोराज की सदैव जीत होती है। यह भी पता चला कि इस बार कुमारतिलक त्यागभट्ट उस हाथी का सचालन करेगा और आनक उस परहौदे में सवार अपनी सेना का सेनापतित्व। इस तरह के समाचार हरक्षण सोलकी शिविर में आने लगे। [illegible] यहाँ तक कहनेवाले निकल आए कि उन्होने आनकराजकी सेना [illegible] जाना और हाथियो का चिघाडना

सोलकी सेना में सनसनी फैल गई। जो असन्तोष अभी तक दबा-मुंदा पड़ा था वह ऊपर आने लगा। कुमारपाल सारी स्थिति को चुपचाप देख रहे थे। उदयन मेहता ऐसा आचरण कर रहे थे मानो कुछ जानते ही नही। सामन्तो में अभी किसी ने विरोध या विद्रोह का झण्डा बुलन्द किया नही था। मेहता सोचते कि अभी तो विक्रम की तरह सब शान्त हैं और साथ देने का दिखावा कर रहे हैं; इनका उपयोग इस लडाई को जीतने में कर लिया जाए, बाद में हर एक को अलग-अलग पीट-पाटकर खत्म कर देंगे। अभी से भविष्य की चिन्ता क्यो की जाए?

एक दिन कुमारपाल ने वाग्भट्ट को बुलवाया और उससे कहा "वाग्भट्ट, अब हमें अर्णोराज के सन्देश का प्रत्युत्तर भेज देना चाहिए। फौरन जवाब तैयार करो। हम भीमसिंह को हमारा जवाब लेकर अर्णोराज के पास भेजेंगे।"

थोडी देर में वाग्भट्ट वस्त्रलेख तैयार करके ले आया। लिखा था

"अये भेक! चछेको भव भवतु ते कूपकुहरं
शरण्यं दुर्मत्तः किमु रटसि वाचाट! कटुकम्।
पुरः सर्पो दर्पी विषमविषफूत्कारवदनो
ललज्जिह्वो धावत्पहहह भक्तो जिग्रसिषया ॥

अरे मेढक! टर्राता क्यो है? किसी अन्धेरे कुएँ के छेद में अपने छिपने की जगह ढूँढ ले। विष-ज्वाला फैलाता भयंकर सर्पराज फुफकारता हुआ तुझे लीलने के लिए चला आ रहा है।]

तभी बाहर कुछ कोलाहल सुनाई दिया। महाराज पढते-पढते रुक गए और वाग्भट्ट से बोले "वाग्भट्ट, यह कोलाहल कैसा सुनाई दे रहा है?"

महाराज की बात पूरी भी नही हो पाई थी कि भीमसिंह श्यामल महावत, दो-एक सैनिक और एक विचित्र-से आदमी को लेकर अन्दर आया। वाग्भट्ट जाने का उपक्रम करता दिखाई दिया, परन्तु महाराज ने उसे रोक लिया।

"कोई नई बात हुई है शायद। वाग्भट्ट, जरा तुम भी सुनते जाओ। हाँ भीमसिंह, क्या बात है? और यह कौन है? क्यो श्यामल, यह किसे ले आए हो?" महाराज ने पूछा।

श्यामल ने हाथ जोडकर कहा "महाराज, कोई गुप्तचर मालूम पडता है।

कल रात से वेश बदले कलहपचानन के आस-पास मँडरा रहा था। कुछ मालूम करना चाहता है, लेकिन बताता नहीं। कौन है, यह भी पता नहीं चला। चौलिग ने कहा कि इसे महाराज के पास ले जाओ, तो हम ले आए महाराज।"

कुमारपाल ने उसे ध्यान से देखा तो चेहरा कुछ पहचाना-सा लगा। सहसा महाराज के नेत्र विस्फारित हो उठे। बोले: "भीमसिंह, जरा काकभट्ट को बुलवाओ। यह तो कोई बड़ा धूर्त मालूम पड़ता है। इसे काक के हवाले कर देना ठीक रहेगा। श्यामल, तुम जा सकते हो। अब यह चौकी-पहरे में है। तुमने अपना काम किया। भीमसिंह, तुम भी जाओ। काक के आने तक इसे अपने कब्जे में रखना। थोड़ी देर बाहर रुके रहना। अच्छा, जाओ।"

सब बाहर चले गए। कुमारपाल ने वाग्भट्ट के चेहरे की ओर देखा। वह आश्चर्यचकित महाराज के पास खिसक आया और बोला. "महाराज, मुझे तो त्रिलोचन का सन्देह होता है।"

"हमें भी यही सन्देह है। इसी लिए तो हमने श्यामल को जाने के लिए कहा। काकभट्ट के आने पर ही सही बात का पता चलेगा। उन्होंने शायद कहा भी था कि त्रिलोचन इधर ही आ रहा है। लेकिन इससे तो यही लगता है कि त्यागभट्ट को हमारे बारे में सब-कुछ मालूम है। वैसे काक ने त्रिलोचन के बारे में कुछ दूसरी ही बात बताई थी।"

"क्या?"

"वह हमें एक महत्त्वपूर्ण बात बतलाने के लिए आनेवाला था।"

"इस समय किसका सन्देश सच है और किसका झूठ, कौन कितना महत्त्वपूर्ण है या नहीं, इन बातों का ठीक-ठीक पता लगा पाना मुश्किल ही है। गोविन्दराज भी सवादों पर सवाद भेज रहे हैं, लेकिन कितने सच और कितने झूठ हैं क्या पता! सही बात का पता तो लड़ाई के मैदान में ही चलेगा।"

"ठीक कहा वाग्भट्ट, तुमने। अब हमें रास्ता देखने के बदले फौरन भिड़ जाना चाहिए। पहले वार करने और सतर्कता बरतनेवाला ही जीतता है। हमें इन दोनों बातों पर ध्यान रखना चाहिए। और अब फौरन आगे बढ़ जाना चाहिए। रुके रहे तो पिट जाएँगे। काकभट्ट आ गए तो फैसला कर लिया जाए और त्रिलोचन के बारे में भी निपटारा हो जाए।"

थोडी ही देर मे काक आ पहुँचा । उदयन मेहता भी उसके साथ थे । जैसे ही यह पता चला कि शाकभरी का कोई चर महाराज के शिविर के पास पकड़ा गया वे दौड पड़े थे । लेकिन यह तो कोई और ही निकला । थोडी देर सलाह-मशविरा करने के बाद त्रिलोचन को बुलवाया गया । वह अकेला अन्दर आया । डाढी बढ गई थी । कपडे फट गए थे । बालो की लटें उलझ गई थीं । चेहरे पर चोट के निशान और घाव थे । लगता था कि किसी ने उसे बहुत सताया है । काक की समझ मे नही आ रहा था कि इने चन्द्रावती पहुँचने में इतना अधिक समय कहाँ और कैसे लग गया ! अन्दर आकर सिर झुकाए वह चुप खडा हो गया । आशकित हो रहा था कि ऐमी दिशा मे मेरी बात को यहाँ शायद ही कोई सच माने ! और अगर न मानी तो मनाने के लिए क्या करना होगा, यह उनको समझ मे नही आ रहा था । मल्हारभट्ट उसके साथ नही था । कब और कहाँ से जुदा हो गया, काक इस बात को भी जानना चाहता था ।

काक ने बहुत शान्ति से बातचीत शुरू करते हुए जब उसे 'त्रिलोचनपालजी !' कहकर सम्बोधित किया तो वह चौंक पडा । इस विचार से कि मैं पहचाना गया वह और भी घबरा उठा ।

काक ने उसे आश्वासन दिया "त्रिलोचनपालजी, घबराइए मत । आप केशव सेनापति के साथ थे, यह हमें मालूम है । महाराज ने आपकी पाटन-भक्ति के बारे मे सुना और प्रसन्न हुए । अब यह बताइए कि आप कलहपचानन के पास क्यों मँडरा रहे थे ? कुछ बुरा करने का विचार तो नही था आपका ? आप पाटन के दुर्गपति रह चुके हैं और हम जानते हैं कि पाटन का दुर्गपति कम-से-कम विश्वासघात तो नही ही करेगा । क्या श्यामल का कहना सच है ? अब आप महाराज के सामने हैं और जो भी कहना हो निश्चिन्त होकर कह सकते हैं । आपकी यह हालत कैसे हुई ? किसने की—कब और कहाँ !"

"मालवे में ।" त्रिलोचनपाल ने हाथ जोडकर कहा : "वहाँवालो ने मुझे और मल्हारभट्ट को गुप्तचर समझकर पकड लिया और जी भरकर सता चुके तब छोड़ा । मैं महाराज से मिलने के लिए चन्द्रावती आ रहा था ।"

"इतना तो मुझे भी मालूम है ।" काक ने कहा ।

त्रिलोचन ने अविश्वास के भाव से उसकी ओर देखा तो काक ने आगे कहा

"त्रिलोचनपालजी, आप महाराज को सारी बात विस्तार से बताइए। हम इस समय रणभूमि में हैं, जहाँ हर व्यक्ति और हर बात पर सन्देह किया जाना स्वाभाविक है। फिर हमारे पास समय भी नहीं है। सवेरे रणभेरी बजेगी और सोलकी सेना कूच बोल देगी। इसलिए आपको जो भी कुछ कहना हो फौरन, सच-सच और विस्तार में कह जाइए।"

त्रिलोचनपाल ने एक बार चारों ओर देख लिया।

महाराज बोले . "यहाँ सब अपने ही लोग है, त्रिलोचन! और काकभट्ट ने हमें तुम्हारे बारे में बताया भी है।"

त्रिलोचन कुछ आश्वस्त हुआ और हाथ जोड़कर बोला : "महाराज, चन्द्रावती जल्दी न पहुँच पाने का कारण तो मैं बता ही चुका हूँ। चन्द्रावती आने का कारण, जैसा कि काकभट्ट ने आपको बताया है, सेनापति केशव का सन्देश आप तक पहुँचाना था।

"काक ने हमें बताया। केशव सेनापति वीर-शिरोमणि थे। पाटन-भक्त पट्टनी के रूप में उनका नाम हमेशा आदर से लिया जाता रहेगा। इसके सिवा तुम्हें और कुछ मालूम हो तो बताओ।" कुमारपाल ने उसे प्रेरित करनेवाले स्वर में पूछा।

त्रिलोचन पूरी तरह आश्वस्त हो गया और बोला "प्रभो, लडाई मे अगर चौलिग ने कलहपचानन को हकारा. ." वह कहता-कहता रुक गया और डरी निगाहो से चारो ओर देखने लगा। महाराज कुमारपाल समझ गए। त्रिलोचन अपने वातावरण के प्रभाव से मुक्त नही हो पा रहा था। निराश्रित, निरुद्देश्य ठोकरे खाने से आदमी की जो मन स्थिति हो जाती है कुमारपाल उसके भुक्त-भोगी थे। उदयन आदि उसके विरोधी हैं, यह विचार त्रिलोचन के मन मे इस तरह ठँस गया था कि निकाले नही निकल पा रहा था।

कुमारपाल ने चारों ओर देखकर कहा "वाग्भट्टजी, मन्त्रीश्वर!"

सब लोग प्रणाम करके तुरत बाहर चले गए। वे महाराज का सकेत समझ गए थे, इसलिए अपनी-अपनी कुटियो मे जाने के बदले महाराज के शिविर-द्वार पर ही रुके रहे, अब अन्दर केवल महाराज और त्रिलोचन ही रह गए थे।

महाराज ने आश्वासन-भरे स्वर मे कहा · "हाँ त्रिलोचनपालजी, अब कहिए।"

त्रिलोचन ने कहना शुरू किया। काफी देर तक वह सुनाता रहा। तभी सहसा कुमारपाल दहाड उठे। जिन्होने भी सुना उनके कलेजे मुँह को आ गए। महाराज तार स्वर मे पुकार रहे थे . "भीमसिंह !"

भीमसिंह फौरन अन्दर दौडा गया। वाकी लोग समझे, त्रिलोचन ने विश्वासघात किया है। वे सव भी भीमसिंह के पीछे भागे। काक का मुँह ज़रा-सा निकल आया।

महाराज गरज रहे थे . "वुलाओ श्यामल महावत को। यह आदमी झूठा और दगावाज है। इसे वन्दी वना लो। भागने न पाए। और चौलिग को वुलाओ। वह कहाँ है ? उसने इनाम पाने का काम किया है। उसके सामने और उसी की निगरानी मे इस धोखेवाज को पेड से वँधवा दिया जाए। इतना मजवूती से वाँधो कि भागने न पाए। हमारे विश्वासपात्र लोगो की निन्दा करता है। लोगो मे फूट डालना और भेद-वुद्धि उपजाना चाहता है। ले जाकर वाँध दो इसे।"

किसी की समझ मे नही आया कि सहसा यह क्या वात हो गई ?

त्रिलोचन को सैनिक वहाँ से ले गए। भीमसिंह उसके साथ गया। अव महाराज के पास काकभट्ट, उदयन और वाग्भट्ट रह गए थे। काक एकदम महाराज के पाँवो से लिपट गया। उसने सोचा, गलती मेरी ही है। मैंने ही महाराज को त्रिलोचन पर विश्वास करने के लिए कहा था। यह तो अच्छा हुआ कि महाराज ने समझदारी से काम लिया और धोखे से वच गए, नही तो जाने क्या अनर्थ हो जाता।

परन्तु कुमारपाल ने फौरन उसका हाथ पकड लिया और वोले "यह नाटक अव रहने दो काकभट्ट। अभी इससे भी वडा नाटक खेलना है। चौलिग के वारे मे इसने भी यही कहा जो तुमने वताया था।"

"फिर उसे वँधवाया क्यो प्रभो ?"

कुमारपाल ने उदयन की ओर देखकर कहा · "ज़रा आप सारी वात भट्टराज को समझा दीजिए। केशव सेनापति के वलिदान से ये अभिभूत हो गए हैं। वात है भी अभिभूत होने की। लेकिन हम दुश्मन के मोरचे से सिर्फ एक योजन की दूरी पर पडे है। कल सवेरे भिडन्त होगी। आज त्रिलोचन हमसे मिलने

के लिए आया, यह समाचार शत्रुपक्ष को मालूम हो गया तो त्यागभट्ट रातोरात अपनी योजना वदल देगा। काकभट्ट, हमे कोई काम ऐसा नही करना चाहिए जिससे कुमारतिलक चौकन्ना हो जाए और अपनी योजना को बदले। अन्त तक उसे यही खयाल वना रहना चाहिए कि कलहपचानन को चौलिग ही हँकारेगा। उसका विचार द्वन्द्व-युद्ध मे हमे परास्त करने का है और इसके लिए वह चौलिग पर निर्भर करता है। पहले से उन लोगो ने यह योजना वना ली है। त्रिलोचन ने हमे यही वताया है।"

"अच्छा, तो यह वात थी!" उदयन ने चकित होकर कहा। कुमारपाल की समय-सूचकता और विपरीत सयोगो मे भी अपना इच्छित काम वना लेने की क्षमता ने उसे बहुत चकित कर दिया था।

"चौलिग को भी, मेहताजी, अँधेरे मे रखना होगा। अन्त तक उसे पता नही चलना चाहिए। करना यह होगा कि लडाई के मैदान मे वह कलहपचानन पर न रहे; उसके वदले महावत का काम श्यामल करेगा। लेकिन तव तक उसे अँधेरे मे रखा जाए। वात की भनक भी उसे नही पडनी चाहिए। हम त्यागभट्ट को उसकी योजना वदलने का मौका नही देंगे। हम भी अपनी ओर से उन दोनो को द्वन्द्व-युद्ध का निमत्रण देगे। प्रत्युत्तर के साथ हमारी यह रण-प्रतिज्ञा भी उन्हें भेज दी जाए।" कुमारपाल वडे उत्साह और आत्म-श्रद्धा से वोल रहे थे। उनके स्वर मे असमजस, सन्देह या घवराहट नाम को भी नही थी। वाग्भट्ट और उदयन ने महाराज में इतना उत्साह और ऐसा आत्मविश्वास पहले कभी नही देखा था।

"यदि त्रिलोचन को अभी दण्ड न देते और पुरस्कृत करते या यो ही छोड देते तो जानते हो काकभट्ट, उसका क्या परिणाम होता?" काक वेचारा चुप रह गया। कुमारपाल ने आगे कहा: "उसने और भी समाचार दिये हैं। मालवा से आ रहा है, इसलिए सच होने चाहिए।" तभी वाहर किसी साँढनी सवार के घुँघरुओ की आवाज़ सुनाई दी। "लो, आ भी गया। वही है या कोई और? ज़रा देखो तो.."

द्वारपाल किसी सन्देशवाहक को लिये आप ही चला आ रहा था। रग-ढग से लगता था जैसे वह रात-दिन एक कर के विना रुके आया है। वह अपने

हाथ मे वस्त्रलेख की एक नलिका भी लिये हुए था।

वाग्भट्ट ने लेने के लिए हाथ वढाया।

सन्देशवाहक ने कहा . "महाराज ने आपके ही हाथ में देने का आदेश दिया है प्रभो।"

"मैं कहता हूँ, वाग्भट्ट को दो। नादोल से आ रहे हो न?" कुमारपाल ने पूछा "कोई मौखिक सन्देशा भी है?"

"जी नही प्रभो।"

"वाहर प्रतीक्षा करो।"

वह वाहर चला गया।

"पढो वाग्भट्ट! मन्त्रीश्वर, विजय और कृष्ण हमारे प्रतिकूल हो गए हैं। यह सन्देशा उन्ही का है। हमने अपना समझकर भेजा था और वे हमी से विमुख हो गए। पढो, क्या लिखा है?"

"विजय और कृष्ण कभी विमुख हो नहीं सकते।" उदयन और काक ने एक साथ कहा।

"सकने न सकने का अब प्रश्न ही नही रहा। विमुख वे हो गए हैं। षड्यन्त्र की पूरी एक शृखला थी, जो एक साथ आरम्भ होनेवाली थी। उस शृखला की पहली कडी विक्रम था। लेकिन हमने उसे वेकार कर दिया। दूसरी कडी चौलिग। कल सवेरे वह भी हमारे रणभूमि में पहुँचने तक चौलिग ही कलहपचानन को हँकारेगा। फिर उसे किसी कारणवश नीचे उतरना होगा। जैसे ही वह नीचे उतरे पाँच साँढनी सवार दवोच लें और गायव कर दे। या तो सेना के पिछाये में ले जाओ, या पाटन पहुँचा दो। लेकिन हो-हल्ला नही होना चाहिए। सारा काम चुपचाप हो जाए और किसी को कानोकान खवर न पडे। और सुनो काक, तुम्हें भी जाना होगा। पहले हमारी सेना सवेरे कूच करनेवाली थी, अब आधीरात को ही चल पडेगी। तुम पीछे रह जाना। मालवा का मोर्चा तुम्हें सँभालना होगा। धारावर्षदेव और सोमेश्वर तुम्हारे साथ रहेंगे। इलदुर्ग में जो सेना पड़ी है उसे आगे वढाकर वल्लाल को वही रोक देना। नादोल की सेना का अब कोई भरोसा नही रहा। वोसरि को भृगुकच्छ से फौरन नादोल पहुँचने को कहो। वल्लाल को उसकी माँद में ही रोको। तुम

यहाँ से दो सौ घुडसवार ले जाओ, वाकी रास्ते में जुटा लेना। इलदुर्ग में सेना पड़ी ही है। अभी तुम इसी काम में लग जाओ, वाकी की वातें रहने दो।"

इसी वीच वाग्भट्ट ने सन्देशा पढ लिया और हाथ जोडकर बोला "आपका कथन यथार्थ था प्रभो! दोनो फूट गए हैं।"

"यही तो उसने कहा था और इसी लिए उसे पेड से वँधवाना पडा। चलो, अच्छा ही हुआ कि जल्दी फूटे। त्रिलोचन को थोडे समय वँधा रहने दो। फिर उसे पाटन दुर्ग के साथ प्रेम से वांधकर सारी खोट पूरी कर देंगे। और वाग्भट्ट, वस्त्रलेख में मेरी वह प्रतिज्ञा भी लिखकर भेज दो।"

सकट को सामने देखकर कुमारपाल की वुद्धि वहुत तेज और सक्रिय हो गई थी। वह तुरत-फुरत निर्णय करने, आज्ञा देने, नई योजनाएँ वनाने, विपक्षियो की चालें समझने आदि कामो में लग गए थे।

"प्रतिज्ञा के रूप में क्या लिखवाना होगा प्रभो?" उदयन ने जरा आशकित होकर पूछा।

"मेहताजी, हम सेना लेकर यहाँ तक चले तो आए लेकिन यह नही जानते कि सैनिको और सेनापतियो में कौन हमारे है और कौन विपक्षियो के। आज इस वात को हम कोशिश करके भी नही जान सकते। इसलिए मैंने एक निरापद उपाय मोचा है। आनक को सन्देशा भेजा जाए कि लडाई तीन दिन चले और तीसरे दिन की साँझ को समाप्त हो जाए। द्वन्द्व-युद्ध मे या तो तेरी हार हो या मैं हारूँ। शक्ति हो तो स्वीकारकर अन्यथा हार मानकर लौट जा।"

"लेकिन महाराज!" उदयन ने हाथ जोडकर कुछ कहना चाहा।

कुमारपाल ने उसे रोककर कहा "इसके विना और कोई उपाय नही है मेहताजी! अगर ऐसा नही किया तो एक-एककर सव सैनिक हमे छोड जाएँगे और आप खडे देखते ही रह जाएँगे। चौलिग धोखा देगा। केल्हण भी धोखा देगा। अपने पिता कृष्णदेव का मारा जाना वह भूला नही है, न भूलेगा। विक्रम को आप अभी तो वांध लाये हैं, लेकिन क्या वह आपका साथ देगा? असम्भव! वह जरूर विश्वासघात करेगा। ऐसी स्थिति मे सिर्फ एक ही रास्ता है, अपने ढंग से और अपनी शर्त पर लडना। अगर दूसरा कोई उपाय हो तो आप वताइए। तुम्हें कुछ सूझता हो तो वताओ वाग्भट्ट, काकभट्ट!"

"लेकिन महाराज, यह तो दुस्साहस ही कहा जाएगा . . कही . "

"हम हार न जाएँ यही न ? तो क्या हुआ मेहताजी ! हम राज नही कर पाएँगे। वस न ? राज्य भी करें और जोखिम भी न उठाएँ, ऐसा भला कभी हुआ है ? दुश्मन के सामने झुकते जाना, असमजस मे पडे रहना—ये सव लक्षण राज्य खोने के हैं मेहताजी ! हमे महाराज सिद्धराज की परम्परा पर चलना है और यह कोई दाल-भात का कौर नही कि उठाकर गडप कर लिया। लोहे के चने चबाना है। राज्य तो सिर का सौदा है। दुनिया जानती है कि जो सिर देगा वही सिंहासन और मुकुट पाएगा।

"क्या दूसरा कोई रास्ता है ही नही ? सोचने से शायद. "

"आप ही सोचकर वताइए। लेकिन वहुत सोचते रहे तो जो हाथ में है वह भी निकल जाएगा। अभी तो अर्णोराज इस भ्रम मे है कि जीत उसकी होगी, क्योंकि कलहपचानन का महावत उसकी योजना और धारणा के अनुसार चौलिग होगा। कल सवेरे वात फूट जाएगी और तव वह इस शर्त को स्वीकार नही करेगा। इसलिए अभी, इसी समय किसी तेज साँढनी सवार के हाथ सन्देशा भेजिए। न हो तो भीमसिह को ही भेजिए और कह दीजिए कि वह हाथोहाथ जवाव लेकर ही लौटे। जवाव उसे लाना ही है, यह न भूले।"

"लेकिन तीन दिन की शर्त. " उदयन वात को समझ लेना चाहता था।

"युद्ध सव मिलाकर तीन दिन का. . . और द्वन्द्व-युद्ध मे जो हारे वह हारा और जो जीते वह जीता।* इसके वाद युद्ध नही। हमारी इस प्रतिज्ञा को या तो वह स्वीकार करे या मुँह मे तिनका लेकर शरणागत हो, जैसी उसकी इच्छा।"

उदयन एक क्षण आत्मविश्वास से देदीप्यमान कुमारपाल के चेहरे को देखता रह गया।

कुमारपाल उसके समीप आ गए और उसके कन्धे पर स्नेहपूर्वक हाथ रख-

* प्रवन्धकारो ने इसका अपने प्रवंधो में स्पष्ट उल्लेख किया है
'शाकम्भरीत. पञ्चकोश्यार्वागागत । दिनत्रयेण युद्धं भविष्यतीति निर्णीत-मुभयाभ्यां राजेन्द्राभ्याम् ।'
और 'सैन्ययोर्युद्धमपि निवृत्तम् । तावेव युध्येते ।'

कर बोले . "मेहता आपके स्नेह को मैं जानता हूँ। लेकिन जिसने हमे सिंहासन-प्राप्ति के लिए प्रेरित किया वही हर क्षण हमारा मार्गदर्शन कर रहा है और विजय हमारी ही होगी। आबू मे आपने व्याघ्रराज को तो देखा ही है।"

"जी हाँ, देखा है; क्यो ?"

"आनक ने उसे वहाँ इसलिए नियुक्त किया था कि हम मन्दिर-महल देखने जाएँ तो वह अवसर पाकर हमारा वध करे। बेचारे को चन्द्रावती मे बहुत ताक लगाए रहने पर भी अवसर नही मिला। वह अभी तक यही सोचता है कि हमे उसके बारे मे कुछ मालूम नही। इन सब लोगो का हिसाब निपटाकर ही हम निश्चिन्त हो सकेंगे और हमारे राज्य को स्थायित्व प्राप्त होगा। इसलिए वाग्भट्ट को हमारी प्रतिज्ञा का वस्त्रलेख भेजने दो।"

महाराज की ऐसी सतर्कता और जानकारी देखकर उदयन की आँखें खुल गईं। उसने वाग्भट्ट से कहा "कोई दैवी-शक्ति महाराज के साथ है। महाराज के जितनी सूझ-बूझ भी किसी दूसरे मे नही। महाराज का कहना यथार्थ ही है। अपनी सामर्थ्य में श्रद्धा और विश्वास का बल महाराज को प्रेरित कर रहा है। वाग्भट्ट, तुम महाराज के आदेशानुसार प्रतिज्ञा का वस्त्रलेख लिखकर फौरन भेजो।"

वाग्भट्ट ने इस ढग से वस्त्रलेख लिखा कि आनक को जोश आ जाए और वह चुनौती स्वीकार कर ले।

और जब सवेरे के बदले आधीरात मे ही सेना की कूच का डका बज गया तो सैनिको और सेनापतियो के आश्चर्य की सीमा नही रही। महाराज कुमार-पाल स्वय कलहपचानन पर सवार सेना के आगे-आगे चल रहे थे। उनके एक ओर वाग्भट्ट और दूसरी ओर उदयन था।

आधी रात के समय सैकडो मशालो के उजाले में समूची सोलंकी सेना रणवाद्य बजाती हुई बढी चली जा रही थी।

३३ : श्यामल महावत का प्रत्युत्तर

सोलकी सेना ने सवेरा होने पर देखा तो सामने शाकभरी की सेना लडाई के लिए तैयार खडी थी। शाकभरी को सोलकियो की योजना का पता चल गया था। अर्णोराज ने भीमसिह के पहुँचते ही कुमारपाल की चुनौती को स्वीकार कर अपनी सेना को आगे बढ़ने का हुक्म दे दिया था। दोनो सेनाओ को अपनी-अपनी जीत का पूरा विश्वास था।

दोनो सेनाओ के आमने-सामने आ जाने पर लडाई के बाजे बजने लगे। योद्धा हुकारने लगे और भाट-चरण आदि वन्दीजन घूम-घूमकर वीरो की विरुदावली गाने लगे। वीर अपने प्रतिपक्षियो का नाम ले-लेकर ललकारने लगे।

महाराज कुमारपाल का हाथी दूसरे सैकड़ो हाथियो के बीच छोटी-मोटी पहाडी-जैसा लग रहा था। चौलिग हाथ मे अकुश लिये उसके गण्डस्थल पर बैठा था। त्यागभट्ट ने यह देखा और प्रसन्न हो गया। उसे विश्वास हो गया कि जीत उसकी ही होगी। उसने अर्णोराज से कहा "महाराज, अब और कुछ भी करने की जरूरत नहीं। देवमगल को सीधे इस कोढी पर पेल दीजिए और हम जीत जाएँगे।"

अर्णोराज और त्यागभट्ट आगे बढे। उसके पीछे शराब पीये हुए हाथियो की गजसेना नदी की बाढ की तरह चली आ रही थी। इस सेना के सभी हाथियो की सूंड में एक-एक गदा थी। फौरन सामने से बाणो की वर्षा होने लगी। भाले तोले जाने लगे, तलवारें चमक उठी। वीरो की हुकारें और ललकारें आसमान फाडने लगी। हो-हल्ले और किलकारियो से दशों दिशाएँ गूंज गईं। चूना, हरताल, कुकुम, गुलाल और धूल उडने लगी। पदाति, अश्वारोही और गजदल एक दूसरे के आमने-सामने आ गए। महाराज कुमारपाल ने कलहपंचानन पर खडे होकर युद्धारम्भ की घोषणा का शख बजाया।

चौलुक्य सेना ने जोर का हल्ला मारा। दोनो सेनाओं की भिडन्त हुई।

सैनिक आपस मे गुथ गये और ताक-ताककर अपने विपक्षियो पर वार करने लगे। त्यागभट्ट देवमगल को सीधे कलहपचानन के मुकावले ले चला।

कलहपचानन भी देवमगल की ही ओर वढा चला आ रहा था। त्यागभट्ट ने इसे देखा। अर्णोराज ने भी देखा और गरज उठा . "ओ भिखमगे, कोढी, आ, इधर आ ! दुम दवाकर भाग मत जाना !"

कुमारपाल ने दहाड लगाई "कौन दुम दवाकर भागता है इसका अभी निपटारा हो जाएगा रे जट्टडे !"

इतना कहकर महाराज ने अपने चारो ओर देखा तो चौंक पडे। नडूल का केल्हण अपनी सेना सहित एक वगल चुपचाप खडा था। न वह लड रहा था और न उसके सैनिक। उसी के समीप विक्रम अपनी सेना को धीरे-धीरे शाकभरी की सेना की ओर इस तरह वढा रहा था मानो भिड़ने जा रहा हो; पर असल में उसका इरादा अर्णोराज से मिल जाने का था, क्योकि उसके योद्धा एक-एक करके खिसकते जा रहे थे। स्थिति चिन्ताजनक थी। किसी से कहना या वताना सेना के हौसले पस्त करना था। इन दोनो की ओर से शाकभरी की सेना आगे वढकर महाराज की गजसेना को घेर सकती थी। फिर महाराज ने उदयन को ढूँढा। वह अपनी जगह हाथी पर मुस्तैदी से खडा सैनिको को प्रोत्साहित कर रहा था। फिर महाराज ने अपनी वाईं ओर गोविन्दराज को देखा। वह चाहे तो मदद कर सकता था। ऐसी स्थिति में महाराज कुमारपाल ने पाया कि केवल फुर्तीला युद्ध ही शत्रु की पराजय और अपनी विजय का मार्ग प्रशस्त कर सकता था।

तभी रणधीर वारोट का वुलन्द पहाडी स्वर सुनाई दिया "राजन् ! अव सोच-विचार कैसा ! जिनको आना है वे आएँगे, जिनको जाना है वे जाएँगे। और जो दोनो हाथो से लेनेवाला है उसे हजार हाथो से देनेवाला भी निकल ही आएगा। फिर सोच-विचार कैसा मेरे त्रिलोकपाल !"

और रणधीर ने एक दुहा कहा

"ए इति घोड़ा एह थलि, ए इति निसिआ खग्ग।
एत्थु मुणि सम जाणिअई, जो न वि वालई वग्ग।।"

[यही घोडे है, यह रणक्षेत्र है और यही तलवारें खिची हैं। अव इज्जत तभी वनी रह सकती है जब घोड़ो की लगामे पीछे हटने के लिए खीची न जाएँ।]

विपक्षी कविराज न इसके जवाव मे यह दोहा पढा :

"जीविऊ कासु न वल्लहऊ, धणु पुण कासु न इट्ठु ।
दोणि वि अवसर निवडि अईं, तिण सुम गणाई विसिट्ठु ।।"

[जीवन किसे प्यारा नही ? धन और पुत्र किसे काम्य नही ? लेकिन सच्चा मनुष्य वही है जो अवसर आने पर जीवन, धन और पुत्र तीनो की वाजी लगा दे।]

इसके उत्तर मे राजकवि रणवाँकुरे रणधीर का गगन गुँजाता, रोमाचित करता वीर स्वर सुनाई दिया :

"कुमारपाल ! मन चिंत करि, चिंतईं किंपि न होई ।
जिणि तुहु रज्जु सम्मपिऊ, चिंत करेसई सोई ।।"

[हे कुमारपाल ! तू चिन्ता करना छोड़ दे। जिसने तुझे राज दिया है वही तेरी चिन्ता करेगा ।]

"राजन, जिसने राज्य दिया है उसी को तुम्हारी चिन्ता है ! तलवारो की छाया मे वैठनेवाले को असमजस कैसा ? कलहपचानन को सीधे देवमगल से भिडा दो । नसीवा और नाक दोनो दाव पर लगे हैं इस समय ।"

चारण की वात खत्म भी नही हो पाई थी कि महाराज ने गरजकर कहा "हूल दे श्यामल, हूल दे कलहपचानन को त्यागभट्ट के देवमगल पर । एकदम सीधे, हूल, !"

श्यामल हाथी की गरदन मे पडी रस्सियो मे पाँव देकर खडा हो गया और कलहपचानन को आगे वढ़ने के लिए हुँकारने लगा । आस-पास सैनिको का युद्ध वहुत तीव्र हो गया था । ।

सामने से देवमगल चला आ रहा था । अव दोनो हाथियो मे सिर्फ एक भाला फेंकने जितना फासला रह गया था। देवमगल ने सामने कलहपचानन को देखा और वही ठिठक गया । त्यागभट्ट तुरत हाथी के दन्तशूलो पर खडा हो गया और दवे स्वर मे सिहनाद करने लगा । इस आवाज को सैनिको ने तो नही सुना पर सभी हाथियो ने सुन लिया और आगे वढने से इनकार कर दिया । यहाँ तक कि कलहपचानन की भी छाती दहल गई और वह आगे वढने के वजाय दो कदम पीछे हट गया । मारे डर के उसने अपनी सूँड लपेटकर मुँह के अन्दर कर ली थी ।

कुमारपाल ने यह देखा और एक दृष्टि अपनी सेना पर डाली। कुछ सैनिक खड़े देख रहे थे। कुछ सैनिक शत्रुदल मे मिलते जा रहे थे। उदयन मेहता घूम-घूमकर सैनिको को प्रोत्साहित कर रहा था। अगर यही हाल रहे तो, कुमारपाल ने सोचा, हारना पडेगा। उसने कड़ककर श्यामल से कहा : "श्यामल, कलह-पचानन को आगे वढा और भिडा दे देवमगल से।"

लेकिन कलहपचानन अपनी जगह से हिला तक नही।

कुमारपाल ने कहा "श्यामल, क्या तू भी विमुख हो गया? अगर ऐसी वात है तो हट जा, मैं दोनो ही काम कर लूंगा।"

श्यामल ने कानो पर हाथ रखकर कहा : "नही, प्रभो, नही! इस धरती पर तीन जन हैं जो कभी विमुख नही हो सकते, न होगे। एक महाराज स्वयं, दूसरा यह गजराज और तीसरा आपका यह किंकर श्यामल। सब मुंह फेरकर चले जा रहे हैं, लेकिन हम मुंह नही फेर सकते। असल मे हाथी आगे नही वढ़ रहा क्योकि त्यागभट्ट देवमंगल के दन्तशूलो पर खडा सिंहनाद कर रहा है। हम सुन नही पाते, मगर हाथी सुन-सुनकर घबरा रहे हैं और आगे वढने से इनकार करते हैं।"

"कलहपचानन भी?"

"हाँ, महाराज! त्यागभट्ट को सिंहनाद की कला आती है और इस समय वह उसका उपयोग कर रहा है।"

"अच्छा, ऐसी वात है!" और महाराज ने तुरत अपना उत्तरीय फाडकर उसने दो गोले वनाए और फौरन झुककर कलहपचानन के दोनो कानो में ठूंस दिए। जैसे ही आवाज सुनाई देना वद हुआ अकुश के ज़रा-से इशारे पर कलहपचानन आग के गोले की तरह सामने झपटा। श्यामल महाराज का यह कौशल देखता ही रह गया।

"अव जान वचा, जट्ट!" कुमारपाल ने खडे होकर तीर वरसाना शुरू कर दिया। हौदे में वैठे महाराज के अगरक्षक भी ताक-ताककर तीर मारने लगे।

इधर दोनो हाथी एक दूसरे से गुथ गए और सूंडो तथा दन्तशूलो से ठेला-ठेली करने लगे। लडाई का वेग वढ गया। चारो ओर से तीर, भाले और

तलवारें चलाई जाने लगी। जब कलहपंचानन ने अपने पलखदन्तो* से देवमगल को टक्कर मारी तो त्यागभट्ट के आश्चर्य की सीमा नही रही। उसकी समझ में नही आया कि सिंहनाद के बावजूद कलहपचानन क्योकर बढ आया और चौलिग ने उसे बढ़ने कैसे दिया ? युद्धक्षेत्र की उड़ती धूल और चूने, कुकुम और हरताल के लगातार उडाये जाते रहने के कारण वह देख नही पाया था कि महावत की जगह चौलिग के स्थान पर श्यामल बैठा हुआ है। यह पहले ही तय हो गया था कि जैसे ही हाथी टक्कर मारेगा त्यागभट्ट कूदकर कलहपचानन की पीठ पर पहुँच जाएगा। चौलिग वहाँ रहेगा ही, इसलिए कुमारपाल को मार गिराना मुश्किल न होगा।

इसलिए जैसे ही कलहपचानन ने टक्कर मारी अपने आश्चर्य के बावजूद वह तलवार हाथ में लेकर खडा हो गया और बोला "महाराज, आप मेरे पीछे लगे चले आइएगा।" और वह चीते की तरह देवमगल की पीठ से उछला . .

३४ : द्वन्द्व-युद्ध

त्यागभट्ट चीते की तरह उछलता दिखाई दिया। वह सीधा कलहपचानन के हौदे में पहुँच जाता और उसकी तलवार महाराज कुमारपाल के टुकडे उडा देती। लेकिन श्यामल ने उसी समय कलहपचानन को दो कदम पीछे हटा लिया। त्यागभट्ट का पाँव मुश्किल से हाथी के गण्डस्थल को छू सका और वह धडाम-से नीचे जा गिरा। उठने से पहले ही पास खड़े सोलकी सैनिको ने उसे घेर लिया। कई नंगी तलवारें उसके माथे पर तुल गई और एक भाला कलेजे पर अड गया।

* सीधे दाँतोंवाला हाथी पलखदन्ती, ऊपर उठे दाँतोंवाला नीमपलख और नीचे झुके दाँतोंवाला पातालदन्ती कहलाता है। युद्ध में पलखदन्ती अच्छा समझा जाता और जीतता है।

फौरन दो मल्लो ने उलटी मुश्कें बाँधकर उसे लडाई के मैदान से हटा दिया।

अर्णोराज की समझ में नही आया कि यह क्या हुआ! श्यामल ने इतनी चतुराई और फुर्ती से कलहपचानन को पीछे हटा लिया था कि त्यागभट्ट ही नीचे नही गिरा देवमगल भी सीधी टक्कर न होने से लडखडा गया। अपनी टक्कर के जोर को सँभाल न पाने के कारण उसके अगले पाँव मुड गए और वह वडी मुश्किल से गिरते-गिरते वचा।

इस छोटी-सी घटना ने सारे युद्ध का पासा पलट दिया।

देवमगल अभी सँभल भी नही पाया था कि कुमारपाल बिजली की तरह तडपते हुए उछले और अर्णोराज के हौदे में कूद गए। विस्मित अर्णोराज त्याग-भट्ट के गिरने और हाथी के लड़खडाने के धक्के से सँभल भी नही पाया था कि उसने सिर पर लटकती तलवार देखी और कुमारपाल के दहलानेवाले शब्दो को सुना "आनक! जट्टडे! सँभल, तेरी मौत आई!"

इस रण-घोषणा ने चौलुक्य सैनिको को जैसे बिजली छुआ दी। वे दूने जोश से लडने लगे। उदयन, वाग्भट्ट, सज्जन, भीमसिंह आदि दौडकर महाराज के हाथी के पास पहुँच गए और उमग-उमगकर महाराज कुमारपाल की जय-घोपणा करने लगे।

टक्कर ढीली पड जाने के कारण अर्णोराज का हाथी घवरा ही नही गया था, उसके अग-प्रत्यग भी ढीले हो गए थे। जैसे ही सँभला वह मैदान से भागने के लिए मुडा। तव तक महाराज कुमारपाल अर्णोराज के हौदे मे पहुँच चुके थे। उन्होने जोर का धक्का देकर आनकराज को नीचे गिरा दिया और खुद भी उस पर कूद पडे।

आनकराज के महावत ने यह देखा; उसने अंकुश मारकर देवमगल को साधा और दोनो योद्धाओ पर पेल दिया। तभी श्यामल के इशारे पर कलह-पचानन ने देवमगल की वगल मे इतने जोर से टक्कर मारी कि वह महावत को नीचे गिरा लडाई के मैदान से भाग छूटा।

लोगो ने देखा—आनकराज का हाथी भागा जा रहा है। हौदा सूना पडा है। छत्र का कही पता नही। हाथी के आभूषण जाने कहाँ रह गए और आनक-राज भी दिखाई नही देते!

कुमारपाल महाराज की विजय-घोषणा से जैसे आसमान फट पडा । स्वामी-भक्त चौलुक्य सेना के हौसले बढ गए । शत्रु सैनिको और विरोधियो के छक्के छूटने लगे । भेरी, तुरही आदि रणवाद्य जोरो से बजने लगे ।

कुमारपाल ने अर्णोराज का मल्लयुद्ध में मलीदा निकाल दिया । उसके हाथ-पाँव बाँधकर खडे हो गए और कहकहा लगाकर बोले : "बोलो क्षत्रियराज ! अब कैसा लग रहा है ? नकटे कही के ! महाराज सिद्धराज से नाक कटवाकर जी नही भरा था वह फिर उग आई कि हमसे दुबारा कटवाना पडी ! अब उगने से रही ! बेशर्मी की हद हो गई, अर्णोराज !"

कुमारपाल ने आनकराज को कटु वचनो से छेद डाला । इस बीच चौलुक्य सैनिको ने महाराज को चारो ओर से घेरकर मजबूत दीवाल-सी बना दी, जिससे शत्रु-पक्ष का कोई सैनिक वार न कर सके ।

महाराज तुरत कलहपचानन पर सवार हो गए और हौदे में खड़े होकर उन्होने जोर से विजय का शख बजाया । फिर अपने वस्त्र हवा में हिलाते हुए जयनाद करने लगे । सैनिक उछल-उछलकर 'जय सोमनाथ' और 'महाराज कुमारपाल की जय' के नारे लगाने लगे ।

कुमारपाल ने तुरत ऊँचे स्वर में सैनिको को सम्बोधित किया "अब कोई किसी का वध न करे ! आनकराज हारे और पकड़े गए । द्वन्द्व-युद्ध की हमारी प्रतिज्ञा पूरी हुई । जो तलवार जहाँ तक उठी हुई है उसे वही रोक दिया जाए । मंत्रीश्वर, युद्ध बन्द करने का आदेश फौरन सब जगह प्रचारित करवा दीजिए ।"

'चौलुक्यो की जीत हुई !' 'महाराज कुमारपाल जीते ।' 'आनकराज पकडे गए ।' ऐसी घोषणाएँ सारे युद्धस्थल में होने लगी । चारण, भाट और बन्दीजन चौलुक्यो की विजय की प्रशस्तियाँ गा-गाकर सारे रणक्षेत्र में घूमने लगे ।

आनकराज के सैनिको में भगदड मच गई । जिसको जिधर रास्ता मिला भाग चला । महाराज कुमारपाल ने बन्दी आनकराज सहित अपनी सेना को आगे बढने का आदेश दिया ।

३५ : रानी मोपल दे

कुमारपाल ने रणभूमि मे ही पडाव डाल दिया । वे काकभट्ट के सन्देशे की प्रतीक्षा कर रहे थे । नडूल के केल्हण को अभी तो उन्होने लौट जाने दिया, लेकिन उसके दमन का उन्होने निश्चय कर लिया था । जव तक काकभट्ट का कोई समाचार नही मिल जाता, वे रणभूमि मे ही पडे रहेंगे । सेना को किसी भी दिशा मे वढाने का फैसला काक के सन्देशे पर ही निर्भर करता था ।

वल्लाल वैसे कर्णाटकी था और मालवा में अभी उसकी जडें गहरी जम नहीं पाई थी। कुमारपाल उसे कर्नाटक की ओर खदेड़ देना चाहते थे । उनका विश्वास था कि यह काम काक कर लेगा । सेना आनक-युद्ध की थकान मिटा ले और विजयोत्सव मना ले, उसके वाद फैसला किया जाएगा और वह भी काक का सन्देशा प्राप्त हो जाने के वाद कि मालवा की ओर कूच किया जाए अथवा अर्बुद-गिरि की ओर ।

युद्ध की कड़ुवाहट खत्म हो गई थी और दोनो सेनाओं का पारस्परिक शत्रु-भाव भी समाप्त हो चला था । हँसी-खुशी और आनन्द-विनोद में दोनो सेनाओ के सैनिक एक-दूसरे को आमन्त्रित करने लगे थे । आनक भी अपनी पराजय की चोट को धीरे-धीरे भूलता जा रहा था ।

तभी एक आधीरात को कोई सांढनी सवार आया और सीधा उदयन मन्त्रीश्वर के शिविर के पास रुका । वहाँ थोडी देर चर्चा करने के वाद शाकभरी सेना के वीच से होता हुआ वह शाकभरी की ओर चला गया ।

देखनेवालो को आश्चर्य हुआ । कौन था वह सांढनी सवार ? देखने में तो कोई स्त्री लगती थी । लेकिन मन्त्रीश्वर से पूछने की हिम्मत किसमें थी ! भीमसिंह ने पूछा भी, लेकिन उसकी वात हँसी में उडा दी गई । महाराज को पता चला । उदयन ने हाथ जोडकर निवेदन कर दिया · "महाराज, मै भी आदमी हूँ । इस नाते महाराज से कुछ छिपाने की वात भी हो सकती है। समझ लीजिए कि यह

बात बताने की नही। इसे छिपी ही रहने दीजिए।"

"लेकिन यह तो बताइए मेहताजी कि कौन था ? तुमसे मिलने आया और तुरत शाकभरी चला गया। क्या काचनदेवी थी ?"

"कोई देवी ही थी महाराज।"

"अच्छा, पाटन में तो सब कुशल-मगल है न ?"

"यदि कुशल-मगल न हो तो क्या हम यहाँ रुकेंगे ?"

सिर्फ यही पता चल सका कि पाटन से कोई सन्देश आया था और वह शाकंभरी चला गया। कुमारपाल को चिन्ता होने लगी कि पाटन में कुछ अनिष्ट तो नही हो गया है! किसी स्वजन के मृत्यु-समाचार तो उदयन मेहता छिपा नही रहे है ?

लेकिन उदयन ने साफ कुछ नही बताया।

दो-एक दिन बाद भीमसिंह ने आकर निवेदन किया : "स्वामिन्, महाराज आनकराज का दूत आया है।"

आनक को अभी एक दिन पहले ही मुक्त किया था। इधर-इधर उसने गुर्जरेश्वर का प्रीतिभाजन बनने का बहुत प्रयत्न किया था। मत्रीश्वर उदयन को भी उसने अपने अनुकूल कर लिया था। व्याघ्रराज को उसने शाकंभरी भेज दिया था। विक्रम को भी सचेत कर दिया था : "कुमारपाल कच्चा दाना नहीं है। अनुभवी योद्धा है। इससे टकरानेवाला अपना ही नाश करेगा। सिर उठाने की जुर्रत मत करना। नाहक राज्य से हाथ धो बैठोगे।"

विक्रम, शायद इसी लिए, महाराज की दौड-दौडकर सेवा करने लगा था। कुमारपाल धारावर्षदेव के लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इस तरह सारा वातावरण ही बदल गया था।

इसलिए जब भीमसिंह ने आनकराज के दूत के आने की बात कही तो महाराज को आश्चर्य नही हुआ। सन्धि की बात पहले ही तय हो गई थी। आनकराज ने गुर्जरेश्वर का सामन्त बनकर रहना स्वीकार कर लिया था। महाराज ने शासन-सम्बन्धी जो भी परिवर्तन सुझाये थे वे सब उसने मंजूर कर लिये थे। आनक के दोनो ऊधमी बेटो में से कोई आया नही था। और अभी तो आनक ही राजा था, इसलिए महाराज ने इस प्रसग को छेड़ना न उचित समझा, न आवश्यक ही।

आनक के दूत ने शिविर मे प्रवेश किया। रात में दूत का आना महाराज को कुछ अनहोना-सा लगा। इस दूत के हाव-भाव भी थोडे रहस्यात्मक थे। प्रकाश में खड़े होनें के स्थान पर वह अँधेरे में खडा था। सुन्दर भी वह वहुत था। आनक के इतने सुन्दर दूत को महाराज पहली ही वार देख रहे थे। उसकी सुन्दरता आंखो को सहज ही वाँध लेती थी।

"क्यो, आनकराज ने भेजा है? क्या वात है?" महाराज ने पूछा।

"आनकराज ने सन्देशा भेजा है प्रभो।" दूत ने हाथ जोडकर कहा।

"लाओ, कहाँ है सन्देशा।"

"मौखिक भेजा है प्रभो।"

कुमारपाल ने सावधान होकर कहा : "अच्छा, बोलो; हम सुन रहे है।"

"सन्देश छोटा-सा है प्रभो। सुनिए :

"आर्पहि जम्महि अन्नहि वि, गोरि सुदिज्जहि कन्तु।
गय मत्तह चत्तंकु सहं जो अब्भिडई हसन्तु॥"

[हे देवी, इस जन्म मे या आते जन्म मे तू मुझे ऐसा पति देना जो मत्त गजेन्द्रो से हँसता-हँसता भिड जाए और पांव पीछे न हटाए।]

कुमारपाल ने हडवडाकर कहा : "पागल हो गया है क्या? किसी ओर को भेजा गया सन्देशा तू मुझे सुना रहा है। वहुत बड़ी गलती कर वैठा है तू।" कुमारपाल यही समझे कि सन्देशवाहक से भूल हो गई है।

"गलती तो इसने नही की प्रभो। शायद हमी से हो गई है।" उदयन मेहता ने एक ओर से आते हुए कहा। वे हँस रहे थे।

कुमारपाल ने ध्यान से दूत की ओर देखा। चौंक पड़े। "अरे, दे तो नही? यह सव क्या है?"

"एक नाटक महाराज।" महारानी भोपल दे ने हँसते हुए पगडी आदि उतार फेंकी और दीयो के उजाले मे आ खडी हुई।

"प्रभो!" उदयन ने हाथ जोडकर कहा. "महारानीजी हँस रही हैं, लेकिन सन्देश सच है। आनकराज ने यही कहलवाया है। महारानीजी तो केवल दूत वनी हैं।"

"क्या मतलव?"

"मतलब यह कि काचनदेवी पाटन से आई है . "

"अच्छा, अब समझा। आपने उस दिन किसी देवी के आने के बारे मे कहा था तो आपका यही मतलब था, क्यो ? सांढनी सवार के आने का भेद अब खुला।"

"हाँ प्रभो ! उनके साथ महारानीजी भी आई थी। यदि आनकराज को सदा के लिए अपना बनाना चाहते हो तो उनके इस सन्देश को स्वीकार कर लीजिए। महारानीजी भी इसी लिए आई हैं।"

"क्या कह रहे हो ?" कुमारपाल ने चकित होकर कहा "दे इसी लिए आई हैं ? क्यो दे, यह सच है ? तुम्हें ऐसी सीख किसने दी ?"

"महाराज, आपने ही।" भोपल ने लाड में आकर कहा "दु ख के समय तो मुझे छाया की तरह साथ चलाते रहे, विजय हुई तो याद भी नहीं किया। आगे चलकर शायद सफा ही भुला दोगे इसलिए सोचा कि क्यो न ऐसा कुछ कर डालूं जिससे अभी ही भुला दी जाऊं ! इसलिए मैंने यह किया।"

"लेकिन यह सब है क्या ?"

"महाराज ! आनकराज की बेटी है। जल्हणा उसका नाम है।"

"दे, पागल हो गई हो क्या ? अपने स्नेह की छाँह का मुझे सहारा "

"महाराज, आगे बोले तो आपको भगवान सोमनाथ की सौगन्ध। पहले पूरी बात सुन लीजिए। मैंने उदयन मेहता से पूछ लिया था . "

"बहुत अच्छा किया। सेठ जो ठहरे। घर मे दो-तीन सेठानियाँ रखे हुए हैं। ऐसी उलटी सलाह तो देंगे ही। पर मैं तो सेठ हूँ नही। अभी कल तक दर-दर की ठोकर खाता फिरता था। क्या तुम भूल गईं ? तुम्हारे सहारे ही तो उन दिनो को काट सका हूँ। तुम मुझे हिम्मत बँधाने को न होती तो पता नही क्या हाल होते और आज कहाँ होता ? क्या इतना पामर समझती हो कि तुम्हारे उपकारो को इतना जल्दी भूल जाऊँगा ? यह षड्यन्त्र..."

"षड्यन्त्र यह नही है मेरे देवता। अब तुम देवस्थली के सामन्त नही गुजरात के महाराजा हो। महाराज सिद्धराज जितना बडा राज्य छोड गए हैं उससे तीन गुना बडा राज्य तुम प्राप्त करोगे। लेकिन किसके लिए ? कहाँ है तुम्हारा उत्तराधिकारी ? क्या भावबृहस्पति की वाणी को सच हो जाने दोगे ? मैं नारी

हूँ प्रभो ! आप पचास के होने आए, मैं उनचालीस की हो चली हूँ। आँचल फैला-कर माँगती हूँ तुमसे अपने लिए एक पुत्र, सिंहासन के लिए एक उत्तराधिकारी। उसके अभाव मे राज्य के लिए खून की नदियाँ वह जाएँगी। बिना उत्तराधिकारी के राज्य को रखा नही जा सकता। आपके जीते-जी ही अराजकता फैल जाएगी। फिर आनक को भी हमेशा के लिए अपना बनाना है। जल्हणा आपसे प्रेम करती है। जब से सुना आपके नाम की माला जप रही है। इस तरह आनक पाटन के स्वामीभक्त और सगे सामन्त बन जाएँगे और यह दिशा सदा के लिए सुरक्षित हो जाएगी। ऐसा अवसर खोना कदापि उचित नही। महाराज सिद्धराज ने भी इसी नीति को अपनाया था। हमें भी यही नीति अपनानी चाहिए। इससे काचनदेवी के सोमेश्वर का पक्ष मजबूत हो जाएगा। उनका समाधान होगा। मुझे अच्छा लगता है। मेहताजी को अच्छा लगता है। फिर आपत्ति क्यो ?"

"लेकिन देवि. . "

"मैंने तो सारी व्यवस्था कर डाली है। हाँ भी कह आई हूँ। सुनिए, मगल-वाद्यो के साथ आनकराज स्वय चले आ रहे हैं। अब उन्हें क्या जवाब दीजिएगा ? मना करेंगे क्या ? किस मुँह से कर सकेंगे ? जल्हणा अभी जलकुम्भ सिर पर उठाये द्वार पर आ खडी होगी तो क्या उसे मना कर देंगे ? यदि वह महाराज को चौसर खेलने के लिए बुलाए तो क्या मना किया जा सकेगा ? यो ही समझ लीजिए कि उसने प्रेम का खेल खेलने का न्योता दिया है। हम नारियो के मन को आप कभी समझ नही सकेंगे महाराज ! अगर आपको किसी पर नजर डालते देख लेती तो सच मानिए अपने-आपको जिन्दा जला डालती। लेकिन आज वही मैं आपका हाथ जल्हणा के लिए माँगने आई हूँ। जानते हैं किस लिए ? पाटन मे जो रह लेता है वह क्षुद्र और क्षुल्लक नही बना रह सकता; लघुस्वार्थ उसे प्रेरित नही कर पाते। पाटन को स्थायित्व प्रदान करने के लिए एक सिंहशावक की आवश्यकता है, इसी लिए मैंने यह [illegible] किया है। आप चुप बैठे देखते रहिए और जो होता है होने दीजिए।"

तभी भीमसिंह ने आगे आकर बताया "महाराज आनकराज, उनकी महारानी और राजकुमारी जल्हणादेवी पधारे हैं।"

मंगलवाद्यो का स्वर साफ सुनाई दे रहा था और निरन्तर पास आता जाता था।

"देवि !" कुमारपाल इससे अधिक कुछ न कह सके। स्वागत के लिए ग
विना कोई चारा नहीं रह गया था। उन्हें उठते देखकर महारानी भोपल दे
झुककर प्रणाम किया। और बोली "महाराज की जय ! महाराज शतायु हों !"

३६ : रणक्षेत्र में दुलहिन

आनकराज आया। कुमारपाल ने उसे देखा। वह मैत्री के लिए बहुत उत्सुक प्रतीत होता था। कुमारपाल ने हाथ जोडकर उसे नमस्कार किया और कहा . "आइए आनकराजजी।"

आनक समझ गया कि उदयन मेहता चर्चा कर चुका है। उसने कहा : "महाराज, मैं जो माँगने जा रहा हूँ उसके लिए मना न कीजिएगा। देवी की भी यही इच्छा है। विग्रह और जगदेव* तो कहीं महाराज को दिखाई नहीं दिये और न दीखेंगे। जब मेरे अपने ही बेटे कहे मे नहीं तो मैं आप-जैसे समर्थ से वर कर नन्हे सोमेश्वर और इस वेचारी जल्हणा को ही हानि पहुँचाऊँगा। वैसे भी मुझे अब कितने दिन जीना है ?"

"इनका शरीर अब थक चला है। वैर बाँधने से क्या लाभ ? क्यों न मधुर सम्बन्ध जोडे जाएँ ?" रानी सुधवा ने कहा।

"आप कैसी बात करती है ? भगवान करें ये शतायु हो।" उदयन ने इतना कहकर महाराज कुमारपाल की ओर देखा और हाथ जोडकर बोला : "महाराज आनकराज के अनुरोध को स्वीकार करें।"

कुमारपाल चुप रहे। आनकराज उन्हीं के मुँह से स्वीकृति सुनना चाहता था। यह देख भोपल दे ने मधुर स्वर में कहा . "आनकराजजी ! महाराज नहीं

* आनक के पुत्र। जगदेव बड़ा बेटा था और विग्रह छोटा। ऐसा उल्लेख मिलता है कि आनक बाद में अपने बेटे जगदेव के हाथों मारा गया।

लेंगे। लडाई के मैदान मे भले ही मत्त गजेन्द्रो को वश मे कर ले, घर मे तो ने इन्हें सदैव काँपते ही देखा है।"

"महारानीजी बिलकुल सच कह रही हैं।" उदयन ने परिहास किया महाराज बोल नही सकेंगे आनकराजजी।"

"मन्त्रीश्वर, आप चुप रहिए, नही तो पोल खोल दूंगा। आम्रभट्ट ने मुझे सब-कुछ बता दिया है।"

"अपनी क्या पोल खुलनी है! उलटे महाराज का ही नुकसान हो जाएगा। आप खुशी से कहिए।"

"आम्रभट्ट एक दिन कह रहा था कि वह आपके लिए नई सेठानी खोज रहा है। क्या सच है?"

उदयन ने ठठाकर हँसते हुए कहा "बिलकुल सच! वाग्भट्ट विद्वान है। आम्रभट्ट योद्धा है। व्यापारी कोई नही, जब कि मेरा मूल व्यवसाय व्यापार है। धन्धा सँभालनेवाला भी तो कोई होना चाहिए कि नही? इसलिए बात बिलकुल सच है प्रभो! अब बताइए! इसमे क्या पोल खुली? और आनकराजजी यहाँ सिर्फ बातें सुनने नही महाराज की स्वीकृति लेने आए है। आप स्वीकृति दीजिए नही तो महारानीजी दे देंगी और तब आपसे इनकार करते नही बनेगा।"

"महाराज की ओर से आप ही स्वीकृति दे दीजिए मेहताजी। राजाओ के सब काम मन्त्री करते हैं।" भोपल दे ने कहा "इन्हें केवल युद्ध में गरजना आता है। घर में तो घुन्ने हो जाते हैं। या कही भाषासमिति* तो नही धारण कर ली है?"

"न हुआ वाग्भट्ट, नही तो महाराज से कहता—अस्मिनसार ससारे सार सारगलोचना।"

भोपल दे ने तुरन्त पाद-पूर्ति कर दी—

"यत्कुक्षिप्रभवा मन्ये मन्त्रीराज! भवादृशा ॥"

सब लोग खिलखिला पडे। उदयन ने आनक की ओर देखकर कहा. "महाराज, आपको जवाब मिल गया। लेकिन मगलविधि तो पाटन मे ही होगी, और मुधवादेवी को वहाँ पधारना होगा।"

* जैन आगम का पारिभाषिक शब्द—पापरहित, विवेकपूर्ण मितभाषण।

"यहाँ नहीं ? पाटन मे ?" आनक न कहा . "ऐसा भी कभी हुआ है मन्त्री राज ?"

कुमारपाल को भी यह सुनकर आश्चर्य हुआ और भोपल दे को भी । आनक राज असमजस मे पडा दिखाई दिया । उदयन ने हाथ जोडकर कहा · "हाँ प्रभो ! मगलविधि और विवाहोत्सव दोनो साथ-साथ पाटन मे होगे । महारानी सुधवा देवी और राजकुमारी जल्हणा को वहाँ आना होगा ।"

"लेकिन मेहताजी, यह तो अच्छा नही लगेगा ।" सुधवा ने आपत्ति की ।

"महारानीजी पाटन पधारें ।* साथ में आपके राजपुरोहित भी आ जाएँ, फिर किसी को क्या आपत्ति हो सकती है ?" उदयन ने कहा "असल वात यह है कि महाराज की एक वहिन का अभी तक पता नही चल पाया है । महाराज के पुराने साथियो में से एक श्रीदेवी × को छोड वाकी सव मिल गए—आलिगजी, सज्जन, वौमरि, भीमसिंह सव आ गए । सिर्फ श्रीदेवी का अभी तक पता नहीं चला । उनके विना महाराज की नजर कौन उतारेगा ? अभिषेक के समय हमने वहुत ढुंढवाया लेकिन कही पता नही चला । विवाह के समय तो उन्हें होना ही चाहिए । उन्हें खोज निकालना अभी वाकी है ।"

भोपल दे की समझ में नही आ रहा था कि मेहता विवाह-विधि पाटन में सम्पन्न किये जाने पर इतना जोर क्यो दे रहे हैं ? उसने एक ओर ले जाकर पूछा : "मेहताजी, यह कैसे सम्भव है ? श्रीदेवी के लिए आप मगल प्रसंग को ही टाले दे रहे हैं । आनक अव हमारे सम्वन्धी हो गए है । इनकी वात हमें रखनी चाहिए या नहीं ?"

"महारानीजी !" उदयन ने कहा · "इस सम्वन्ध में क्यो न महाराज से ही पूछ लिया जाए ?"

कुमारपाल को वुलवाया गया । उदयन ने धीरे से कहा "श्रीदेवी की वात तो यो ही याद आ गई और मैंने कह दिया । लेकिन असल वात तो यह है कि

* हेमचन्द्र के 'द्वयाश्रम' के अनुसार जल्हणा पाटन पहुँचाई गई और वहीं विवाह हुआ ।

× श्रीदेवी ने कुमारपाल को करभंक देकर भुखमरी से वचाया था ।

क्रम ने भोजन के बहाने जला मारने का षड्यन्त्र रचा था। पता नहीं इसने
दी के बहाने कोई षड्यन्त्र सोचा हो। इसलिए मैंने विवाह-विधि पाटन में
म्पन्न करने की बात रखी है।"

"हाँ मेहताजी, बात आपकी सच है।" भोपल दे ने दाँतोतले अँगुली दबाते
ए कहा "बहुत दूर की सोचते है आप। आखिर तो यह जाति का मारवाडी
और पता नही कब क्या सोच बैठे। सावधान रहना सदैव अच्छा।"

"बात यह है महारानीजी कि अभी लडाई पूरी तरह खत्म नही हुई है।
हाराज ने एक बार मुझसे जो-कुछ कहा था वह मुझे आज भी खूब अच्छी तरह
याद है, भूला नही हूँ। महाराज ने कहा था कि वीर शस्त्र से नही विश्वास कर लेने
र मारा जाता है। इसी लिए मैंने यह बात कही। अब जैसा महाराज का निर्णय।"

तभी बाहर एक साँढनी सवार के आने का पता चला। उदयन ने कहा "यह
लीजिए महारानीजी! मैं कह नही रहा था कि अभी लडाई खत्म नही हुई!
किसी साँढनी सवार के घुँघरू बज रहे है। जरूर लडाई का ही सन्देशा होगा।"

"कौन है भीमसिंह?" महाराज ने पूछा।

"काकभट्ट अन्दर आने की अनुमति चाहते है महाराज! धारावर्षदेवजी भी
उनके साथ है।"

"काकभट्ट आ गए? मेहताजी, या तो विजय का अथवा सर्वनाश का सन्देशा
समझिए। आनकराज को फौरन विदा कर दीजिए, विवाह-विधि के लिए आपका
सुझाव स्वीकार है।"

उदयन ने आनकराज के पास जाकर कहा "प्रभो, महाराज की भी यही
इच्छा है। उनका कहना है कि आनकराजजी तो हजारो बार पाटन आएँगे,
लेकिन महारानी सुधवादेवी कब आएँगी! इसी बहाने उनका पाटन आना हो
जाएगा। वाग्दान भले ही कल सवेरे यहाँ हो जाए, लेकिन विवाह की सारी
विधियाँ पाटन मे ही होगी। आपके राजपुरोहित पाटन आ जाएंगे। महाराज
को किसी तरह की असुविधा नही होगी। ठीक है न प्रभो! महाराज ने आपका मन
और मान दोनो रख लिये।"

आनक समझ गया कि कहीं से लडाई की खबर आई है। इन लोगो को अभी
मेरा पूरा तरह विश्वास नही हुआ है, यह सोचकर वह वहाँ से फौरन चला गया।

३७ : काक लौटकर आया

आनकराज और सुव्रवादेवी के जाते ही काक अन्दर आया। कुमारपाल ने उसे देखते ही पूछा : "बताओ काकभट्ट, शेर या सियार ? पहले इसका जवाब दो, विस्तार मे फिर बतलाते रहना।"

"शेर, महाराज ! शेर !"

"ठीक है। अब विस्तार से बताओ। धारावर्षदेवजी कहाँ है ?"

तभी धार परमार ने प्रवेश किया। कुमारपाल उन्हें पहली बार ही देख रहे थे। शरीर की कसावट और शक्ति-सामर्थ्य देखकर चकित रह गए। लगता था, किसी कुशल शिल्पी ने संगमरमर के शिलाखण्ड को तराशकर वज्रोपम शरीर बना दिया हो।

"धार परमारजी, यहाँ आइए मेरे पास।" महाराज ने उन्हें बड़े स्नेह से अपने समीप बुलाया।

धार परमार ने पास आकर महाराज के चरण छुए और कहा : "महाराज, बल्लाल को तो काकभट्ट ने मार ही डाला। महाराज के प्रताप से सर्वत्र विजय हो रही है।"

"महाराज !" काकभट्ट ने हाथ जोडकर कहा : "परमारजी अपना पाप मेरे सिर ढोल रहे हैं। मारा इन्होने और नाम मेरा लगा दिया। दुहाई महाराज, न्याय किया जाए।"

"तुम दोनो ही पापी हो।" महाराज ने हँसी मे योग देते हुए कहा तुम्हें इस समर-तीर्थ मे पाप-विमुक्त करना होगा। मंत्रीश्वर, काक को सेनापति-पद से अभिषिक्त कीजिए जिससे यह पवित्र हो जाएँ और धार परमार को . "

उदयन, काकभट्ट, रानी भोपल दे सब ने देखा कि महाराज ने बात अधूरी ही छोड दी। कुमारपाल बोलते-बोलते विचारमग्न हो गए थे।

"महाराज ! धारावर्षदेवजी का प्रायश्चित तो आपने बताया नही। क्या

हम यही समझें कि महाराज की वाणी अधूरी और गोलमोल होती है. . . "

"बताता हूं महारानी, बताता हूं। इतनी अधीर क्यों होती हो ? दुनिया मुझे लोभी कहती है और तुम भी लोभी मान बैठी हो। इस तरह तो बोली मत मारो देवि। या बातो के तीर चलाये बिना तुम्हें चैन नही मिलता।"

"बोली कौन मार रहा है महाराज! काकभट्टजी और परमारजी! आपको तो पता नही, पर अब मै महाराज को जरा भी नही सुहाती। यहाँ आनक की बेटी है न जल्हणा, उस पर महाराज मोहित हो गए है। आपके आने से पहले शाकभरीराज उसी का रिश्ता पक्का कर गए है। अब बूढी जो हो गई हूँ। महाराज को क्यो अच्छी लगने लगी! कल सवेरे वाग्दान होगा।"

"दुहाई है दे! अच्छा है कि तुम तलवार नही चलाती, नही तो जाने क्या गजब ढाती। बिना तलवार के ही हजारो तलवारो का काम इससे ले लेती हो।" कुमारपाल ने जीभ दिखलाते हुए कहा।

रसभरी हँसी-जसी मुग्धा भोपल दे महाराज की ओर क्षण-भर देखती रही, फिर बोली "आपने सबके सामने मेरी तौहीन की है महाराज! ठीक है, मैंने पहले ही बदला ले लिया है।"

"तुम जीती, हम हारे! तुम्हारी चतुराई का सिक्का हम सदा से मानते आए हैं और सब इस बात को जानते हैं। अब तो खुश हुई ?"

"वह मारवाडिन आती ही होगी चौपड लेकर तब आटे-दाल के भाव मालूम पडेंगे। अभी क्या हुआ है!"

"दे, यह तुमने क्या किया ?"

"लडाई तो खत्म हो गई महाराज! काकभट्टजी भी जीत के ही समाचार लेकर आए हैं। जीत की खुशी में चौपड खेलना राजाओ की रीति रही आई है। महाराज त्रिभुवनपालजी चौपड खेलते थे। महाराज देवप्रसाद का चौपड-प्रेम तो आज भी हर पट्टनी की जबान पर है। यह जल्हणा चौपड की शौकीन है। मैंने कह दिया है, रात होते ही चली आना चौपड लेकर। बस, आती ही होगी।"

"दे, तुम मेरा यह क्या. . "

"करने जा रही हो, यही न ? करना कुछ नही है महाराज। पास बैठकर आपकी ओर से दाव मैं चलूंगी। बस, आप बैठे देखते रहना। दाव पर कुछ लगा

मत बैठना। अच्छा, अब धार परमारजी का प्रायश्चित बताइए। जल्हगा आ गई तो बात अधूरी रह जाएगी।"

"आरासुरा अम्बा भवानी के द्वारपाल सदा से चन्द्रावती के परमार रहे हैं। अब द्वारपाल होंगे धार परमार। यशोधवलजी का सिंहासन उन्हीं को वापिस दे दिया जाएगा।"

"लेकिन वहाँ तो प्रभो," मन्त्रीश्वर उदयन को लगा कि महाराज उत्साह में वास्तविकता को भूले जा रहे है। "विक्रम बैठा है और उसे अभी पदभ्रष्ट नही किया गया है। क्या एक युद्ध और करना होगा?"

"विक्रम पदच्युत! कल सवेरे आप उसे हमारे समक्ष उपस्थित कीजिए। अच्छा परमारजी, बदले मे आप हमें क्या देंगे, बताइए?"

"महाराज, मै किस लायक हूँ? और क्या दे सकता हूँ?" परमार ने हाथ जोडकर कहा: "मेरे पास तो सिर्फ यह है।" उसने तलवार की ओर इशारा किया "या दो-एक कविताएँ।"*

"इस तरह टालिए मत। जो मैं माँगूँ वह देना पडेगा, नहीं तो बात खत्म।"

"महाराज को जो चाहिए वह चन्द्रावती को नही चाहिए। फिर हमारे ऐसे भाग्य कहाँ कि महाराज को कुछ दे सकें। यदि अर्बुदगिरि चाहिए तो वह भी महाराज को समर्पित। मन्त्रीश्वर विमल ने पहले निर्माण कार्य किया है अब उदयन मेहता करें, हमें कोई आपत्ति नही।"

"नही-नही! गिरिराज को आप ही सँभालिए और वह आपको सँभालता रहे। काकभट्ट, खूब याद आया। जरा त्रिलोचन को तो बुलवाओ। उस बेचारे को तो हम भूले ही जा रहे थे।"

तुरत एक अनुचर भागा गया और थोडी देर मे त्रिलोचन को लेकर आ गया। उसे भूल जाने का महाराज को अफसोस हो रहा था। बोले "त्रिलोचन, तुम्हें तो हम भूल ही गए थे। लेकिन मन्त्रीश्वर ने कह रखा था कि जब भी त्रिलोचन को बुलाना हो उसे पाटन के दुर्गपति के ही रूप से बुलाया जाए; इसी लिए तुम्हें

* परमार धारावर्षदेव राजा भोज को तरह विद्वान, कवि और काव्य-रसिक था।

अब तक बुलवाया नही था। आज से तुम पाटन के दुर्गपति। यह लो हमारी मुद्रा। मन्त्रीश्वर, इसे अधिकार-पत्र दे दीजिएगा।"

त्रिलोचन ने हाथ जोडकर कहा "महाराज मुक्त कर सके तो मैं केशव सेनापति से मिलने के लिए जाना चाहता हूँ। चलते समय उनसे वादा किया था कि लौटकर मिलूंगा।"

काकभट्ट और कुमारपाल ने एक-दूसरे की ओर देखा। त्रिलोचन को केशव सेनापति की जलसमाधि की बात मालूम नही थी। सकेत से दोनो ने निर्णय किया कि उसे यह बात मालूम नही होनी चाहिए।

"ठीक है, समय आने पर चले जाना। अभी तो यह लो, और तुम्हें एक काम सौंपा जाता है—अर्बुदपति धारावर्षदेवजी हमारे लिए सफेद सगमरमर भेजने वाले हैं। धारावर्षदेवजी, हम आपसे यही माँगने जा रहे थे "

सुनकर सब को आश्चर्य हुआ। महाराज सगमरमर क्या करेंगे ? उदयन ने सोचा, शायद कोई जैन मन्दिर बनवाएँगे और वह हर्ष-विभोर हो उठा। लेकिन रानी भोपल दे और काकभट्ट के कुछ समझ मे नही आया और न त्रिलोचन ही कुछ समझ सका। तभी महाराज ने आगे कहा "दे, महाराज सिद्धराज के अन्तिम वीर पुरुष की एक अश्वारोही प्रतिमा हम पाटन के सहस्रलिंग तालाब पर महाराज के कीर्तिस्तम्भ के पास स्थापित करना चाहते हैं। धारावर्षदेवजी, अपने यहाँ से उस शिल्पी को भी भेजिएगा, जिसने आपके धनुष-कौशल को प्रस्तर प्रतिमा मे रूपायित किया है। सफेद और काला दोनों ही तरह का सगमरमर भेजिएगा।"

"प्रभो !" उदयन ने हाथ जोडकर कहा। वह और स्पष्टीकरण चाहता था।

"हम सेनापति केशव की प्रतिमा स्थापित करेंगे, मन्त्रीश्वर।" कुमारपाल ने कहा और काक की ओर देखने लगे। काक की आँखो के आगे केशव की जल-समाधि का दृश्य अकित हो गया। देर तक राजा और सेनापति एक दूसरे की ओर देखते रहे, मानो उन्हें केशव सेनापति की प्रतिमा साफ-साफ दिखाई दे रही हो। आज की विजय के लिए क्या वे उस वीर सेनापति के आभारी नही थे ?

तभी सोने-चाँदी के घुंघरुओ का मजुल रणत्कार सुनाई दिया। राजा और सेनापति जैसे सपने से जागे।

"महाराज, जल्हणा आ रही है। कही पहले ही दाव मे हार न जाइएगा।' और सब खिलखिलाकर हँस पड़े। वातावरण आनन्दपूरित हो गया।

३८ : गुजरात का विजयध्वज

कुमारपाल युद्ध जीतकर लौट रहे हैं—पट्टनियो ने यह समाचार सुना और फूले न समाये। गर्व से उनकी छातियाँ फटने लगी।

अभी कुछ ही समय पहले पाटन मे अस्थिरता और आशका का बोलवाला था। कौन किधर से पाटन पर आक्रमण कर देगा, कौन-से राज्य-कर्मचारी गुजरात को छिन्न-भिन्न करने मे हस्तक बनेंगे, कौन-से सामन्त अपने लाभ-लोभ से प्रेरित होकर दौडे आएँगे, कौन गादी हाथिया लेगा, कौन जीएगा और कौन मरेगा—ऐसी शका-कुशकाओ से पाटन का वातावरण भरा हुआ था।

लेकिन आज वे सारी आशकाएँ मिट गई थी। पाटन नगरी ने फिर महाराज सिद्धराज के गौरव और उनकी परम्परा को सजीवन होते देखा। महाराज कुमारपाल ने पाटन मे पाँव रखते ही आन्तरिक कलह को जडमूल से उखाड फेंका। जनसामान्य को विश्वास हो चला कि गुजरात का फिर अभ्युदय हो रहा है। उनके आनन्द की सीमा न रही। यह साबित हो गया कि शासन को स्थिरता देनेवाला एक महान गुर्जरेश्वर सिंहासनासीन हुआ है।

महाराज कुमारपाल ने पाटन के अन्दर जितने आन्तरिक शत्रु थे उन सबका सफाया कर डाला था। त्यागभट्ट के दल के अतिरिक्त कोई भी पाटन से बाहर भाग नही सका था। राज्य दिलवाने में प्रमुख रूप से सहायक अपने सगे बहनोई कृष्णदेव तक को मारने मे उन्होने आगा-पीछा नही किया। बहिन-बहनोई अपनी जगह है, लेकिन सुशासन राजा का पहला कर्त्तव्य है, इसे उन्होने इस भयकर कृत्य के द्वारा प्रमाणित कर दिखाया। और इस तरह लोगो को विश्वास दिला दिया कि वे कडे हाथ मे शासन करने के ही लिए सिंहासन पर आए हैं। जैसे ही विरोधियो

को इस बात की प्रतीति हुई पाटन का आन्तरिक कलह अपने-आप शान्त हो गया। यह थी महाराज की पहली विजय।

फिर महाराज ने एक-एक कर बाह्य शत्रुओ से निपटना शुरू किया—किसी से पराक्रम से, किसी से कौशल से और किसी से प्रभाव से।

चन्द्रावती के विक्रम को पदभ्रष्ट कर दिया। अर्णोराज को पराजितकर अपना सम्बन्धी बना लिया। नडूल के केल्हण को उसके प्रतिद्वन्द्वी के हाथो पराजित किया और वहाँ अपना दण्डनायक नियुक्त कर दिया। मालवा के बल्लाल का वध कर डाला। चन्द्रावती के परमार धारावर्षदेव को राजमान्य सामन्त बना दिया। इस तरह यह प्रमाणित कर दिया कि गुजरात का गौरव उनके शासनकाल मे अजेय और अखडित रहेगा।

जिस गुर्जरेश्वर ने एक ही अभियान मे इतने शत्रुओ को परास्तकर विजयश्री का वरण किया उसके स्वागत के लिए पाटनवासियो की भीड मुँह अँधेरे ही सरस्वती नदी के किनारे पर उमडने लगी। सारा शहर खुशी से मतवाला हो गया। दूर-दूर के लोग महाराज की सवारी देखने के लिए आने लगे। रास्तो पर सुगन्धित पानी का छिडकाव किया गया था। लोगो ने सारे नगर को दुलहिन की तरह सजा दिया था। पाटन की महिलाएँ उमग-उमगकर मगलगीत गा रही थी। सरस्वती के किनारो ने कई विजयोत्सव देखे थे, पर आज का विजयोत्सव सबसे निराला था।

महाराज का शानदार हाथी कलहपंचानन दिखाई दिया। ऊपर सोने का सिहासन रखा था। पीछे राजरक्षक भीमसिह खडा था। कीर्तिपाल महाराज के ठीक पीछे बैठा हुआ था। चँवर डुल रहे थे। दोनो ओर सैकडो सैनिक पक्तिबद्ध खडे थे। जैसे ही महारानी भोपल दे और कुमारपाल दिखाई दिये उपस्थित जन-समुदाय ने जयकारो से धरती और आसमान को गुंजा दिया। लोग उछल-उछल-कर नारे लगाने लगे. "जय सोमनाथ! महाराज गुर्जरेश्वर की विजय हो! महाराज कुमारपाल की जय हो!!"

महाराज के पीछे एक-एककर मन्त्रीश्वर उदयन के, वाग्भट्ट के, रानी सुव्रता-देवी आदि के हाथी आते दिखाई दिये।

सेनापति केशव के स्थान पर सेनापति काक पानीदार काले घोड़े पर बैठा

पाटनवासियो को महाराज जयदेव के समय की स्थिर और सबल सुशासन-पद्धति की याद दिलाता चला आ रहा था।

दुर्गपति के रूप मे त्रिलोचन चला आ रहा था।

शाकभरी के उत्तराधिकारी राजपुत्र के रूप मे सोमेश्वर चौहान भी विजय के उस चलसमारोह मे सम्मिलित था।

शारीरिक शक्ति के मूर्तिमन्त प्रतीक धारावर्षदेवजी भी साथ थे।

अप्रतिम विजय की भव्य शोभायात्रा पट्टनी मुदित होकर देख रहे थे। समर्थ वीरपुरुषो की नई परम्परा उन्हें अपनी आँखो के आगे उभरती दिखाई दे रही थी।

यह साबित हो गया था कि गुजरात मे वीर पुरुषो का टोटा नही है। लोग अँगुलियो से दिखा-दिखाकर नये वीरो की पहचान कराने लगे।

कदम-कदम पर प्रशस्तियाँ गाई जा रही थी। जगह-जगह शहनाइयाँ वज रही थी। गुजरातिनो के मधुर कण्ठ-स्वर हवा मे मगल रागिनियाँ बिखेर रहे थे। पुष्प, चन्दन, कुकुम, अबीर, गुलाल और सुगन्धियो की वर्षा हो रही थी।

महाराज की सवारी रतनचौक मे पहुँची। वहाँ चारो ओर नरमुण्ड-ही-नरमुण्ड दिखाई देते थे। छज्जो, झरोखो, वारजो, गवाक्षो, खिडकियो, खम्भों, अटारियो, चबूतरो आदि सभी जगहो पर लोग बैठे हुए थे।

महाराज पर यहाँ इतने फूल बरसाए गए कि वे उनमे छिप गए।

गुजरात के गौरव की पुन स्थापना का आज पट्टनी उत्सव मना रहे थे।

वहाँ सभी तरह के लोग थे—साधु और सन्यासी, योगी और जती, जोगीन्दर और कनफडे, श्रेष्ठी और शूरमा, कविराज और सुभट, चारण और भाट, गरीब और अपग, सभी आये थे। किसी ने अपने को महोत्सव के आनन्द से अलग नही रखा था।

महाराज की सवारी थोडी देर के लिए रुक गई। लोग गर्दनें तान-तानकर देखने लगे। पता चला कि कुबेरराज श्रेष्ठी सोने-चाँदी के फूलो की वर्षा कर के महाराज का स्वागत कर रहे हैं। वहाँ से हाथी बढा तो एक पौषधशाला के आगे आकर रुक गया। महाराज ने देखा कि एक परम तेजस्वी साधु सामने खडे हैं। दोनो हाथ जोडकर महाराज ने उन्हें प्रणाम किया। जब चारो ओर निराशा-ही-निराशा का घटाटोप था उस समय त्रिकालदर्शी मुनि के आत्मविश्वास से

महाराज को प्रोत्साहित करनेवाले जैन साधु हेमचन्द्राचार्य वहाँ खडे थे। महाराज की वन्दना के प्रत्युत्तर में उनका मेघ गम्भीर स्वर आशीर्वाद देता हुआ सुनाई दिया।

लोगो ने देखा कि हेमचन्द्राचार्य अपना लम्बा हाथ उठाये निम्न श्लोक पढ़ते हुए महाराज को आशीर्वाद दे रहे थे

दृष्टस्तेन शरान्किरन्नभिमुख. क्षत्रक्षये भार्गवो,
दृष्टस्तेन निशाचरेश्वरवधव्यग्रो रघुग्रामणीः।
दृष्टस्तेन जयद्रथप्रमथनोन्निद्र सुभद्रापति-
र्दृष्टो येन रणाङ्गणे सरभसश्चौलुक्यचूडामणिः॥

इस उपन्यास का अगला खण्ड
राजर्षि कुमारपाल भी
अवश्य पढिए।